समकालीन हिन्दी उपन्यास में इतिहासबोध का विश्लेषण

(SAMAKALEEN HINDI UPANYAS MEIN ITIHASBODH KA VISHLESHAN)

Thesis submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

For the degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

By

PREETHA T.D.

Prof. (Dr.) N.MOHANAN
Head of the Department

Dr. K. VANAJA
Supervising Teacher

DEPARTMENT OF HINDI

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

KOCHI - 682 022

JUNE 2009

CERTIFICATE

This is to certify that this thesis is a bonafide record of Research Work carried out by **Mrs. Preetha T D,** under my supervision for Ph.D (Doctor of Philosophy) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any University.

Dr. K Vanaja
Supervising Teacher

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi – 22

Place : Kochi
Date :

DECLARATION

I hereby declare that the work presented in this thesis bases on the original work done by me under guidance of **Dr. K. Vanaja**, Reader, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology, Cochin 682 022, and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any other University.

Preetha T D
Research Scholar

Department of Hindi
Cochin University of
Science and Technology
Kochi – 22

Place : Kochi
Date :

पुरोवाक

साहित्य जीवन की उपज है। वह हमेशा जीवन का साथ देता है। वह मानव सृजन में अत्यन्त श्रेष्ठ है। लेखक समाजिक प्राणी है। वह समाज से ही अपने रचनाकर्म की प्राण वायु ग्रहण करता है। समाज के समस्त अन्तर्विरोधों से वह वाकिफ़ है। मानव जीवन की संसक्ति के तहत वे इन अन्तर्विरोधों को अभिव्यक्त करते हैं। इसके लिए कभी वे इतिहास, पुराण का या कभी दर्शनों का सहारा लेते हैं। इतिहासबोध के संदर्भ में यह कहना जायज़ है कि वह देश का इतिहास न होकर जनता की चित्त वृत्ति का दस्तावेज़ है, जिसमें रचनाकार स्वयं एक पात्र है। मैने अपने अध्ययन का विषय समकालीन हिन्दी उपन्यास में इतिहासबोध का विश्लेषण इसलिए रखा कि समकालीन उपन्यास में विषय की बहुस्वरता है। उसकी घटनाएँ कभी व्यक्ति सापेक्ष होती हैं, कभी समाज सापेक्ष, राजनीति सापेक्ष और संस्कृति सापेक्ष हो सकती है। पर साहित्यकार सबसे पहले इन में निहित आग को आत्मसात कर लेते हैं। और फ़िर अपनी लेखनी से उन्हें पुनरुज्जीवित कर लेते हैं। मेरे इस शोध प्रबन्ध का विषय है 'समकालीन हिन्दी उपन्यास में इतिहासबोध का विश्लेषण'। अध्ययन की सुविधा के लिए इसको पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। अन्त में उपसंहार है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध का पहला अध्याय है - 'इतिहासबोध और समकालीन हिन्दी उपन्यास'। इसमें इतिहास और साहित्य, इतिहासबोध का अर्थ एवं स्वरूप, इतिहासबोध की परिभाषाएँ, इतिहासबोध और साहित्य, इतिहासबोध और साहित्यकार, इतिहासबोध एवं इतिहासदृष्टि, इतिहासबोध और भविष्य की परिकल्पना आदि पर विस्तार से विचार किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध का दूसरा अध्याय है 'समकालीन हिन्दी उपन्यास में समाज सापेक्ष इतिहासबोध'। इसमें सामाजिक जीवन, इतिहासबोध के ज़रिए सामाजिक व्यवस्था की पहचान, नारी चेतना, साप्रदायिकता, प्रान्तीयता, आदि पर विस्तार से विचार किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध का तीसरा अध्याय है 'समकालीन हिन्दी उपन्यास में संस्कृति सापेक्ष इतिहासबोध' इसमें संस्कृति और मानवीय मूल्य, धर्म और अध्यात्मिकता, नव उपनिवेशवादी संस्कृति, विज्ञापन, फ़ैशन प्रतियोगिता, मीडिया का अतिप्रसरण, सास्कृतिक संकट, दार्शनिक विचारधाराएँ आदि को अध्ययन का विषय बनाया गया है।

चौथा अध्याय है 'समकालीन हिन्दी उपन्यास में राजनीति सापेक्ष इतिहासबोध'। इसमें प्राचीन शासन व्यवस्था, राजनीति का अतीत, वर्तमान और भविष्य, स्वतंत्रता संग्राम और राजनीति, नेहरू और उनकी पहचान, इन्दिरा गाँधी, चुनाव, घोटाला और हवाला, बाबरी मस्जिद ध्वंस और समकालीन राजनीति, सांप्रदायिकता और राजनीति, विभाजन आदि का विश्लेषण किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय है 'समकालीन हिन्दी उपन्यास में शिल्प का इतिहासबोध'। इसमें कथानक का इतिहासबोध, संवाद, थल काल, भाषा एवं शैली, पात्रयोजना, उद्देश्य आदि का अध्ययन है।

उपसंहार में प्रस्तुत अध्ययन के निष्कर्षों को संक्षेप में समाहित किया गया।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्व विद्यालय की आदरणीय डा. के. वनजा जी के निदेशन एवं

निरीक्षण में तैयार किया गया है। उनकी प्रेरणा एवं समयानुकूल निर्देशन से ही यह कार्य संपन्न हो पाया है। समय-समय पर मेरी शंकाओं का समाधान करते हुए निरंतर प्रोत्साहन देनेवाले उनके मन की विशालता तथा सौहार्दपूर्ण व्यक्तित्व ने ही मुझे यहाँ तक पहूँचने को सक्षम बनाया है। मेरे शोध-कार्य को सफ़ल बनाने में उन्होंने जो सुझाव एवं उपदेश दिये, उनके लिए मैं तहे दिल से कृतज्ञता अर्पित करती हूँ। मैं उनके मंगलमय जीवन की कामना करती हूँ। उससे मेरी यह विनम्र प्रार्थना है कि आगे भी मुझे जीवन में सही रास्ता दिखा देने की कृपा करें।

विभाग के अध्यक्ष प्रो. डा. एन. मोहनन जी के प्रति मैं आभारी हूँ। उन्होंने इस शोध कार्य को सार्थक बनाने में मुझे काफ़ी प्रेरणा दी है। उनके बहुमूल्य सुझाव एवं सलाह इस शोध कार्य का पाथेय रहा है। उनके प्रति मैं सदैव आभारी रहूँगी।

मेरे इस शोध कार्य के विषय विशेषज्ञ प्रो. डा. एम. षण्मुखन पुलापट्टा जी के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। उन्होंने मेरी काफ़ी मदद की है। वे मेरे शोध-कार्य को उचित दिशा देने में हमेशा सजग रहे हैं। उन्होंने मेरे प्रति असीम स्नेह दिखाया है। मै उनके प्रति आभार प्रकट करती हूँ।

विभाग के अन्य सभी गुरुजनों के प्रति मैं तहे दिल से आभार प्रकट करती हूँ।

हिन्दी विभाग के पुस्तकाल्य के कर्मचारियों के प्रति भी मैं आभार प्रकट करती हूँ कि जिन्होंने इस शोध कार्य को सुगम बनाने के लिए काफ़ी सहयोग दिये हैं।

इस शोध कार्य की संपूर्ति का बहुत बडा श्रेय मैं अपने पति श्री सुधीष बाबू जी को दे रही हूँ। जिनके हार्दिक सहयोग के बिना यह कार्य संभव नहीं हो पाता था। वे मुझे निरंतर प्रेरणा, सहयोग, प्यार एवं हिम्मत देते रहे हैं।

मेरी बेटी देवना को कई बार लालना देने को मै भूल गई थी। पूज्य माता, सास-ससुर, जेठ-जेठानी, बहनों, भाइयों तथा सभी परिजनों ने मुझे प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से प्रोत्साहित किया है। उन सब के प्रति मैं आभारी हूँ। मैं अपने मित्रों के प्रति भी आभारी हूँ। सभी परिचितों एवं गुरुजनों के प्रति पुनः आभार।

यह शोध प्रबन्ध मैं अपने स्वर्गीय पिताजी दामोधरन और माता ओमना दामोधरन को सविनय समर्पित कर रही हूँ।

मैं यह शोध प्रबन्ध सविनय विद्वानों के सामने प्रस्तुत कर रही हूँ। इसकी कमियों एवं गलतियों के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

सविनय,

प्रीता टी. डी.

हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्व विद्यालय
कोच्चि - 22

तारीख

विषय सूची

पहला अध्याय
इतिहासबोध और समकालीन
हिन्दी उपन्यास **1-46**

इतिहास और साहित्य - इतिहासबोध अर्थ एवं स्वरूप - इतिहासबोध की परिभाषाएँ - इतिहासबोध और साहित्य - इतिहासबोध और साहित्यकार - इतिहासबोध और इतिहासदृष्टि - इतिहासबोध से भविष्य की परिकल्पना।

दूसरा अध्याय
समकालीन हिन्दी उपन्यास में
समाज सापेक्ष इतिहासबोध **47-95**

सामाजिक जीवन - इतिहासबोध से सामाजिक व्यवस्था की पहचान - नारी चेतना - दलित चेतना - सांप्रदायिकता - प्रान्तीयता।

तीसरा अध्याय
समकालीन हिन्दी उपन्यास में
संस्कृति सापेक्ष इतिहासबोध **96-157**

धर्म आध्यात्मिकता - बाज़ार संस्कृति - विज्ञापन - फ़ैशन प्रतियोगिता - मीडिया का अतिप्रसरण - नव उपनिवेशवादी सस्कृति - सास्कृतिक संकट - दार्शनिक विचारधाराएँ।

चौथा अध्याय
समकालीन हिन्दी उपन्यास में
राजनीति सापेक्ष इतिहासबोध **158-207**

भारत की प्राचीन शासन व्यवस्था - राजनीति का अतीत - वर्तमान और भविष्य - स्वतंत्रता संग्राम और राजनीति- विभाजन - नेहरू और उनकी पहचान - इंदिरागाँधी - चुनाव - घोटाला - हवाला -बाबरी मस्जिद का ध्वंस और समकालीन राजनीति - सांप्रदायिकता और राजनीति - विभाजन।

पाँचवाँ अध्याय
समकालीन हिन्दी उपन्यास में
शिल्प का इतिहासबोध **208-286**

कथानक का इतिहासबोध- पात्र एवं चरित्र चित्रण - संवादयोजना - थलकाल - भाषा शैली - उद्देश्य।

उपसंहार **287-291**

संदर्भ ग्रन्थ सूची **292-309**

इतिहासबोध और समकालीन हिंदी उपन्यास

इतिहास और साहित्य

मनुष्य में एक व्यक्ति के रूप में अनेक स्मृतियाँ होती हैं। प्रत्येक के पास यह स्मृति अलग अलग है। यह स्मृति, जिसे एक व्यक्ति अपने स्वयं के जीवनानुभवों से मानस में संचित करता है, वह एक व्यक्ति के रूप में उसका इतिहास है। यह स्पष्ट हो जाता है कि किसी व्यक्ति के लिए स्वयं ऐतिहासिक ज्ञान के बिना, या ऐतिहासिक समझ के बिना जीवित रह पाना असंभव है। जो कुछ एक व्यक्ति का सच है, वही समाज का भी सच है। एक व्यक्ति के रूप में खुद को समझने के लिए और जीवन का अपना मार्ग पार करने के लिए अपने जीवनानुभवों की स्मृति की जरूरत है; इसी प्रकार कोई समाज या राष्ट्र - जो व्यक्तियों का समूह है - अपने अतीत और अपने जीवनानुभवों की स्मृति की जरूरत महसूस करता है। यह स्मृति उक्त समाज या राष्ट्र को स्वयं की समझ, सामाजिक संतुलन और अपने भविष्य पर सार्थक ढंग से विचार करने की क्षमता देती है और भविष्य को साकार करने की ओर क्रियाशील करती है,। इससे सुस्पष्ट है कि किसी व्यक्ति, या किसी समाज या किसी राष्ट्र के लिए स्वयं की ऐतिहासिक समझ कितनी आवश्यक है। इस तरह की समझ न केवल व्यक्ति या समूह को संतुलन और दिशा का बोध देती है, बल्कि यह उसे अपने भविष्य की रूपरेखा तय करने में सक्षम बनाती है।

इतिहास शब्द की उत्पत्ति तीन शब्दों के संयोग 'इति' 'ह' और 'आस' से हुई है। इसमें 'इति' शब्द प्रत्यक्ष निर्देश को बताता है, 'ह' शब्द आगम था परपरोपदेश की सूचना देता है और 'आस'

का अर्थ है आसन अथवा प्रतिष्ठा। महाभारतकार वेदव्यास के अनुसार धर्म अर्थ 'काम' और मोक्ष से संबन्धित पूर्व - वृत्त और कथा ही इतिहास है। आचार्य चाणक्य के अनुसार पुराण, इतिवृत्त, आख्यायिका उदाहरण, धर्मशास्त्र और अर्थशास्त्र सब इतिहास है।

इतिहास के लिए अग्रेजी मे प्रयुक्त शब्द ''हिस्ट्री' है जिसका मूल अर्थ है अन्वेषण अथवा अन्वेषण से प्राप्त ज्ञान। मुख्य रूप से दो अर्थो में 'इतिहास' शब्द का प्रयोग प्राप्त होता है - अतीतकाल की घटनाएँ तथा उन घटनाओं के संबन्ध में प्राप्त धारणा। यह सत्य का अन्वेषक होता है। इतिहास अपनी पैनी दृष्टि से अतीत की घटनाओं के अन्तराल मे प्रवेश करता है वहॉ से तथ्यों के मोतियों को निकालकर सर्वसामान्य के समक्ष रख देता है। दूसरे शब्दों में कहे तो अतीत काल के वृत्तान्तों के प्रत्यक्ष रूप से उपस्थित करने वाला तत्व इतिहास है। यह अतीत के अज्ञात जीवन को सामने लाता है। सामान्य धारणा यह है कि यह अपरिवर्तनीय है, क्यों कि इतिहासकार अतीत की घटनाओं को परिवर्तित नहीं कर सकता। इतिहास स्वतः अतीत न होकर अतीत की घटनाऑ का तथ्यात्मक विवरण है।

इतिहास का संबन्ध प्रधान रूप से मनुष्य एवं उसके क्रिया कलापों से है। मनुष्य की जाति, भाषा, धर्म, रहन सहन आदि इसके मौलिक उपादान हैं। यह समग्र रूप से इनकी बीती कथा दुहराता है। इसी अर्थ में इतिहास भूतकाल का दर्पण भी कहा जाता है।

इतिहास न तो वर्तमान से पलायन का नाम है और न अतीत की आराधना का मार्ग। यह अतीत के गडे मूर्दे उखाडने का नाम भी नहीं है। वर्तमान के कटु यथार्थ से बचाने वाला कल्पना लोक भी इतिहास नहीं है। वह न अतीत का अन्धपूजा है, न

वर्तमान का तिरस्कार। यह वर्तमान की समस्याओं से बचने का बहाना नहीं है। वह विकास प्रगति और कर्म का निषेध भी नहीं है। वह घटनाओं का लेखा जोखा मात्र नहीं है बाल्कि उसमें विविध विचारों का संघर्ष और संस्कृति का संगम भी हॊता है।

शाब्दिक दृष्टि से इतिहास का अर्थ 'ऐसा ही हुआ था या ऐसा ही था' इस आधार पर अतीत के किसी भी सत्य को इतिहास की संज्ञा दी जा सकती है। इसका अर्थ केवल घटनाओं का विवरण मात्र प्रस्तुत कर देना नही है। इतिहास में हमें भूतकालीन घटनाओं का दर्शन ही नहीं करता अपितु उन घटनाओं की परिस्थितियों और परिणामों का अध्ययन करना अपेक्षित हो जाता है। यहाँ इतिहास मनुष्य को अतीत के परिणामों से अवगत कराता है और भविष्य में अतीत की भूल को सुधारने का संकेत भी देता है। कार्य कारण के संबन्ध का विचार करने के पश्चात इतिहास के आधार पर हम कितने ही भविष्य रच सकते हैं। एक प्रकार से कहा जाय तो यह भविष्य निर्माण करने में विशेष सहायता प्रदान करता। यह भूतकाल की स्मृति तथा भविष्य की अदृश्य सृष्टि को ज्ञान रूपी किरणों द्वारा सदा आलोकित करता रहता है। इसलिए यह अतीत को जीवित रखने का एक मात्र साधन है जिसमें मानव - जीवन के ज्ञान का भण्डार निहित रहता है।

इतिहास जो है वह अतीत की नीरस घटनाओं की कहानी नहीं बताता बल्कि ऐसा शास्त्र बताता है जो हमें मानवीय समाज और संस्थाओं के जन्म का पूरा ज्ञान कराता है। इस दृष्टि से कहे तो इतिहास मानव के विकास की कहानी है जो आदि से अन्त तक रोचक है। इतिहास बीती हुई बातों का सच्चा ब्यौरा देता है। लेकिन गये बीते भूतकाल का ब्यौरा होने पर भी इतिहास की खासियत और उसकी शिक्षा वर्तमान काल की मसलों या भविष्य की गतिविधि के लिए किसी तरह कम नहीं है। इस प्रकार

इतिहास अतीत की घटनाओं का ब्यौरा होकर भी वह वर्तमान के लिए एक प्रेरक शक्ति है जो मानव की प्रगति एवं उन्नति के लिए महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

इतिहास वह संचित ज्ञान राशि है जिसमें मानवीय स्वभाव तथा चेतना कर्म तथा स्वप्नों का सब कालों (अतीत, वर्तमान तथा भविष्य) के लिए समावेश होता है अतः इतिहास किसी देश के ज्ञान का वह संगम -स्थल है जिसमें वहाँ की जनता,राजवशं-परंपराओं का राजनैतिक विकास, सामाजिक,आर्थिक सस्थायें, उसके धर्म, दर्शन, संस्कृति एवं रुचि का स्वरूप दृश्टिगोचर होता है। इन सभी को मिलाकर संघर्ष होता है जिनके माध्यम से मानव गुज़रता है। इसलिए इतिहास को केवल राष्ट्र एवं काल में बद्ध करना उचित नहीं है, उसका क्षेत्र संपूर्ण जगत है वह विभिन्न सभ्यताओं एवं संस्कृतियों का समन्वय है। इतिहास न विज्ञान है न मात्र घट्नाओं का संकलन, न महापुरुषों की कहानी मात्र ही है अपितु वह निरन्तर मानवीय सत्यों की खोज है जो मनुष्य के अतीतकालीन, सामाजिक, धार्मिक, अर्थिक जीवन पर प्रकाश डालता है।

यह मनुष्य द्वारा निर्मित, सनिर्दिष्ट एवं दिशा युक्त गतिविधि है। जहाँ एक ओर यह मानव की स्थिति प्रदान करता है, वहीं दूसरी और मानव भी इसका सृजन करता है। इस प्रकार दोनों दृष्टियों से देखे तो इतिहास मानव जीवन का होता है।

जो घटनाएँ मानव मन को कहीं गहरे तक जाकर अपनी छाप, प्रभाव छोड जाती हैं, ऎसी घटनाओं को उसी रूप में व्यक्त करना इतिहास है। इतिहास अनुभवों का अखण्ड दीपज्योति है उसके आलोक में मनुष्य के शतशत क्रियाकलाप स्पष्ट होते हैं। इतिहास मानव कार्य-कलाप की समग्र अभिव्यंजनाओं का वृत्तान्त

है। इसमें जीवन के समस्त पक्षों का सामंजस्य सन्निहित रहता है। अतः इसका मक्सद राजनीतिक घटनाओं की तालिका मात्र प्रस्तुत करना ही नहीं है, वरन जन-जीवन के विविध पक्षों की चित्रमयी अभिव्यक्ति करना है।

प्रसिद्ध कथाकार यशपाल की दृष्टि में इतिहास 'इतिहास ऐसा हुआ था' यह नही है उसका अर्थ है 'ऐसा होता आया है और आगे भी होता रहेगा''[1] इस व्यापकता को मानकर उन्होंने अपनी भूमिका स्पष्ट करते हुए कहा है कि इतिहास सिर्फ़ अतीतगाथा नहीं है उसका वर्तमान में आकलन है, कुछ स्वीकार है कुछ परिहार। यह सिर्फ़ विगत घटनाओं का तिथिक्रम का ब्यौरा मात्र नहीं है, लिखित विवरण मात्र नहीं है वह आगे पीछे देखकर अपने आपको संपूर्ण बनाने का साधन है। यह मनुष्य को समझने का आयाम प्रदान करता है परन्तु यह आयाम ही अपने आप में पर्याप्त नहीं होता। पुराण, दर्शन, साहित्य, व्याकरण, न्याय, लोकवार्ता - इन सब का भी इस्तेमाल होता है और इन सबसे उपजी समझदारी कुछ ज्यादा और अपने में बहुत कुछ इकटठे करने वाली होती है।

इसका अर्थ अतीतकालीन संसार तथा उसके कार्य व्यापार की स्मृति से लिया जाता रहा है। किन्तु स्मृति के पश्चात अनुभव चिन्तन का स्थान आता है। अपने व्यक्तिगत जीवन में हम लोग उन बातों का स्मरण करके ही संतोष नहीं कर लेते जो घट चुकी है वरन परस्पर उनकी चर्चा भी करते हैं, उनमें अर्थ भी खोजते हैं और उन्हें अनुभव-क्रम में नियोजित भी करते हैं। परिणाम स्वरूप हमारा जीवन एक संगति, एक अभिप्राय एक प्रक्रिया सदृश दिखाई पडता है। इसी प्रकार एक ऐसा समय आता है जब कि इतिहास

---

[1] मधुमति, यशपाल की दृष्टि में इतिहास, पृ. सं.67

घटनाओं, युगों अथवा मनुष्यों की संस्मृति मात्र ही नहीं रह जाता वरन कुछ अन्य हो जाता है जो इन सबसे श्रेष्ठतर होता है। वह एक ऐसा जाल, एक ऐसी इकाई हो जाता है जो इन सभी को एक में संग्रथित करता है। इस अर्थ में इतिहास इस पृथ्वि पर मनुष्य का अनुभव है, उसके संघर्षों की कहानी है, वह एक ऐसी स्वरसंगति है जिसका वाद्य वृन्दीय भाग संपूर्ण की महान विचारधारा की अभिव्यक्ति करता है, जिसका प्रत्येक क्षण, प्रत्येक वर्ष, प्रत्येक युग संगीत रचना की स्वरलिपि की एक नवीन तात-रेखा प्रस्तुत करता है और संपूर्ण की निर्मिति को कुछ और आगे तक वहन कर ले जाता है। वस्तुतः इतिहास मनुष्य तथा उसके साहस भरे कार्यों का मात्र नहीं है, वह मानव-जाति का महाकाव्य है।

इतिहास का अध्ययन जिज्ञासा का परिणाम है। मनुष्य को अपने जीवन की सभ्यता और संस्कृति को जानने की सदैव जिज्ञासा होती है। इस तथ्य को जानने के लिए इतिहास का द्वार खटखटाता है। इससे हमें बौद्धिक लाभ तो प्राप्त होता ही है, यह हमारी सांस्कृतिक जरूरतों की भूख कॊ शान्त करता है। नई प्रेरणा नया संदेश लेकर यह सतत प्रवाहशील रहती है। इसका आरंभ सभ्यता का आरंभ है। इसलिए संपूर्ण मानव जाति ही इतिहास में समाहित है। वस्तुतः यह राष्ट्र की स्मरण शक्ति है, इसलिए राष्ट्र के अतीत गौरव का साक्षी उस राष्ट्र का इतिहास होता है। आदिकाल से भिन्न-भिन्न जातियां, धर्म और विचारधाराएँ किस प्रकार कार्य करती रही हैं और वे उज्ज्वल भविष्य के किस रूप में जागरूक है- इसका संकेत इतिहास के पन्नों में है। जब हम महान पुरुषों और महिलाओं के शानदार कृत्यों को पढते हैं, उस समय हम अनायास ही उस पुराने युग में चले जाते है।

इतिहास द्वारा किसी जाति या समाज को उन्नत या अवनत करनेवाली घटनाओं का प्रदर्शन कराया जाता है। इसका प्रथम उद्देश्य है कि वह जीवन के लिए है। देश प्रेम तथा विश्व-बन्धुत्व की भावना इसका लक्ष्य है। यह वर्तमान परिस्थितियों में किया गया अतीत का पुनर्निमाण या काल्पनिक पुनर्जीवन की प्रक्रिया है। यह मानवता का उज्ज्वल देवालय है, जहां जनता, राजवंश, घटनाएँ, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएँ उनका आदर्श, संस्कृति, रहन-सहन आदि मूर्तिवत स्थान पाते हैं। विविध प्रकार से जीवन को इनसे प्रेरणा मिलती है।

इतिहास भूतकाल की अतीत स्मृति तथा भविष्य की अदृश्य सृष्टि को ज्ञान रूपी किरणों द्वारा सदा प्रकाशित करता रहता है। इसलिए यह अतीत कॊ जीवित रखने का एक मात्र साधन है जिसमें मानव- जीवन के ज्ञान का भण्डार निहित रहता है। यह बीती हुई- बातों का सच्चा ब्यौरा देता है। इससे वह वर्तमान के लिए प्रेरक शक्ति बन जाता है, मानव की प्रगति एवं उन्नति के लिए महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती है।

इतिहास और साहित्य मनुष्य द्वारा लिखे जाते हैं। साहित्य बडा ही व्यापक अर्थ रखनेवाला एक महान गौरवपूर्ण शब्द है। प्रगतिशील, अनुभूतिशील जीवन का लिपिबद्ध व्यक्तीकरण साहित्य है। यह विश्वजनीन भाव का द्यॊतक है, विश्वबन्धुत्व का संदेशवाहक है, देश और जाति के जीवन का रस है, समाज की आन्तरिक दशा का दिव्य दर्पण है, सभ्यता और संस्कृति का संरक्षक है। इसमें सहित का भाव है, अतएव, यह अपने में सब कुछ समेटा हुआ है, जॊ मानव जाति के जीवन के लिए हितकर, सुखकर और श्रेयस्कर है। साहित्य जो है वह मनुष्य के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का मिलन व्यक्त करता है। उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द के मतानुसार 'साहित्य जीवन की

आलोचना है, चाहे वह निबन्ध के रूप में हो चाहे कहानी या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए'।[2]

जीवन के विविध अंगों की कला से सन्निविष्ट सरस एवं सुन्दर लेखबद्ध सामग्री ही साहित्य के नाम से जाना जाता है अर्थात यह मानवानुभूति के विभिन्न पक्षों की सत्यं, शिवं, सुन्दरं की संयुक्त अभिव्यक्ति है। साहित्य जीवन और जगत के गत्यात्मक सौदर्य की वह भावमयी झाँकी है जिसके सहारे नित्य नवीन आनन्द और कल्याण का विधान होता है। जीवन की वास्तविक अनुभूति साहित्य में सुरक्षित है। प्रत्येक युग की ऐतिहासिक घटनाओं के पूर्ण प्रभाव से साहित्य की सृष्टि होती है। प्रत्येक देश और समाज का इतिहास ही साहित्य की उदभावना करता और उसे गति प्रदान करता है। इतिहास अतीत के रहस्यों को सुरक्षित रखने का प्रयास है तो साहित्य उन्हें माँसलता प्रदान कर जीवन के अनुरूप बनाता है। अर्थात इतिहास के कालवत तथ्यों को प्राण देना साहित्य द्वारा संभव है। इतिहासकार अतीत की बिखरी हुई तथा खंडित घटनाओं का सत्य रूप में काल-क्रमानुसार नियोजन करता है। उसकी खोज का आधार वैज्ञानिक होता है किन्तु साहित्यकार इन स्थूल सत्यों के भीतर पहूँचकर अपनी कल्पना शक्ति द्वारा आन्तरिक रहस्यों को प्रकाश में लाता है। इतिहास यथार्थ घटनाओं के परिणामों से परिचित कराकर विकासोन्मुख प्रेरणा प्रदान करता है, तो साहित्य यथार्थानुभूतियों में आदर्शात्मक तत्वों द्वारा जीवन को प्रगतिशील बनाता है। दोनों ही जीवन के पूरक अवयवों से युक्त हैं। इतिहास और साहित्य दोनों में किसी देश या जाति से संबंधित राजनीतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक स्थिति के संकेत विद्यमान हैं। इतिहास की नींव पर ही

---

[2] . प्रेमचन्द कुछ विचार पृष्ट 61

साहित्यकार अपनी कल्पनाओं के भवन निर्मित करता है। इतिहास राष्ट्र का जीवन वृत्त है और साहित्य राष्ट्र की आत्मकथा।

ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है कि इतिहास और साहित्य का चिर संबन्ध है। इतिहास संबन्धी समस्त घटनाएँ साहित्य की प्रगति पर अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। एक के ज्ञान केलिए दूसरे का ज्ञान परमावश्यक है तथा इतिहास और सहित्य का यह संबन्ध ही क्रमशः विकसित होते हुए दोनों को एक दूसरे पर आश्रित बना देता है तथापि इतिहास और साहित्य के मूलभूत तत्वों में अन्तर है, जिसकी उपेक्षा करना समीचीन न होगा। साहित्य में सत्य का तत्व सौंदर्य से संयुक्त होकर मगंलकला बन जाता है, इतिहास का सत्य कठोर सत्य के रूप में ही रहता है। अपनी इन्हीं मौलिक विशिष्टताओं के कारण इतिहास और साहित्य दॊ स्वतन्त्र विधाएँ हैं। फ़िर भी यह निर्विवाद है कि इतिहास और साहित्य का अविच्छिन्न एवं पारस्परिक संबन्ध है। साहित्य का मूलाधार इतिहास है। दोनों में आदान-प्रदान, क्रिया प्रतिक्रिया का भाव चलता रहता है।इतिहास और साहित्य विचार और मस्तिष्क, भाव और हृदय, गति और पथ की भांति साधन और साध्य है।

इतिहास और साहित्य का परस्पर संबन्ध संस्कृति से होता है। लेकिन दोनों का परिप्रेक्ष्य अलग- अलग है। साहित्य संस्कृति को काल के तीन आयामों में देखता है, जबकि इतिहास इसे मात्र अतीत के संदर्भ में प्रक्षेपित करता है। साहित्य संस्कृति को अपेक्षित परिणाम में परिष्कृत करने का दायित्व को वहन करता है, जबकि इतिहास अपने स्तर पर सांस्कृतिक धरातलों को उजागर करता है। इस रूप में साहित्य को एक सतत सांस्कृतिक प्रक्रिया मानना चाहिए, जबकि इतिहास अतीत सपृक्त सांस्कृतिक मूल्यबोध को उदघाटित करने वाला मानवीय कर्म है। इससे यह निष्कर्ष निकालना भी ठीक ही होगा कि साहित्य जहाँ एक सतत प्रवाहमान

सांस्कृतिक प्रक्रिया है, वहीं दूसरी ओर इतिहास एक सांस्कृतिक कर्म। हमारी साम्स्कृतिक परंपरा इस सांस्कृतिक कर्म की आधारभूमि है। इतिहास की वर्ण्यवस्तु, जौसा कि पूर्व में संकेत किया जा चुका है, बृहत परिणाम में अतीत से प्राप्त है और साहित्य अतीत को वर्तमान में पुनरुज्जीवित करता है। यह इस बात पर भी बल देता है कि मनुष्य अपने अतीत से प्रत्यक्षतः सन्देश ग्रहण करे जब कि साहित्य अपने तौर पर मनुष्य मानस में अन्तर्निहित अत्यावश्यक संस्कृतिक तत्वों का पुनरीक्षण- पर्यवेक्षण करता है।

अतएव कहा जा सकता है कि इतिहासकार संस्कृति को अतीतगत सन्दर्भ में उठाता है तथा हमे वर्तमान में संबोधित करता है, जबकि दूसरी ओर साहित्यकार संस्कृति के संदर्भ में अतीत से उत्प्रेरित हॊकर, वर्तमान में भविष्य के प्रति संबॊधित करता है।

साहित्य और इतिहास दोनों की आँखें मनुष्य के आचरण पर रहती हैं, और दोनों उसे कालप्रवाह के मध्य गतिशील पाते हैं। इतिहास और साहित्य का संबन्ध अटूट है, लेकिन दोनों पर्याय नहीं है। हर साहित्यिक कृति की रचना एक ऎतिहासिक घटना हॊती है, उसकी यह ऎतिहासिकता हमारे कलात्मक अनुभव में एक तथ्य हॊती है। ध्यान से देखा जाय तॊ साहित्य एक ऎतिहासिक कला है, अतः वह किसी न किसी रूप में हमेशा ऎतिहासिक अध्ययन का विषय होता है।

इतिहासबोध अर्थ एवं स्वरूप

अतीत की ऎसी घटनाओं के प्रति सजगता जो समाज विशेष के लिए प्रासंगिक है, जिन्हें एक कालक्रमिक रूप में रखकर देखा जाता है और जिनकी अभिव्यक्ति ऎसे रूप में हो जो उस समाज की ज़रूरतों की पूर्ती करता हॊ वह इतिहासबॊध है। इतिहासबोध शब्द इतिहास का बोध जगाता है।

इतिहास के बिना समाज का भविष्य सम्भव नहीं है और भविष्य के बिना समाज का इतिहास भी। हम वर्तमान में खडे हॊकर पीछे की ऒर देखते हैं, हम पीछे देखना बन्द करें तो हमारी दृष्टि आगे की ओर नहीं जायेगी। वर्तमान जो है वह मात्र एक संकल्पना है- वास्तव में वह एक प्रक्रिया है, पकड में आने के साथ झट से हाथ से छूट जाती है। इस तरह छूट गई घटनाओं को इतिहास नाम की अभिव्यक्ति दी जाती है, और इतिहास बोध के रूप में वे हमारे दिमाग में स्थिर रहते हैं। ये अतीत वर्तमान और भविष्य को एक साथ पिरोने का काम करते हैं। इतिहास के तथ्यों का संकलन या अतीत की घटनाओं की सूचना देना इतिहासबोध नहीं है। घटनाएँ घटित होती हैं , और हम उसे घटनाक्रम के सिलसिले में प्रस्तुत करें तो वह इतिहासबोध नहीं बन जायेगा। घटनाऒं के गडे मुर्दे उखाड्ने से इतिहासबॊध में अर्थ आ जाता है। ऎसे इतिहासबोध के ज़रिए वर्तमान का स्पष्टीकरण और भविष्य के आदर्शों की स्थापना होती है। मानव के पक्ष में खडे होकर कहें तो आदमी वर्तमान में जीते हुए भविष्य के लिए ऎसा संकेत छॊड जाना चाहता है, जो उसके अस्तित्व के साक्षी बन सके। यही नहीं समस्त मानव एवं मानवेतर प्रकृति तथा उसके अनुस्यूत फ़ल इतिहास है और इससे इतिहासबोध मिल ही रहा है।

यदि हम देश-काल वातावरण का अतिक्रमण करके किसी घटना के बारे में सोचने में समर्थ होता है, यह इतिहासबोध के कारण है। ऐसी स्थिति में हमारा इतिहासबोध हमारे कलात्मक अनुभव का एक अंग हो जाता है। अतीत की हर घटना में उसकी ऐतिहासिकता, उसका अतीतपन, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व होता है। घटना में सार्थकता और निरर्थकता दोनों निहित हैं। सच्चे इतिहासबोध के जरिए यह आँका जा सकता है।

इतिहास परिवर्तनशील है, इससे इतिहासबोध में भी परिवर्तन आ जाता है। इसी प्रक्रिया से नवीन चेतनाएँ अस्तित्व में आती हैं। इतिहासबोध जो है इतिहास को बदलने की दृष्टि भी है। इतिहासबोध के जरिए हम अतीत के अन्तर्विरोधों को समझते हैं, वर्तमान में खडे होकर आज के अन्तर्विरोधों को समझकर, उनसे टकराकर व संघर्ष करके, भविष्य की नवीन संभावनाएं उद्‌घाटित कर सकते हैं। समाज, संस्कृति, राजनीति की अन्तर्बाह्य द्वन्दात्मक प्रक्रियाओं की समग्र समझ के लिए इतिहासबोध की ज़रूरत है। यह कोई काल्पनिक, रहस्यात्मक, शून्य शब्द नहीं है, वरन, समाज, संस्कृति राजनीति के वास्तविक चरित्र की पहचान इससे संभव है। इतिहास के अतीत के अन्तर्विरोधों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में न समझा जाय तो हमारा इतिहासबोध एकांगी और विकृत हो जायेगा। इसकी प्रामाणिक समझ का आधार उन अन्तर्विरोधों से टकराकर ग्रहण की गयी अन्तर्दृष्टि है। इतिहासबोध के अन्तर्गत अतीत, वर्तमान और भविष्य को इसलिए परस्पर संबन्ध सापेक्ष्य स्तर पर समझा जाता रहा है, क्यों कि यह जड स्थिरीकृत वस्तु होकर भी गतिशील है, जो न तो कभी अतीत से कटती है, न ही वर्तमान तक सीमित रहती है, वरन अतीत, वर्तमान और भविष्य की द्वन्द्वात्मकता में विकासशील होती है।

इतिहासबोध से एक समाज के सन्दर्भों, उसके आन्तरिक बाह्य मूल्यों, उसकी प्रकृति, उसकी प्रक्रिया सभी हम समझते हैं। एक प्रकार से कहा जाय तो ये सारी बातें समझने का मानदण्ड भी है। इतिहासबोध न तो अतीतोन्मुखी होता है, न कोरा वर्तमान सापेक्ष, बल्कि यह अतीत, वर्तमान और भविष्य को सूत्रबद्ध करने की कडी है।

इतिहासबोध से अतीत की समझदारी, उसकी विकासशीलता और ह्रासशिलता का मूल्यांकन होता है। यह वर्तमान में तमाम अन्तर्विरोधों, विसंगतियों, विरोधाभासों की छानबीन करके, भविष्य के संभावित परिणामों के लिए संकेत छोड देता है । वर्तमान में रहकर अतीत की ओर देखना और भविष्य की दृष्टि प्रतिपादित करना एक सही समझ का प्रतिफ़लन है। वर्तमान के परिणामात्मक सन्दर्भ हमें आगामी विकास की स्थितियों से जोडते हैं। इतिहासबोध के यही तीन सोपान हैं जो परस्पर अनस्यूत है। अतीत की सही समझ के बिना हम वर्तमान की पहचान और उनके द्वन्द्वात्मक संबन्धों से वंचित रह जायेंगे। अतीत के संदर्भ ह्रासशील और विकासशील हैं उन्हें पैनी दृष्टि से हमें देखना चाहिए। इतिहास के अन्तर्विरोधों से जूझकर, सामाजिक प्रतिबद्धता द्वारा भविष्य की संभावित चेतना को निरूपित करना है। अतीत पर विचारने का अभिप्राय मात्र परंपरावादी होना नहीं है, प्रत्युत उसमें निहित स्वस्थ मूल्यों के विकास से है। ये मूल्य सार्थक और निरर्थक दोनों तरह के हैं, दोनों में द्वन्द्वात्मकता पायी जाती है, जो सन्दर्भ शक्ति संपन्न युगानुकूल सार्थक होते हैं वे जीवन्त रहते हैं और निरर्थक मूल्य स्वयमेव काल कवलित हो जाते हैं। इतिहासबोध एक प्रकार से पहचान का आधार है।

हम इतिहासबोध की बात करते तो जाहिर है कि हम इतिहास को घटना-क्रम मात्र नहीं मानते। इस संदर्भ में इतिहासबोध का अभिप्राय है घटनाओं के क्रम की व्याख्या और समझ। नीत्शे ने इसे 'सिक्स्थ सेन्स' कहा था और इस अर्थ में इतिहासबोध एक आलोचनात्मक चेतना होती है-एक ऐसी चेतना जिसका उपयोग हम खुद जीवन के परीक्षण के लिए करते हैं।

इतिहासबोध की परिभाषाएँ

भारत और पाश्चात्य के अनेक विद्वानों ने इतिहासबोध के लिए अनेक परिभाषाएँ दी हैं। जार्ज लुकाच ने इतिहासबोध की परिभाषा इस प्रकार दी है कि 'इतिहासबोध कोई काल्पनिक, रहस्यात्मक, शून्य प्रक्रिया नहीं है वरन इसके नियमों के परिप्रेक्ष्य में समाज, संस्कृति और राजनीति के वास्तविक चरित्र को पहचाना जा सकता है'।[3] उनकी राय में हमें कोहरे और अन्धकार के मिथ्याजाल से बाहर आने की जरूरत है तभी प्रामाणिक, विस्वसनीय इतिहासबोध उभर सकता है और हम सार्थक और निरर्थक सन्दर्भों की पहचान कर सकते हैं।

डा शिवकुमार मिश्र जी का अभिप्राय है कि 'साहित्य रचना में किसी समय के तथ्यों का संयोजन, व्यवस्थापन और मूल्यांकन है जिससे उस समय का इतिहास हमारे सामने प्रत्यक्ष हो जाता है'।[4] उन्होंने निश्चित रूप से इतिहासबोध की छानबीन की है।

---

[3] लुकाच स्ट्डीस स्टडीस इन यूरोपियन रियलिसम, लुकाच, पृ. सं.23

[4] 4. शिवकुमार मिश्र, आलोचना अंक 48 जनवरी-मार्च 1979

उन्होंने तथ्यों की तलाश गहरे स्तर पर की है न तो तथ्यों को नकारा, उन्हें साध्य माना। 'परंपरा को अपने समय में जीवित तथा सक्रिय करने वाला, इतिहासबोध है'[5] डा. नामवर सिंह के अनुसार 'इतिहासबोध ने हमारी चेतना, अन्तर्दृष्टि और संस्कारों का परिष्कार कर उसे बदल दिया है और वहीं साहित्य के क्षेत्र में नवीन संभावनाओं को निरूपित किया है'।[6] डा राजेश्वर सक्सेना के अनुसार 'इतिहासबोध से युग सापेक्ष संस्कृति की वस्तुपरकता को पहचाना जा सकता है चूँकि इतिहास ही काल सापेक्ष संस्कृति की आँख है, जीवन चेतना का प्रत्यक्षदर्शी है और भविष्य की संभावनाओं की व्याख्याता,और विश्लेषक है'।[7]

इतिहास में जीवन की चेतना को सूक्ष्मता से आलोकित किया जा सकता है। यह अन्तर्दृष्टि इतनी अधिक पारदर्शीन होती है कि वह न केवल अतीत को समझती है, वरन वर्तमान को गहराई से समझती हुई भविष्य की संभावनाओं पर भी विचार करती है। अतीत, वर्तमान और भविष्य की अन्तःप्रक्रियाएं, अन्तर्संबन्ध सूत्र ही ऐतिहासिक विकास और इतिहासबोध की पहचान में सहायक सिद्ध होते हैं।

डा मैनेजर पाण्डेय ने कहा है 'अतीत, वर्तमान और भविष्य के अविभाज्य गतिशील संबन्ध को समझना इतिहासबोध है।इससे वर्तमान के अन्तर्विरोधों को समझने में मदद मिलती है और अन्तर्विरोधों को हल करके आगे बढ्ने में भी सहायक होता है'।[8] इतिहास के अन्तर्विरोधों को समझकर उनका सही हल ढूंढने के

---

[5] शिवकुमार मिश्र,यथार्थवाद,पृ. सं. 95
[6] नामवर सिंह, इतिहास और आलोचना, पृ. सं. 146
[7] राजेश्वर सक्सेना, इतिहास विचारधारा और साहित्य, पृ. ससं. 20
[8] मैनेजर पान्डेय ,साहित्य और इतिहास दृष्टि पृ. सं.197

लिए इतिहासबोध की जरूरत है।जब इतिहास के अन्तर्विरोधों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में न आंका जाय तब हमारा इतिहासबोध भी एकांगी और विकृत हो जायेगा। इतिहासबोध की प्रामाणिक समझ का आधार उन अन्तर्विरोधों से टकराकर ग्रहण की गयी अन्तर्दृष्टि है, जो उनको सतर्कता, सूक्ष्मतापूर्वक समझकर इतिहास चेतना रेखांकित करती है।

तात्कालिक चेतना को सार्वकालिक चेतना में विस्तार ही इतिहासबोध है। साहित्य के सार्वजनीन सन्दर्भों, उसकी आन्तरिक-बाह्य संरचना, प्रकृति, प्रक्रिया को समझने का मानदण्ड इतिहासबोध है। डा रमेश कुन्तल मेघ के अनुसार 'इतिहासबोध के द्वारा ही चेतना का विस्तार होता है। इतिहासबोध सत्य की पहचान और विश्लेषण दोनों करता है। इसके अन्तर्गत वास्तव में क्या घटित हुआ, किस प्रकार घटित हुआ , तथा क्यों घटित हुआ ये तीनों बातें शामिल हैं'। इतिहासबोध ही इतिहास चेतना है , जो हमें इतिहास के प्रति सही राह प्रदान करती है। इतिहास के तमाम अन्तर्विरोध, विरोधाभास, असंगतियां इसी चिन्तन प्रक्रिया द्वारा उद्घाटित होते चलते हैं'।'[9]

इतिहासबोध और साहित्य

इतिहास और साहित्य परस्पर मिला हुआ है। साहित्य प्रासंगिक है या अप्रासंगिक इसकी समझ के लिए इतिहासबोध की ज़रूरत है। जब साहित्य इतिहास से विच्छिन्न हो जाता है तब

---

[9] रमेश कुन्तल मेघ, क्यों की समय एक शब्द है, पृ. सं.170

उसकी सार्वकालिक चेतना वह खो देता है। प्रत्येक युग के प्रौढ लेखन उस समय की ऐतिहासिक टकराहटों से निर्मित होता है इससे नवीन साहित्येतिहास बोध का मार्ग प्रशस्त होता है। इतिहासबोध के लिए इतिहास चेतना की ज़रूरत है। इतिहास चेतना से कटकर लिखा जाने वाला साहित्य कल्पना से भरा हुआ लगता है जिसकी कालावधि तात्कालिक होती है।

इतिहास पल पल परिवर्तित होनेवाली प्रक्रिया है इससे नई चेतनाएँ अस्तित्व में आती हैं। इससे साहित्य अर्थवान हो जाता है। इतिहास जो है समाज में घटित होता है और साहित्य जो है समाज से उत्पन्न होता है। साहित्य और समाज की आन्तरिक और बाह्य प्रक्रियाएँ, विकास, अन्तर्विरोध आदि इतिहासबोध द्वारा मूल्यांकित होता है। सामाजिक संदर्भों की प्रक्रियाओं को एकाग्रता में, समग्रता में आँकने केलिए इतिहासबोध की ज़रूरत है। एक सच्ची रचना पढते समय ऐसा लगता है कि उसमें चित्रित घटनाएँ कैसे शक्ति संपन्न रूप में आ गयी, क्यों आ गयीं, इस प्रकार सोचकर हम उसका निष्कर्ष प्रामाणिक रूप में दे देते हैं। एक सही इतिहासबोध के द्वारा हम यह करते हैं।

साहित्य का संबन्ध संस्कृति से है और राजनीति से है। इतिहास चेतना और साहित्य का आन्तरिक और बाह्य संबन्ध इन दोनों की द्वन्द्वात्मकता से संपन्न होता है। मैने पहले कहा था कि साहित्य का संबन्ध समाज से भी है इसलिए यह कहना समीचिन होगा कि इतिहास चेतना और साहित्य का आन्तरिक और बाह्य संबन्ध इन तीनों (सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक) की द्वन्द्वात्मकता से संपन्न होता है। इससे साहित्य में नया रूप आता है।

साहित्य में इतिहास का पुनर्वास संभव है। इतिहास यानी एक घटना का विवरण तिथि के साथ तथ्यात्मक रूप में साहित्य में नहीं आना चाहिए उसमें कल्पना का पुट आना चाहिए। इससे वह सशक्त कालजयी रचना बन जायेगी। संवेदना, कल्पना और इच्छा साहित्य के अन्तर की चेतना के अंगभूत हैं। वह अपनी संवेदना के अनुसार कल्पना द्वारा जीवन की पुनर्रचना करता है। साहित्य इतिहास को हू-ब-हू प्रस्तुत न कर उसे परिष्कृत कर हमारे समक्ष रखता है। कभी कभी दबी हुई घट्नाएँ भी साहित्य में आती हैं।

एक प्रकार कहे तो साहित्य और इतिहास के आन्तरिक और बाह्य संबन्ध, सूत्रबद्ध तारतम्य युक्त है। साहित्य की जडें इतिहास की गर्भान्तल से संबद्ध होती है जहाँ साध्य सामग्री ग्रहण कर साहित्य में ऐतिहासिक चेतना , इतिहासबोध पल्लवित प्रसारित होता रहता है। साहित्य की जडों को इतिहास के गर्भान्तल में रोपना ही पडता है। ऐतिहासिक संदर्भों का उपयोग प्रासंगिकता को पहचानने केलिए होना चाहिए। ऐतिहासिक संदर्भों का रूपान्तरण या रचनान्तरण प्रक्रिया द्वारा इतिहासबोध विश्वबोध में परिणति पाता है। इतिहास प्रक्रिया से गुज़री रचना तथ्यों का विकास, विस्तार करती है। यह रचना का स्थिरीकृत बिन्दु नहीं बल्कि बोध को उद्वेलित करने का माध्यम है। इतिहास प्रक्रिया जो है वह जड या स्थिरीकृत वस्तु नहीं बल्कि वह निरन्तर गतिशीलता में रहती है। रचना और इतिहास प्रक्रिया पर टकराहट होती है तब रचना में निखार आता है।

साहित्य और इतिहासबोध के संबन्ध में इस प्रकार कहना समीचिन होगा कि समसामयिक घटना चक्र से जो केन्द्रीय मूल्य संवेदना उभरती है, वही साहित्य का इतिहासबोध है। हर युग में विशिष्ट घटनाएँ घटित हो रही हैं उनका संवेदनात्मक व्यक्तित्व कुछ मानव मूल्यों की संरचना करता है। वे मानव मूल्य ही उस

काल विशेष के इतिहासबोध के प्रतिनिधि प्रतीक होते हैं। युग संदर्भों और समय सत्यों की मूल्यगत पहचान सौदर्य -शास्त्रीय परिवेश में इतिहासबोध की संज्ञा से रेखाकिंत की जा सकती है। युग की धडकन के प्रति जागरूक रहकर काल -प्रवाह के सत्यों की मूल्यगत पहचान रखना ही इतिहासबोध की आंतरिकता समझना है।सामयिक घट्नाओं की मूल्य सत्ता के प्रति प्रतिबद्धता का निर्वाह करने से लेखक की कृतियों में इतिहासबोध की अन्तर्ध्वनियाँ स्वतः ही मुखरित हो उठती हैं।

इतिहासबोध की उपलब्धि घटना संचयन या तथ्य संकलन से नहीं होती विवरणों और ब्योरों से इतिहास तो लिखा जा सकता है, पर रचनात्मक इतिहासबोध की सृष्टि नहीं की जा सकती। घटना या तथ्य रचना नहीं बनती। घटना की निर्ममता या प्रियता की संवेदना ही रचनात्मक स्तर प्राप्त कर पाती है।संवेदना की यह रूपाकृति कलात्मक होने के कारण इतिहासबोध का व्यक्तित्व प्राप्त कर लेती है।घटना को केन्द्र में रखकर घटना से प्राप्त मानव मूल्य की संवेदना को जो आकृति दी जाती है, वह सृजनत्मक स्वरूप पाकर ऎतिहासिक हो जाती है। इतिहासबोध का अर्थ ऎतिहसिक घटना को निरूपित करना नही है, बल्कि घटना की मूल्य संवेदना को रूपायित करना है। अतः रचना में इतिहासबोध की अनुभूति इतिहास की संवेदनात्मक रागात्मक तथा आवेगात्मक प्रतिक्रिया से उत्पन्न होती है।

हिन्दी में प्रेमचन्द के साहित्य में इतिहास की गतिमान चेतना मिलती है। उस समय के कृषकों की ज़िन्दगी को मज़बूती से उन्होंने चित्रित किया। उनके मानवीय सरोकार स्पष्ट है।उस समय सामन्तवाद और पूँजीवाद ने मानव की मूल संवेदनाओं में भेद पैदाकर दिया है।उन्होंने जनता के जनवादी संघर्ष को आगे बढाकर मनुष्य में अपनी आस्था प्रकट की है। तत्कालीन यानी

समसामयिक घट्नाओं को बहुत ही मार्मिक ढंग से उन्होने चित्रित किया है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती साहित्य में चित्रित साकेत, सारस्वत प्रदेश आदि के स्थान पर समकालीन इतिहास का लमही गाँव को रख दिया। एक सही इतिहासबोध की समझ उनके साहित्य में विद्यमान है। उनके साहित्य के पात्र भी वैसा है जैसा वे कालातीत बनकर रहेगें इसमें कोई संदेह नहीं है। उदाः के रूप में होरी, घीसू, माधव आदि पात्र। उन्होंने होरि को आज़ाद भारत के कथा साहित्य का लोकमान्य बना दिया।

प्रेमचन्द के बाद हिन्दी कथा में इतिहास की लोकदार्शनिक दृष्टि का विकास होता गया। आधुनिक भारत के ट्रैजिक इतिहास का विवरण यशपाल के 'झूठा सच' उपन्यास से मिलता है। यह निश्चित है जब साहित्य में इतिहास पूर्णतया रचकर नहीं आता तब तक इतिहासबोध की प्रक्रिया भी संभव नहीं हो सकती। इतिहासबोध को सरलीकृत ढ़ंग से समझा जाय तो अराजकता की स्थितियों का होना स्वाभाविक है। रचना में निहित ऐतिहासिक सन्दर्भ को सही ढ़ंग से पहचानना अनिवार्य है। यह इतिहासबोध द्वारा संभव है। अतीत कहीं भी स्थायी नही होता, वरन उसकी वर्तमान प्रासंगिकता ही उसे अर्थवान बना सकती है।

कालजयी कृतियों में निहित इतिहास चेतना अतीत, वर्तमान और भविष्य के नये मार्ग खोलती है। ऐसी कालजयी कृतियाँ ही प्रामाणिक इतिहासबोध की पहचान का आधार है। प्रत्येक कृतियों और युग को एक ही परिप्रेक्ष्य में देखना अतार्किक, असंगत दृष्टिकोण हो सकता है। आज का अन्तर्विरोध पहले के अन्तर्विरोधों से भिन्न है, क्यों कि बदलती परिस्थितियों के अनुकूल हमारी चेतना, बोध में भी गुणात्मक अन्तर, परिवर्तन संपन्न हुआ है। इतिहासबोध की सही समझ का आधार है असंगतियों, अन्तर्विरोधों से टकराकर उनके प्रति सही समझ ग्रहण करना। सर्जन के क्षेत्र

में परिपक्वता आने केलिए इतिहासबोध की सही समझ आवश्यक है।

इतिहासबोध और साहित्यकार

साहित्यकार जानकार है, समझदार भी है। विशेषकर समझदार इसलिए है कि वह अधिक से अधिक सार्थक और उपयोगी रचनाएँ दे सकता है। वह एक सूचना से कुछ जानता है कुछ समझता है। वह बुद्धिमत्ता और विवेक की यात्रा ज्ञान से करता है। इस पूरी प्रक्रिया में इतिहासबोध और विज्ञानबोध की आधारभूत आवश्यकताएँ अवश्य होती हैं। इतिहासबोध और विज्ञानबोध एक सिक्के के दो पहलू हैं। रचनाकार का सरोकार और दिशा बोध स्पष्ट और कारगर बनने के लिए इतिहासबोध की ज़रूरत है।

आज साहित्य का तेवर बदल चुका है। मानव संबन्धों, दृष्टिकोणों , संस्कारों, चेतना में गहरे स्तर पर परिवर्तन आया है। समाज, संस्कृति और राजनीति में भी बदलाव आ गये हैं। इसलिए साहित्यकार नये सिरे से विचार कर रहा है। विश्व के इतिहास पर दृष्टिपात किया जाए तो यह परिलक्षित होता है कि सच्ची कलाकृतियाँ इतिहास की द्वन्द्वात्मकता से विकसित हुई हैं तथा उन्हें रचनाकर्मियों को इतिहास प्रक्रिया से प्रतिबद्ध होने के लिए दिशा दे रही है। साहित्यकार को इतिहास की धडकनों को समझना है। इतिहास प्रक्रिया से साहित्यकार प्रतिबद्ध है तो उसकी रचना कालजयी बन सकेगी।

'इतिहास प्रक्रिया के विविध सोपानों एवं पडावों की कंटकाकीर्ण पगडंडियों से गुज़र कर ही कलाकृतियों में इतिहासबोध निर्मित होता है''।[10] रचनाकार इसी दन्द्वात्मक प्रक्रिया से गुज़र कर अपनी इतिहास चेतना या इतिहासबोध का रचनान्तरण करता है। इतिहास प्रक्रिया से वे सामग्री लेते हैं और अपनी इतिहास चेतना के द्वारा इतिहास को नई नई दिशाएँ प्रदान करते हैं। वे अपनी चेतना को भी प्रतिपादित करते हैं। वे अपनी चेतना, बोध और शक्ति के द्वारा उसका और अधिक सार्थक विकास करते है।

साहित्यकार इतिहास के मृत, उपेक्षित, दबे हुए संदर्भो का पुनर्वास करता है। इतिहास प्रक्रिया उसकी इतिहास चेतना को प्रखर नहीं बनाती बल्कि उसकी कलात्मकता को भी तलाश्ती है जिससे उसका इतिहासबोध नए आयामों से संलग्न होता है। इससे रचना में वस्तुगत और रूपगत बदलाव आ जाता है। इतिहास की नमी, ऊर्जा उसकी रचना को शक्ति, स्पन्दन्शीलता प्रदान करती है, जिससे उसकी रचनात्मकता प्रखर बनती है। एतिहासिक तथ्य तो कच्चे माल की तरह होते है।

'आज साहित्यकार ऐतिहासिक तथ्यों और स्थूल घटनाओं का प्रत्यक्ष स्तर द्वारा इतिहास दृष्टि का सरलीकरण नहीं करता, न ही उसे जड वस्तु मानता है, वरन इतिहास की द्वन्द्वात्मक, अन्तर्विरोधात्मक शक्तियों, कारकों के गहरे स्तर पर चिन्तन मनन करके सही दिशा की ओर बढता है। वह युग की समस्याओं के प्रति सचेत रहकर कारक शक्तियों व सतहों के नीचे के कारणों को देखकर, अन्तर्विरोधों को पहचान कर,उनसे टकराकर इतिहस चेतन की संभावनाओं को संजोता है''।[11]

---

[10] राकेश्कुमार समकालीन कविता और इतिहासबोध पृ. सं. 14

[11] राकेश कुमार समकालीन कविता और इतिहासबोध पृ. सं. 15

आज हमारे समाज में अन्तर्विरोध ही अन्तर्विरोध है। आज इन अन्तर्विरोधों को समझकर उनसे टकराने की ज़रूरत है, तब भविष्य की संभावनाएँ स्वयमेव उद्घाटित हो सकेंगी। इतिहासबोध के द्वारा समाज, सस्कृति, राजनीति की प्रक्रियाओं को समग्रता से समझा जा सकता है, यही संदर्भ है जिससे रचनाकार अपने इतिहासबोध को रूपायित करते हैं। साहित्य में उसका रूपान्तरण संभव हो सकता है।

आज नए इतिहासबोध की अहमियत बढ़ चुकी है तथा रचनाओं में निहित इतिहासबोध के मानदण्ड और प्रतिमान भी बदल चुके हैं। इसका मूल कारण यह है कि हमारे रचनाकारों के इतिहासबोध में बदलाव आ गया है। इतिहासबोध इतिहास को बदलने की दृष्टि भी है। ऐतिहासिक संदर्भ, तथ्यात्मक आँकडे साधन हो सकते हैं, साध्य कदापि नहीं यह साहित्यकार की सवेदना और इतिहासबोध को उद्वेलित करता है। साहित्यकार इन तथ्यों को अपने भीतर आत्मसात कर पचाकर गहरे स्तर पर पुनः रचित करता है।

समसामयिक साहित्यकारों ने अपनी लेखनी को इतिहास प्रक्रिया से सम्पृक्त किया है तभी उनका इतिहासबोध गहन चिन्तन सम्पन्न और परिपक्व होता है। उसमें आने वाली पीढ़ियों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में दिशा निर्देश करने की क्षमता है। इतिहास प्रक्रिया से युक्त साहित्य ही कालजयी साहित्य है। इतिहास द्वारा ही युग की संस्कृति और समाज को समझा जा सकता है। इतिहास में जीवन चेतना को सूक्ष्मता से आलोकित किया जा सकता है। इस अन्तर्दृष्टि के द्वारा न अतीत को समझा जाता है, वरन वर्तमान को गहराई से समझते हुए भविष्य की संभावनाओं पर भी विचार किया जाता है। इन तीनों की अन्तप्रक्रियाएँ और अन्तर्सम्बन्ध सूत्र ही इतिहासबोध की पहचान में सहायक सिद्ध

होते हैं। इतिहासबोध के अभाव में साहित्यकार में प्रौढ़ता, परिपक्वता नहीं आ सकेगी। साहित्यकार के वर्गीय संस्कार, जातीय चरित्र एवं इतिहास प्रतिबद्धता ही उसके इतिहासबोध को नया आधार देती है।

'साहित्यकार तो इतिहास की नीरसता को तोडता है, दबे मृत संदर्भों का पुनर्वास करता है, नयी अर्थवत्ता देता है, जिसमें उसकी निजी चेतना कार्य करती है। यही उसका इतिहासबोध है।इतिहास को नवीन गत्यात्मक संभावनाएँ तो रचनाकार ही देता है''।[12] डा नामवर सिंह इसे इसी परिप्रेक्ष्य में स्वीकारते हैं- 'सामाजिक सत्य को साहित्यकार नवीन चित्रों और मूर्तियों, मर्म छवियों में गढ़ता है, मृत व्यक्तियों और घटनाओं को भी पुनर्जीवित करता है, जड पदार्थों को भी सजीव करता है, पेड पत्तों को जुबान देता है और स्थिर पत्थर में स्पन्दन्शीलता'।[13] इतिहास प्रक्रिया और रचनात्मक संबन्धों की अन्तः प्रक्रियाएँ इतिहास चेतना को सार्थकता प्रदान करती हैं। जहाँ दबे हुए निष्क्रिय ऐतिहासिक संदर्भ सकिय हो उठते हैं और हमारे साथ संवाद करते है, इससे हम सोचने विचारने के लिए तत्पर होते हैं। इतिहास के जड सन्दर्भों का पुनर्वास करना ही उसका इतिहास विवेक है, उनमें वह शक्ति देता है, तथा अन्तहीन संवाद करता है। इतिहास के मृत प्रायः संदर्भों को सजीवता से पकडकर उनकी आन्तरिक धड्कनों को स्पन्दित करता चलता है। कल्पना से युक्त इतिहास सम्मत दृष्टि उसे पुनर्जीवित कर देती है। हमरा अतीत वर्तमान को भी चुनौती दे जाता है। ऐतिहासिक तथ्य मूल्यों में परिणत हो जता है। मात्र ऐतिहासिक तथ्य निरर्थक हो जाते हैं उनके पीछे साहित्यकार की मूल्य दृष्टि बोध कार्य न करे तो नवीन चेतना विकसित नहीं होगी।

---

[12] डा.राकेश कुमार समकालीन कविता और इतिहासबोध पृ. सं. 27

[13] नामवरसिंह इतिहास और आलोचना पृ. सं.145

जब तक साहित्यकार अपने अतीत के मूल्यवान और ह्रासशील संदर्भों की पहचान न करते और वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता न तलाशते, वह अतीत, वर्तमान में अपनी क्या भूमिका निभा रहा है, तथा हमारे अतीत वर्तमान की भावी विकासात्मक परिणतियाँ कैसी हैं, कितनी सार्थक मूल्यवान है, इन संदर्भों की पहचान न करते तब तक साहित्य मूल्यवान नही हो जायेगा। इतिहास प्रक्रिया कभी भी अतीत से नही कटती, क्यों कि अतीत, वर्तमान और भविष्य की जडें परस्पर गुँथी होती है। इन तीनों आयामों पर केन्द्रित रहकर ही साहित्यकार प्रामाणिक इतिहासबोध को उभार सकता है। साहित्यकार को अतीत, वर्तमान और भविष्य के अन्तरसंबन्धों और अन्तःप्रक्रियाओं, तमाम शक्तियों, परिणामों एवं परिणतियों की सही समझ है तो उससे नई रचना दृष्टि और नए बोधों का निर्माण संपन्न होता है।

रचनाकार अतीत को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में उसकी उपलब्धियों, सीमाओं, व अन्तर्विरोधों से सबक सीखकर अपनी इतिहास चेतना का संस्कार करते हैं। यदि वे अपने अन्तर्विरोधों सीमाओं से सबक न सीखे तो यह निश्चित है वे उन्हीं अन्तर्विरोधों, विसंगतियों और सीमाओं के शिकार हो जायेंगे जिनसे हमारा अतीत हुआ था। इसलिए अतीत को मात्र अतीत में रखकर मूल्यांकित करना प्रासंगिक नहीं है, वरन उसे वर्तमान प्रासंगिकता में और आगामी भविष्य में भी मूल्यांकित किया जाना चाहिए।

साहित्यकार का इतिहासबोध इसलिए दिशाहीन भ्रान्तिजनक रहा है, क्यों कि उसने इतिहास की प्रक्रियाओं, द्वन्द्वात्मकता और उसे अतीत वर्तमान और भविष्य के साथ अन्तःसंबन्धों में परीक्षित नहीं किया है। अतीत की विसंगतियों अन्तर्विरोधों को नकार कर, उन पर पर्दा डालकर मात्र वर्तमान तक सीमित रहना इतिहासबोध न होगा। उन्होंने इन अन्तर्विरोधों

को चीरकर अपनी इतिहास दृष्टि को परंपरा, वर्तमान और भविष्य से जोडकर अपनी इतिहास चेतना का संस्कार परिष्कार करता है। इतिहासबोध के अन्तर्गत इन तीनों को इसलिए परस्पर संबन्ध सापेक्ष स्तर पर समझा जाता रहा है, क्यों कि यह जड स्थिरीकृत वस्तु न होकर, गतिशील प्रक्रिया है, जो न तो कभी अतीत से कटती है, न ही वर्तमान तक सीमित रहती है वरन अतीत, वर्तमान और भविष्य को द्वन्द्वात्मकता में विकासशील करती है। इतिहास प्रक्रिया इस त्रयी को गतिशील रखती है।

रचनाकार जब तक इतिहास के नियमों, अन्तःप्रक्रियाओं, कारकीय शक्तियों, परिवेश को, चुनौतियों को समग्र स्तर पर आत्मसात कर, उन्हें अपनी चेतना द्वारा तपाकर उनका गुणात्मक रूपान्तरण नहीं करता तब तक उसमें सही इतिहासबोध पनप नहीं सकता। कोरे इतिहास दर्शन को समझना ही महत्वपूर्ण नहीं होता अपितु सर्जनात्मक स्तर पर भी संघर्ष अनिवार्य है। यही उनके इतिहासबोध, विश्वबोध का वैशिष्ट्य है, जो उन्हें तात्कालिक न बनाकर सार्वकालिक बनाता है। रचनाकार अपने अतीत को वर्तमान में परीक्षित करता है, ताकि उसे उसकी शक्ति और सीमा का भी पता चल सके, वह उससे सबक सीखे। जब वह अतीत और वर्तमान के अपूर्व संबन्धों की सही पहचान कर पाये, तब यह सम्भव होता है। जो रचनाकर इतिहास प्रक्रिया से भिन्न सरलीकृत, यान्त्रिक पद्धति अपनाता है वह कोरी वक्तव्यबाजी है, उसमें इतिहासबोध कदापि नहीं। अतीत को वर्तमान के संदर्भ में परखना अधिक महत्वपूर्ण होता है। उसकी वांछनीयता अवांछनीयता प्रासंगिकता इसी प्रक्रिया के तहत संपन्न होती है। प्रतिबद्ध साहित्यकार इतिहास की असंगतियों, अन्तर्विरोधों से टकराता है और इतिहास के बन्द स्थायी, शाश्वत दरवाज़ों पर अपनी चेतना की दस्तक देता है। यदि जन संवेदना से जुडा साहित्यकार इतिहास के बन्द दरवाज़ों पर अपनी चेतना की दस्तक न दे तो

उसका इतिहासबोध कदापि प्रामाणिक और विश्वसनीय नहीं हो सकता।

'इतिहास की परिवर्तनशीलता साहित्यकार के बोध, चेतना में भी बदलाव लाती है। यदि ऐतिहासिक धारावाहिकता न होती तो स्वाभाविक था कि उनके बोध, चेतना, रचना दृष्टि में भी परिवर्तन न आता वह चेतना शाश्वत, स्थिरीकृत हो जाती, जब कि इतिहास प्रक्रिया ने अप्रासंगिक मुद्दों को धाराशायी कर दिया है- 'निर्विकल्प पूर्ण शाश्वत तथा अचल सौंदर्य की उपलब्धि नामुमकिन है। प्रत्येक विशिष्ट सामाजिक वातावरण अर्थात प्रत्येक युग मे मनुष्य नयी सौदर्य दृष्टि का विकास करता था फ़िर किसी वस्तु के खास पक्ष को अपने परिवर्तित बोध के कारण रेखांकित कर लेता है।'[14]

साहित्यकार को ऐतिहासिक तथ्य कच्चे माल की तरह होते हैं, वे उन्हें अपनी चेतना की भट्टि में तपाता तराश्ता है। तभी उसके इतिहासबोध का स्तर निरूपित होता है। वह इतिहासबोध अर्थवान बनता है।ऐतिहासिक तथ्यों का सही आकलन, विश्लेषण और उनका रचनात्मक कलात्मक रूपान्तरण ही इतिहासबोध को अर्थवान बनाता है।

ऐतिहासिक तथ्यों का सही आकलन, विश्लेषण और उनका रचनात्मक, कलात्मक रूपन्तरण ही इतिहासबोध बनता है। इतिहास के अन्तर्विरोधों को समझना, उनसे टकराना, उनके सही समाधान ढूँढ़ना तथा उनकी कार्य कारण शक्तियों, कारकों को समझकर, उनके विरुद्ध संघर्ष कर नये इतिहास के विकल्प तलाश्ना ही इतिहास विवेक है। इतिहास चेतना के नये विकल्प, आगामी विकास की परिणतियों तक पहूँचना लेखक का दायित्व

---

[14] रमेश कुन्तल मेघ, क्यों कि समय एक शब्द है पृ. सं. 7

है।इतिहासबोध में बदलाव की स्थिति अनिवार्य होती है, क्यों कि इतिहास प्रक्रिया स्थिरीकृत न होकर गतिशील यथार्थ है जो हमारे बोध को भी परिवर्तित कर देती हैं। यही परिवर्तन इतिहास चेतना का आधार है। इतिहास प्रक्रिया त्रिआयामी अतीत वर्तमान और भविष्य की जडें परस्पर गहरे स्तर पर अनुस्यूत हैं।इन्हें पृथक नहीं किया जा सकता, न ही इनमें कोई विभाजक रेखा खींची जा सकती है, क्यों कि इनमें परस्पर द्वन्द्वात्मकता रहती है। प्रत्येक स्तर पर यह एक दूसरे को प्रभावित करती है। इसलिए इनमें विभाजक रेखाएँ नहीं खींची जा सकतीं। इतिहास की इस त्रयी से अन्तहीन संवाद ही इतिहासबोध बनता है। जहाँ भी रचना और इतिहास प्रक्रिया में द्वन्द्वात्मकता टूटने से रचनाकार के इतिहासबोध में विघटन आता है। यह विघटन अन्तर्विरोधों को जन्म देता है जिसे तोडना प्रतिबद्ध रचनाकार का दायित्व बोध है अन्यथा उसका इतिहासबोध ह्रासशील होता जायेगा। वह इतिहस के नीचे संश्लिष्ट यथार्थ व कारक शक्तियों को पकडता है, ताकि उनके परिणामों को समझकर उन्हें बदलने के विकल्प तलाश सके। इतिहासबोध के अन्तर्गत समाज, संस्कृति एवं राजनीति की द्वन्द्वात्म्क प्रक्रियाओं, अन्तःसंबन्धों को भी विचारित किया जाना चाहिए। हमारा समाज, संस्कृति, राजनीति किन ह्रासशील या विकासशील चरणों से गुज़र रही है, उसके पीछे कौन कारक शक्तियाँ हैं, उनके क्या परिणाम हैं और उन्हें कैसा बदला जाये, इसके लिए इतिहासबोध ही सार्थक प्रश्न है,जो इनका सही समाधान दे सकता है। इतिहास प्रक्रिया के भीतर ही समाज, संस्कृति, राजनीति की अन्तःप्रक्रियाएँ घटित होती हैं, इन्हें इतिहासबोध द्वारा समझा जा सकता है।

इतिहासबोध की प्रामाणिक समझ ही कलाकृतियों को सार्वकालिकता प्रदान करती है, परन्तु रचनाकार इतिहास प्रक्रिया को अपनी रचना धर्मिता में कैसे रचनान्तरित रूपान्तरित करता है,

यह महत्वपूर्ण मुद्दा है। कोई भी प्रतिबद्ध चिन्तक साहित्यकार इतिहास चेतना से असंपृक्त नहीं रह सकता। इतिहास विवेक ही उसके चिन्तन और संवेदना को गहरता है एवं एक सम्यक दृष्टि प्रदान करता है। अधिकतर रचनाकारों ने अपने इतिहासबोध का सतही परिचय दिया है। परिणामस्वरूप उनके लेखन काल विशेष की घटनाओं की आवृत्ति बन कर रह गया है, क्यों कि उनकी समझ सतही थी और सर्जन द्वन्द्वहीन था । इतिहास के द्वन्द्वात्मक सम्दर्भों अन्तर्विरोधों से वे न ट्करा सके। इसलिए उनका इतिहास विवेक, रूपान्तरण में कमज़ोर रह गया। इतिहासबोध की प्रासगिकता रचना में ऎतिहासिक संदर्भों को रूपायित करना नहीं बल्कि नवीन चेतना का मार्ग खोलना है। जब इतिहास रचनाकार के संस्कारों, चेतना को दिशा निर्देश करे और मृत संदर्भों का पुनर्वास कर मानवीय अभ्युत्थान हेतु नया इतिहास लिखे तभी उसकी मूल्यवत्ता होगी। इतिहास में व्याप्त जो स्थितियाँ हैं उनमें से रचनाकार कैसे मूल्यों का चुनाव करता है, यही इतिहासबोध की पहचान का आधार है। कृतियों में व्यक्त इसी तरह के मूल्य, जिन्हें रचनाकार ने इतिहास की द्वन्द्वात्मकता से हासिल किया है, यही इतिहासबोध की परिचायक है।रचनाकार अपनी इतिहास चेतना के द्वारा इतिहास में बदलाव लाने हेतु उनके अन्तर्विरोधों से टकरा रहे है।

रचनाकार अपनी रचनाओं में ऎतिहासिक सदर्भ को लाकर अतीत को समझते हुए उसकी विकासशीलता और ह्रासशीलता का मूल्यांकन करता है। उनके वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तमाम अन्तर्विरोधों, विसगतियों, विरोधाभासों की छानबीन कर, भविष्य के संभावित परिणामों को समझने केलिए विवश करता है। वर्तमान में रहकर अतीत की प्रासंगिकता देखना तथा भविष्योन्मुखी दृष्टि प्रतिपादित करना एक सही समझ का प्रतिफ़लन है।जो स्थितियों को वर्तमान में देखते हुए, उसके समस्त परिणामों की पहचान कर संभावनाओं

को आर पार देखती भविष्य के साथ भी संबद्ध हो जाती है। वर्तमान के परिणामात्मक संदर्भ आगामी विकास की स्थितियों से जोडते हैं। यहाँ आकर इतिहासबोध त्रिआयामी हो जाता है। इतिहासबोध के यही तीन सोपान हैं जो परस्पर अनुस्यूत हैं। अतीत की सही पहचान के अभाव में वर्तमान की पहचान और उनके द्वन्द्वात्मक संबन्धों से वंचित रह जायेंगे और ज्यों ही रचनाकार वर्तमान से काटेगा उसकी दृष्टि धुँधला जायेगी जिससे वह वर्तमान के आगामी विकास को भी नहीं पहचान पायेगा। अतीत को समझना परंपरावादी होना नहीं वरन अतीत और वर्तमान की जो विसंगतियाँ और सार्थक मूल्य है, उन्हें पहचानना है।

इतिहासबोध जो है क्या, क्यों और कैसे का त्रित्व है। क्या, क्यों और कैसे की चिन्तन्परक जिज्ञासा रचनाकार को इतिहास के नीचे छिपे गुह्य संदर्भों की सार्थक पहचान देती है। वह निरन्तर ऐतिहासिक संदर्भो की द्वन्द्वात्मकता का अध्ययन, विश्लेषण करता हुआ तथ्यों से सत्यों मूल्यों की ओर लक्ष्योन्मुख होता है, जिससे उसकी इतिहास चेतना प्रौढ़ होती रहती है। इस प्रक्रिया के लिए उसका अनुभवशील होना अनिवार्य है, क्यों कि जो कुछ समाज संस्कृति में घटित हुआ, उनके पीछे क्या परिणामात्मक, गुणात्मक कारण हैं,उनकी क्या पृष्ठभूमि हैं, क्या पूर्व पीठिका है, वे तथ्य द्वन्द्वात्मक स्तर पर अपनी क्या भूमिका निभा रहे हैं? इन मुद्दों को समझना अनिवार्य है। उसका इतिहास सम्मत अध्ययन यदि इस प्रक्रिया से संलग्न है तो उसका इतिहासबोध निश्चय ही सार्थक जीवन दृष्टि को उठायेगा, अन्यथा वह इतिहास चेतना अप्रासंगिक ही होगी। जब तक रचनाकार 'क्या घटित हुआ, किस प्रकार हुआ और क्यों हुआ इन समस्त कारक शक्तियों की तहों में उतर कर विवेचना नहीं करता तब तक उसका इतिहासबोध प्रामाणिक एवं समग्र, विश्वबोध का द्योतक नहीं हो सकता।इतिहासबोध ही उसकी रचनाधर्मिता में मजाव, कसाव, घनाव लाता है। इतिहास चेतना के

प्रति 'क्या, क्यों और कैसे'' की प्रश्नाकुलता उसे चिन्तन-मनन में प्रवृत्त करती है। वह अधिक गहराई से विचारता है। यह पद्धति, प्रक्रिया उसे समग्रता से जोडती हुई निष्कर्ष की ओर ले जाती है, जहाँ वह अपने इतिहासबोध को कलात्मक स्तर पर रेखांकित करता है ।

यह पद्धति इतिहासबोध नहीं, वरन दर्शन, सर्जन के समस्त क्षेत्रों में सार्थक निष्कर्षो तक पहूँचने वाली प्रक्रिया है। इतिहास को इसी प्रक्रिया के परिप्रेक्ष्य में अध्ययन करके रचनाकार अपने इतिहासबोध को रूपान्तरित करता है। इतिहास का सतही, तथ्यपरक अध्ययन जीवन की वास्तविकता से दूर करता है, क्योंकि तथ्यपरक इतिहास दृष्टि घटनाओं का ब्यौरा बन कर रह जाती है। तथ्यों का गहरे स्तर पर अध्ययन ही महत्व रखता है। इन तथ्यों से प्राप्त दृष्टि कितनी प्रासंगिक मूल्य चेतना को रेखांकित कर रही है, तथा वे तथ्य कलाकार के इतिहासबोध के निर्माण में क्या भूमिका निभा रहे हैं, ये संदर्भ अधिक महत्वपूर्ण हैं। तथ्यों का आधार सूचना एवं सामान्य ज्ञान से है जो इतिहासबोध की प्रक्रिया का मात्र प्रारंभिक चरण स्वीकारा जा सकता है।

लेखक के पास ऐतिहासिक तथ्यों के निरीक्षण की प्रामाणिक समझ होनी चाहिए, ताकि वह सार्थक और निरर्थक में सार्थक संदर्भों की पहचान करता चले। इतिहास के अन्तर्विरोधों की सही समझ का आधार भी यही है। अन्तर्विरोधों की द्वन्द्वात्मकता में ही सार्थक और निरर्थक संदर्भ अनुस्यूत रहते हैं, जिनके बीच से वह परीक्षित करता चलता है। इस द्वन्द्व के बीच रहकर ही वह सार्थक ऐतिहासिक मूल्यों को स्थापित कर सकता है।

लेखक के संस्कारों, बोध, अनुभवशीलता, संवेदनात्मक उद्देश्यों के अनुकूल ही इतिहासबोध की निर्मिति होती है।इसलिए इतिहासबोध के स्तर धरातल में भी एक ही युग के रचनाकारों के इतिहासबोध में पर्याप्त अन्तर होता है। लेखक अपनी जीवन दृष्टि, इतिहास दृष्टि का जितना विस्तार करेगा, इतिहास के चतुर्दिक आयामों का निरीक्षण, परीक्षण, सर्वेक्षण करेगा, उसका इतिहासबोध रचनात्मक स्तर पर उतना ही प्रगाढ़, चिन्तन संपन्न, व्यापक होग़ा। लेखक का ये दायित्वबोध है कि वह इतिहास की गहराइयों में उतरे-'साहित्यक कलाकार अपनी विधायक कल्पना द्वारा, जीवन की पुनर्रचना करता है। जीवन की यह पुनर्रचना कलाकृति बनती है। यह जीवन जब कल्पना द्वारा पुनर्रचित होता है, तब उस पुनर्रचित जीवन में, तथा जगत-क्षेत्र में जिये और भोगे जाने वाले जीवन में, गुणात्मक अन्तर उत्पन्न होता जाता है। पुनर्रचित जीवन जिये और भोगे जाने वाले जीवन से सारतः एक होते हुए भी स्वरूपतः भिन्न होता है। यदि पुनर्रचित जीवन वास्तविक जीवन से निःसारतः एक हो, तो वह पुनर्रचित जीवन निष्फ़ल है''।[15]

ऐसे भी साहित्यकार होते हैं,जो किसी कालविशेष में रचनात्मक संदर्भ जुटाते हैं,किन्तु उनकी दृष्टि कालसापेक्ष न होकर शाश्वत,चिरकालिक और व्यापक हो जाती है। ऐसे रचनाकार समय की सीमा का अतिक्रमण कर जाते हैं,और अपनी दृष्टि विपुलता के कारण अद्वितीयता की चरम उपलब्धि तक जा पहूँचते हैं। कुछ असमर्थ रचनाकार भी समय-सापेक्ष नहीं रहते, पर उनकी दृष्टि इतनी धूमिल, रूढ़िग्रस्त तथा सतही रहती है कि वे न तो अपने काल- विशेष के इतिहासबोध से साक्षात्कार कर पाते हैं, न अपने काल की युग-संवेदनाओं का अतिक्रमण कर चिरन्तन मानव मूल्यों

[15] मुक्तिबोध रचनावली 5 पृ 241

की सृष्टि ही कर पाते है।ऐसे लेखकों का कृति-व्यक्तित्व औसत साहित्यिक क्षमता से लघु-स्तर का रह जाता है।

इतिहासबोध से परिचय अथवा कला प्रियता रचनात्मक स्तरीयता का सौदर्यशास्त्रीय प्रतिमान नहीं। यह परिचय या प्रियता केवल रचनाकार की दृष्टि का संकेत देती है। जीवन की धड़कन से प्रतिबद्ध रहनेवाला लेखक इतिहासबोध से अस्पर्शित नहीं रह पाता। उसकी कृति में काल संवेदना एक दार्शनिक मूल्य के रूप में प्रस्फुटित होती है। ऐसी स्थिति में उसका इतिहासबोध व्यापक रचनात्मक दृष्टि पाकर शाश्वत एवं चिरकालिक बन जाता है। ऐसा भी संभव है कि शाश्वत मूल्यों की प्रस्तुति करने का अभिनय करने वाला साहित्य,संवेदना और कला की रिक्तता के कारण,धूमिलता और औसत संवेदना का निर्यात ही कर पाये। दूसरी ओर यह भी संभव है कि काल सत्य की ऐतिहासिकता अंकित करनेवाला साहित्य भी अपने स्वस्थ मानव मूल्यों के कारण चिरकालिक अजरता का उत्तराधिकारी प्रामणित हो जाय। विश्व साहित्य के पृष्ठों का अध्ययन इस निष्कर्ष तक पहूँचता है कि सार्वकालिक और सामयिक दोनों तरह के रचनाकार अपनी दृष्टि की व्यापकता से अद्वितीयता प्राप्त कर लेते हैं। होमर, कालिदास, शेक्सपियर, तुलसी, कबीर, सूर, और रवीन्द्र शाश्वत मानव मूल्यों के द्रष्टा थे।वे इतिहासबोध से यदा-कदा प्रभावित भी हुए। पर उनकी समसामयिकता अनायास ही थी। वह उनकी आत्मा की अनिवार्यता नहीं थी। इन सार्वकालिक स्त्रष्टाओं की रचनात्मक उपलब्धियों पर बहस करने की कोई संभावना नहीं। मिल्ट्न, शरत, प्रेमचन्द, मैक्सिम गोर्की, पाब्लो निरूदा, सार्त्र, कामू, काफ़्का, इलियट और यशपाल अपनी कृतियों से इतिहासबोध की संवेदना का निर्यात करते रहे,पर अपनी दृष्टि की विपुलता के कारण वे भी अमरत्व की उपलब्धि तक पहूँच गये।

आँचलिक संस्कृति के प्रामाणिक चितेरे फ़णीश्वर नाथ रेणु ने भारतीय ग्रामवासियों के विभिन्न वर्गों की मानसिकता का समसामयिक, यथार्थवादी चित्रण करके ग्राम्य-जीवन प्रसंगों की ऐतिहासिकता स्थापित की। इसी प्रकार श्रीलाल शुक्ल ने स्वातंत्र्योत्तर ग्राम्य जीवन के सांस्कृतिक ह्रास का रूपक राग दरबारी में रचकर देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और वर्ग-गत विषमता का ऐतिहासिक दस्तावेज़ तैयार किया। यशपाल की कृतियों में भी सामाजिकता, राजनीति और विषम अर्थ तंत्र का यथार्थवादी इतिहासबोध उभरता है ऩागार्जुन के उपन्यासों में वर्ग विभेद के मानव-रूपकों के माध्यम से इतिहासबोध की मौलिक आकृति उभरती है। दूसरी ओर अज्ञेय और मोहन राकेश कला के प्रति अतिरिक्त अनुराग से प्रेरित रहे।शमशेर बहादुर सिंह चाहे अपनी चिन्तन दृष्टि से कितने ही प्रगतिशील क्यों न हो पर अपने बिंब विधान में वे अत्यधिक कलात्मकता के आग्रही ही रहे हैं। इनकी कृतियों में इतिहासबोध के अनायास स्वर सुनाई पड सकते है,पर उनकी सचेतन रचनात्मकता सिलसिलेवार इतिहासबोध का पक्षधर कभी नही रही। धर्मवीर भारती अपनी काव्य कृतियों और कथा संदर्भों में इतिहास यातना के सदर्भ उजागर करते हैं,पर जहाँ-जहाँ उनकी आत्मा का ओज उभरा है,वहाँ-वहाँ रूमानी संस्कृति की चरम परिणति रूपांकित हुई है।

रचनात्मक इतिहासबोध में सिलसिलेवार क्रमबद्धता होती है अनायास उभरा इतिहासबोध बिखराव और विश्रृंखलन का एहसास ही जगाता है।विश्रृंखलित इतिहासबोध हर समकालीन लेखक की रचना में तलाशा जा सकता है,क्यों कि रचनाकार असंपृक्त रहने के चाहे कितने ही उपाय करे,अंततोगत्वा समय की कोई प्रभावी ध्वनि उसे झकझोर देती है,और उसे ऐतिहासिक काल सत्य की रचना में संलग्न कर देती है। क्रमबद्ध इतिहासबोध रचनाकार की अंतश्चेतना की छटपटाहट में समाहित रहता है। वह सतत और

अहर्निश होता है, ऱचनाकार उससे विलग हो ही नहीं पाता अतः इतिहासबोध उसकी रचनात्मक मानसिकता का अभिन्न पहलू बन जाता है।

निष्कर्ष के रूप में यह कहा जा सकता है कि साहित्यकार समाज में दबी हुई घटनाओं को यानि इतिहास को हू-ब-हू प्रस्तुत न कर उसे परिष्कृत कर हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है। साहित्यकार इतिहास के उत्थान हेतु अपना इतिहासबोध निर्धारित करे। यदि वह व्यर्थ कल्पना, कोहरे, अन्धकार के मिथ्याजाल को चीरकर सही आलोक से ऐतिहासिक संदर्भों को समझा जाय तब सही इतिहासबोध उभरकर सामने आ सकता है।

इतिहासबोध और इतिहासदृष्टि

सच्चे साहित्य की संरचना के लिए साहित्यकार को होना चाहिए एक सच्ची इतिहासदृष्टि। जिस रचनाकार की इतिहासदृष्टि जितना समृद्ध है उसकी चेतना भी उतनी धारदार व्यापक हो जायेगी। इतिहास विवेक की समझ के लिए सच्ची इतिहासदृष्टि की ज़रूरत है। इतिहासदृष्टि मात्र तथ्यों का संकलन या संग्रह नहीं है, बल्कि कल्पना लोक में विचरण करने की शाश्वत चेतना है जिससे साहित्यकार साहित्य को प्रखर बनाता है। एक सही इतिहास्दृष्टि ही रचनाकारों के इतिहासबोध में अपनी भूमिका निभा सकती है।

हम सब इतिहास में जी रहे हैं। इतिहस में तथ्य ज़रूर है। इन तथ्यों से सहित्यकार को आवश्यक चुनने और अनावश्यक को छोड देने केलिए सच्ची इतिहासदृष्टि की आवश्यकता है। तथ्यों से आवश्यक को चुनकर साहित्यकार अपनी इतिहासदृष्टि के द्वारा सच्चे साहित्य रचते हैं और वे प्रासंगिकता भी पाते है। इतिहासदृष्टि बोधगम्य होती तो रचनाकार के इतिहासबोध में मलाल न हो जायेगा।

सच्ची प्रामाणिक इतिहासदृष्टि कभी भी संकलनपरक, टिप्पणियों का सतही निरूपण नहीं करती, न ही समाज, संस्कृति, राजनीति के भीतरी बाहरी हलचलों का स्थूल तथ्यपरक निर्णय देती है,प्रत्युत वह विवेकशील चेतना द्वारा उन ऐतिहासिक तथ्यों की संदिग्धता असंदिग्धता को व्याख्यायित विश्लेषित कर, उसके समग्र कोणों सहित, उपलब्धियों और सीमाओं को उभारती है।

आज हमारे समाज, संस्कृति, इतिहास प्रक्रिया आदि इतनी जटिल बनती है उन्हें सतही नज़रिए से पहचानना सर्वथा भ्रान्तिजनक दृष्टिकोण होगा, सही इतिहासदृष्टि केलिए अनिवार्य है इतिहास के समस्त अन्तर्विरोधों की सार्थकता को समझना। तथ्यों से प्रारंभ होकर, उन तथ्यों के पश्चात, उनके निरीक्षण परीक्षण की यात्रा होती है इतिहासदृष्टि। रचनाकार अपनी इतिहासदृष्टि के द्वारा उन ऐतिहासिक तथ्यों को परीक्षित करके अपनी चेतना की भट्टी में तपाता है, उन्हें तराश कर, उनकी पृष्ठभूमि का अध्ययन कर, वैचारिक स्तर पर उनका रूपान्तरण करता हुआ, उन्हें नवीन चेतना द्वारा सार्थकता की ओर मोडता है। सच्ची इतिहासदृष्टि रचनाकार को पीछे ले जाने की अपेक्षा विकासशील करती है।

एक एक साहित्यकार की इतिहासदृष्टि वर्ग संस्कृति से संबद्ध है। सच्ची इतिहासदृष्टि उन्हें कभी भी पीछे की ओर नहीं ले

जाती, वरन विकासोन्मुख करती है। ‘कला, साहित्य और सौदर्यशास्त्र के विकास में ऐतिहासिक अनवरतता और नैरन्तर्यता होती है। एक आधार से दूसरे आधार की ओर प्रयाण होने की वजह से नया आधार पूर्व के श्रेष्ठ और उपयोगी तत्वों को ग्रहण कर लेता है। उसी प्रकार परिसंगठन का कोई भी अंश अपने पूर्व की परंपरा के उपयोगी अंशों को स्वीकार कर लेता है। विशेषरूप से दर्शन,कला और नीति की विचारधाराओं के विकास में यह ऐतिहासिक धारावाहिकता और भी पायी जाती है‘‘।[16]

आज के जटिल युग में परिव्याप्त विसंगतियों और अन्तर्विरोधों के परिप्रेक्ष्य में साहित्यकार का यह दायित्व है कि वह उनसे संघर्ष करे और स्वयं को इतिहास की जटिल प्रक्रिया से जोडे, ताकि उसकी रचनशीलता में जीवन के सार्थक मूल्य एवं प्रश्न उभर सकें तथा उनमें इतिहास को रोशनी की राह दिखाने की क्षमता हो।यह सब उसकी इतिहासदृष्टि, इतिहास विवेक पर निर्भर करता है। वह कल्पना के कोहरे, मिथ्या धुन्ध को साफ़ कर अपनी सार्थक इतिहासदृष्टि का प्रतिपादन करे। वह अपनी इतिहासदृष्टि का सरलीकरण न करे, क्यों कि इतिहास और मानव समाज इतना जटिल, अन्तर्विरोधात्मक है कि उसे यान्त्रिक ढ़र्रे से नहीं पहचाना जा सकता। यान्त्रिक पद्धति इतिहास को सतही स्तर पर ही समझेगी। इसकी सही पहचान हेतु ठोस अनुभव संपन्न इतिहासदृष्टि की आवश्यकता है, जो संदर्भों के बाहर और भीतर का सही आकलन कर सके। इतिहास ही संवेदना वैचारिकी को पुष्ट करता है तथा उसकी कलात्मकता को अर्थवान बनाता है।

आज चक्रमूलक पुनरुत्थान परक दृष्टियाँ सर्वथा अप्रासगिक हो चुकी है, हर कहीं अन्तर्विरोध और विरोधाभास दब जाते हैं तथा

---

[16] रमेश कुन्तल मेघ,क्यो कि समय एक शब्द है, पृ. सं. 34

समाज विरोधी, कला विरोधी तत्वों पर परदा पड जाता है और प्रत्येक समस्या को हम चक्र सिद्धान्त में देखते हैं। घटनाएँ संघर्ष की अपेक्षा चक्रमूलक हो जाती हैं जिससे वास्तविकता दबती जाती है और अन्तर्विरोध बढ़ते हैं। तमाम अन्तर्वोरोधों के निर्माण में इन्हीं शक्तियों का हाथ है 'इतिहास की दृष्टि चक्रमूलक नहीं होती,अतः पुनरुत्थान का चक्र निकाल दिया जाय तो भारतीय इतिहास की उपलब्धियों के यथार्थ को तथा उसमें निहित संभावनाओं को पहचाना जा सकता है।'[17]

'सही इतिहासदृष्टि ही लेखक की संवेदना का मानसिक परिष्कार करती है और अन्ततः लेखक की चेतना, इतिहास, मानव समाज का मानसिक परिष्कार करती है। यह दृष्टि उसे व्यक्तिवाद के संकीर्ण घेरे से निकालकर व्यापक सामाजिक चेतना प्रदान करने में सहायक सिद्ध होती है जिससे उसका भावबोध,इन्द्रिय बोध, रचनात्मक बोध समृद्ध, प्रौढ़, परिपक्व होता जाता है। वह इतिहास को बाह्य तथा आन्तरिक स्तर पर समग्रता में पकडता है। वह यथार्थ के संश्लिष्ट संदर्भों की पडताल करता है। अपनी ऎतिहासिक चेतना संपन्न करने हेतु इतिहास के अन्तस्तलों में व्याप्त तमाम विसंगतियों, अन्तर्विरोधों को पहचानता है, उनसे संघर्ष करता है एवं उनसे टकराता है। वह समाज विरोधी शक्तियों को सूक्ष्मता से पकडता है तथा सार्थक जीवन मूल्यों की वकालत करता है। उसकी ऎसी टकराहटपूर्ण इतिहासदृष्टि नवीन संभावनाओं के विकल्प संजोती है-'इस टकराहट के बीचों बीच रहकर ही यानी अपने को इतिहासबोध से सक्रिय करके ही लेखक ऎसा साहित्य रच सकते हैं,जो इस काल का प्रामाणिक और विश्वसनीय साक्ष्य हो, तभी वह संभवतः कालजयी हो सकता है।'[18]

---

[17] राजेश्वर सक्सेना, इतिहास विचारधारा और साहित्य पृ. सं. 144

[18] अशोक वाजपेयी, कुछ पूर्वग्रह, पृ. सं. 115

जब तक लेखक अपनी इतिहासदृष्टि का विकास कर सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक अन्तर्संबन्धों की जटिल द्वन्द्वात्मकता से नहीं जुडता और अपने बोध का कलात्मक रूपान्तरण नहीं करता तब तक उसका चेतनाबोध यान्त्रिकता व सतही प्रकृतवाद की ही द्योतक होगा। प्रतिबद्ध साहित्यकारों का यह दायित्व है कि सतही अनुभववादी दृष्टि से हटकर इतिहासदृष्टि द्वारा चेतना का गुणात्मक विकास करे। अनुभव का सतही रूप में ही उलझे रहना प्रकृतवाद की विशेषता है। साहित्यकार अपने अनुभव के सही स्वरूप को तब तक नहीं पहचान सकता जब तक चेतना में उभरकर आनेवाले प्रतिबिंब को भेदकर उन आधारभूत नियोजक तत्वों की पहचान नहीं करते जो अदृष्ट रहकर अनुभव के प्रतिबिंब रूप का गठन करते हैं। परन्तु सही ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के अभाव में वे अक्सर अपने अनुभव के सतही प्रतिबिंब को ही सब कुछ मान बैठते हैं और यह भूल जाते हैं कि इस प्रतिबिंब में उनके अनुभव के बहुत सारे सारभूत तत्व उनके द्वन्द्वात्मक अन्तःसंबन्ध या तो विकृत रूप में प्रकट होते है या फ़िर पूर्णतया अलक्षित रह जाते है। श्रेष्ठ साहित्यकार का दायित्व है कि वे तथ्यवादी, प्रकृतवादी सतही दृष्टि को त्यागकर वास्तविकता की संश्लिष्ट संश्लेषण प्रक्रिया को आत्मसात करे।इतिहासबोध की प्रामाणिकता विश्वसनीयता इतिहास के सतही अनुभववाद,प्रकृतवाद, तथ्यवाद पर आधारित नहीं,वरन इतिहास के द्वन्द्वात्मक अन्तःसंबन्धों, अन्तःप्रक्रियाओं की समग्रता में ही अन्तर्निहित है।इतिहासदृष्टि ही साहित्यकार के चरित्र व उसकी रचनात्मकता को निखार सकती है। साहित्य में साहित्यकार अपनी सच्ची इतिहासदृष्टि के द्वारा इतिहास के गुणात्मक रूपान्तरण सही पद्धति से किया जाता है तभी इतिहासबोध तथा साहित्य की मूल्यवत्ता निर्धारित होती है। साहित्यकार को संघर्ष प्रक्रिया से

गुज़रना पडेगा तब उसकी इतिहसदृष्टि में परिपक्वता आ सकती है।

पल पल परिवर्तित इतिहास के बारे में साहित्यकार की दृष्टि प्रबल होना है।उनको अनेक समस्याओं से जूझना पडेगा। इन समस्याओं से मूल्यों को उभारना है। सतही इतिहासदृष्टि साहित्यकार की चेतना को संकीर्ण बनाती है और इतिहासबोध एवं यथार्थबोध विकृत हो जायेंगे। साहित्यकार को अपनी सच्ची इतिहासदृष्टि के द्वारा सार्थक और निरर्थक की पहचान करना होगा। एक सही इतिहासदृष्टि ही रचनाकारों के इतिहासबोध के निर्माण में अपनी भूमिका निभा सकती है।

डा.शिवकुमार मिश्र के अनुसार 'मानव तथा उसके द्वारा निर्मित समाज के विकास की गति न तो चाक्रिक है, न रैखिक, इसके विपरीत वह कुण्डलाकार होती है,एक निश्चित लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है और बावजूद अल्पकालिक विरामों तथा ठहरावों के ऊर्ध्वमूलक होती है। वह एक ऎसी वैज्ञानिक समझ की अपेक्षा रखती है, जो उस विकास के मूल में निहित द्वन्द्वों तथा अन्तर्विरोधों को छानते हुए,उनके बीच से अग्रगामी विकास को परख सके। यह वैज्ञानिक इतिहासदृष्टि लेखक को तथ्यों के अंबारों में से आवश्यक को चुनने और अनावश्यक को छोड देने की समझ भी देती है और उन्हीं तथ्यों को उभारती है,जो किसी युग विशेष या साहित्य विशेष को रूपाकार देने में प्रासंगिक होते है। तथ्यों की व्यवस्था तथा उनके मूल्यांकन का कार्य भी इसी प्रक्रिया तथा इतिहासदृष्टि द्वारा संपन्न होता है''।[19]

---

[19] शिवकुमार मिश्र, आलोचना अंक 18 पृ. सं.34

सच्ची प्रामाणिक इतिहासदृष्टि कभी भी संकलन परक, टिप्पणियों का सतही निरूपण नहीं करती, न ही समाज, संस्कृति इतिहास के प्रश्नों,भीतरी बाहरी हलचलों का स्थूल तथ्य परक निर्णय देती है,प्रत्युत वह विवेकशील चेतना द्वारा उन ऐतिहासिक तथ्यों की संदिग्धता असंदिग्धता को व्याख्यायित विश्लेषित कर उसके समग्र कोणों सहित उपलब्धियो और सीमाओं को उभारती है।

कल्पना विधायक इतिहास सम्मत दृष्टि इतिहास को पुनर्जीवित कर देता है। हमारा अतीत वर्तमान को भी चुनौती दे जाता है। ऐतिहासिक तथ्य मूल्यों में परिणति पाते है। मूल्य विहीन इतिहासदृष्टि प्रासंगिक न बनेगी।यदि रचनाकार की इतिहासदृष्टि मूल्यपरक न है तो ऐतिहासिक तथ्य निरर्थक बन जायेगा।

उदाहरण के रूप में,प्रेमचन्द की रचनाओं में इतिहासदृष्टि का अभाव नहीं है। उनका समस्त रचना कर्म अपने समय का अन्तरूनी साक्ष्य ऐतिहासिक निर्णयों के आधार पर प्रस्तुत करता है। इतिहास की सामाजिक शक्तियों का पुनर्निर्माण जिस लेखकीय ऊर्जा से संभव होता है- वह प्रेमचन्द के पास थी। अनुभव और विचार का द्वन्द्व सामाजिक गतिशीलता से उपजे व्यवहारों की नाप-जोख दो स्तरों पर करता है-पहले वह व्यापक अनुभव के दौरान समाज के हृतकंपनों में घुल मिलकर अपने समय के रूप में घटित होता है।दूसरे अपनी निर्देशिका शक्ति के कारण अपने वर्तमान से असंतुष्ट होकर उसे खारिज करता हुआ एक प्रतिसमय की अवधारणा निर्मित करता है। प्रेमचन्द के व्यक्तित्व में ये दोनों तत्व क्रियाशील हैं। साहित्य के संदर्भ में लेखक को इसी को पाने के लिए अनुभव विचार कला चेतना के स्तरों में से गुज़रना पडता है। प्रेमचन्द इतिहास के स्रष्टा इसी शर्त पर थे कि वे अत्यन्त गंभीरता से समाज की तासीर में उभरते नाडी स्पन्दनों को परख रहे थे

और वैचारिक खुराक से विकासशील इतिहासदृष्टि को संपन्न कर रहे थे।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि साहित्यकार अपनी इतिहासदृष्टि के द्वारा इतिहासबोध को परिपक्व बनाकर ,साहित्य में उनकी समझ दिखाकर अनेक मूल्यपरक रचनाएँ हमारे सम्मुख रख देते हैं, ये अपनी विशेषताओं के कारण काल का अतिक्रमण कर विजय प्राप्त करती हैं।

इतिहासबोध से भविष्य की परिकल्पना

जब एक वर्ष समाप्त होता है तो हमारे सामने बीते बरस के हादसे और घटनाक्रम होते हैं।जब एक सदी गुज़रती है तो हम, मनुष्य और समाज की समस्याओं के बारे में सोचते हैं। मनुष्य और समाज के भविष्य की परिकल्पना हम यूँ ही कर लेते हैं और सही ढ़ंग से भी कर लेते हैं। हमारी चिन्ता अनेक बातों की ओर होगी, समाज में कौन सी नई समस्याएँ उत्पन्न होगी? उसके भविष्य में इनका क्या प्रभाव पडेगा? क्या इनका साक्षात्कार करने के लिए हम मानसिक, सामाजिक एवं तकनीकी तौर पर तैयार हैं? इन प्रश्नों का उत्तर कुछ बुद्धिजीवी ही दे सकते हैं। लेकिन हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि हमारे ज्ञान में जितनी अधिक अभिवृद्धि होती जा रही है और जिसके कारण हमारे विश्वास एवं संशय बढ़ते जा रहे हैं, हमारी भविष्यवाणियाँ यदि उतनी अधिक मिथ्या नहीं तो संदिग्ध अवश्य होती जा रही हैं। कब, कहाँ, कैसे, क्या हो जाय कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

आज हम ऐसे कहते हैं कि हम कलियुग में जी रहे हैं। अनेक प्रकार के हादसे और समस्याएँ हैं जैसे दो विश्वयुद्ध, अणुविस्फ़ोटों, सांप्रदायिक दंगे, विध्वंस, नरसंहार, बंब विस्फ़ोटों आदि। इन हादसे और समस्याओं के बावजूद मनुष्य अब भी एक उज्जवल भविष्य, स्वर्ण युग की प्रतीक्षा कर रहा है।

साहित्य की केन्द्रीय चिन्ता मनुष्य ही है।उनका बीजभाव मानवीय संबन्धों में ही अन्तर्निहित है। जब तक मनुष्य के भीतर मनुष्य के प्रति रागात्मक भाव जीवित है, तब तक मानवीय संबन्धों का भविष्य बचा रहेगा तब तक साहित्य का बचा रहना भी अनिवार्य है। आज अनेक प्रकार के सार्थक और निरर्थक साहित्य की रचना हो सकती है। इन रचनाओं के बल पर हम कह सकते हैं कि भविष्य में अनेक मूर्त रचनाएँ रचित हो जायेंगी। आज मनुष्य इतिहासबोध से भविष्य के बारे में कुछ परिकल्पनाएँ और संभावनाएँ बनाता हैं।

इस तरह की संभावनाओं और परिकल्पनाओं का वर्तमान की विभीषिका से कोई संबन्ध नहीं।हम सब वर्तमान की विभीषिका से बचने के लिए 'ऐतिहासिक भविष्य' का निर्माण करते हैं।वे चाहे एक सुखद भविष्य-समाज हो, कंप्यूटर निर्धारित रोबो का यन्त्रलोक हो। कुछ लोगों ने मृत्यु लोक से भयभीत होकर भविष्य लोक में शरण ली है।इतिहास यानी अतीत की विगत घटनाओं की ओर चलते हुए आगे की तरफ़ भी हम बढ़ते है तब पता चलता है कि आगे और पीछे का इतिहासबोध स्वयं अपने में छलना है।समय की दृष्टि से जो आगे हो,ज़रूरी नहीं वह विगत की कसौटी बन सके,उलटे की तरह जो बीत चुका है,वह एक नैतिक मर्यादा के रूप में मनुष्य के आगे आगे चलता है।

मनुष्य अपना इतिहास खुद बनाता है,वह अनुभव राशि की मिट्टी से अपना भविष्य गढ़ सकता है,ये सब उनके इतिहासबोध में सन्निहित है। भविष्य हमें कुछ नहीं देता,खुद हमें उसका निर्माण करने के लिए अपना सर्वस्व अपना जीवन तक देना पडता है। साहित्यकार अपनी रचना के द्वारा भविष्य इतिहास को पुष्ट करता है। भविष्य इतिहास की संभावनाओं को इतिहासबोध के द्वारा संपन्न करता है। कुछ साहित्यकार साहित्य की सार्थकता बनाये रखने के लिए प्रतिबद्ध रहते हैं।वे कुछ दे सकते हैं,लेकिन उनके पास दूसरा जीवन नहीं है,मात्र सृजन रस ही उनके पास है। अतीत के खजानों से कुछ वे उनके भीतर आत्मसात कर नये रंग रूप में सृजित करते हैं। अधिकत्तर साहित्यकार भविष्य को दासभाव की दृष्टि से देखते हैं।

समाज में सुखद स्थिति बनाये रखने के लिए मनुष्य क्रान्ति करता था,लेकिन यह भविष्य को सुखद बनाने के लिए था। जिस भविष्य निर्माण के लिए वह क्रान्ति करता था वह उसके वर्तमान को और भी अधिक कुत्सित और दयनीय बनाकर छोड देती है। इसका प्रभाव साहित्यकारों पर अवश्य पडा था।

एक तरफ़ मनुष्य इतिहासबोध से अक्रान्त है,दूसरी तरफ़ मृत अतीत काल्पनिक भविष्य के बीच स्वयं इतिहास की जीवन्त धारा सूख गयी है। भविष्य का बोध हमें कहीं आनेवाले समय में नहीं,पीछे गुज़र जानेवाले अतीत में उपलब्ध होता है।हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने इतिहास का बोध प्रकृति की नैसर्गिक लय से प्राप्त किया था।पश्चिम के इतिहास आतंक से नहीं,इसलिए वह व्यक्ति की मृत्यु को भरा हुआ पत्ता मानते थे जो खुद मिट्टी में मिल नये वृक्ष में अंकुरित होता है।

कुल मिलाकर यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि साहित्यकार समाज के गहरे संकट के बावजूद अनेक मूर्तपरक रचनाओं की सृष्टि कर रहे हैं। इससे अनेक परिवर्तित आशाओं की गूँज स्वतः मुखरित हो रही है इसलिए साहित्य का भविष्य सुरक्षित है।

समकालीन हिन्दी उपन्यास में इतिहासबोध

समकालीन हिन्दी उपन्यास में इतिहासबोध की जाँच पडताल करने की ज़रूरत है। कई रचनाकारों के उपन्यासों में इतिहासबोध मौजूद है। इनमें उल्लेखनीय है, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का 'अनामदास का पोथा', अमृतलाल नागर के 'करवट', 'पीढ़ियाँ', दूधनाथ सिंह का 'आखिरी कलाम', अलका सरावगी के 'कलिकथा वाया बायपास', शेष कादंबरी', बलवन्त सिंह का''काले कोस', काशीनाथ सिंह का 'काशी का अस्सी', कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान'', रवीन्द्र वर्मा का 'निन्यानवे , गिरिराज किशोर का 'पहला गिरमिटिया', श्रीलाल शुक्ल का 'विश्रामपुर का सँत' और'नासिरा शर्मा का 'ज़िन्दा मुहावरे''

अन्त में यह कहा जा सकता है कि इतिहास का रथ कभी रुकता नहीं है। वह अपनी निश्चित गति से गतिमान रहता है। वह इस बात की चिन्ता या अपेक्षा नहीं रखता कि रचनाकार उसकी गति को पकडने में समर्थ हो या नहीं। यह तो रचनाकार की अपनी जागरूकता का सवाल है कि वह इतिहास की संवेदनात्मक अर्थवत्ता से अपने आत्मबोध को समृद्ध रखे। अतः सिद्ध हुआ कि इतिहासबोध एक अनन्त, अनवरत, सतत, गतिमान समय प्रवाह

है। समय की संवेदना का वाहक मात्र लेखक होता है। लेखक को अपनी रचनात्मक प्रतिभा का प्रतिफ़लन काल-प्रवाह से ही प्राप्त होता है। इतिहासबोध हमेशा रचनाकार की मदद करता है। उनकी महान कालजयी रचनाएँ अपने व्यापक अर्थ में अपने समाज का सही इतिहास बन जायेगी।

समकालीन हिन्दी उपन्यास में समाज सापेक्ष इतिहासबोध

सामाजिक जीवन

समाज एक व्यापक शब्द है। परिवार से लेकर विश्वव्यापी मानव समूह तक को 'समाज के विविध रूपों में गृहीत किया जाता है। 'समाज शब्द का वस्तुपरक आशय ऐसे अधिसंख्यक व्यक्तियों के समूह से होता है जिनके उद्देश्य स्पष्ट और स्थायी होते हैं'।[1] किसी विशेष स्थान पर रहने वाले व्यक्तियों का समूह उसके सभी मूल्यों से बँधने पर ही समाज की संज्ञा पा सकता है। हम जानते हैं कि धर्म,राजनीति,भाषा तथा अर्थ व्यवस्था आदि वे मूल तत्व हैं जो समाज की एक रूपता को आधार प्रदान करते हैं।

इतिहास और समाज के संबन्ध में द्वन्द्वात्मकता है, दोनों एक दूसरे से जुडे हुए हैं। मानव समाज समष्टि में इतिहास के निर्माता और अध्येता दोनों है। इन दोनों की सापेक्षता हर पल में हम दर्शाते हैं। न समाज के बिना इतिहास बनता है और न इतिहास विहीन समाज होता है। इतिहास से समाज को शक्ति मिलती है और इतिहास का पोषण समाज से होता है। मानव समाज का जो रूप हम आज देख रहे हैं वह एक घडी, एक दिन, एक वर्ष का नहीं मानव के सतत विकास का फ़ल है। इस रूप में इतिहास समाज के प्रारंभ और अन्त दोनों है। व्यक्तियों द्वारा संगठित समाज इसकी दिशा दे रहा है। व्यक्ति समाज से अलग होकर अकेला रहता है तो उसकी कोई सत्ता नहीं होगी समाज पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालकर,सामाजिक भावनाओं को मुखरित कर जब

---

[1] साहित्य की सामाजिक भूमिका, डा देवेश ठाकुर पृ. सं.13

वह जीता है तब उसका कार्यकलाप या विचार विमर्श ऐतिहासिक महत्व रखता है।

'मानव जीवन असीम कालखण्डों में प्रवाहमान है, जिसमें अजस्त्रता रही है''।[2] प्रत्येक मानव जीवन इतिहास का अभिन्न अंग होता है। जब मनुष्य आत्मचेता होता है, तभी उसमें ऐतिहासिक बुद्धि का विकास होता है। फ़लतः इतिहास के प्रति चेतना का विकास होता है और ऐसा आत्मचेता मावव अपनी दृष्टि के अनुरूप अपने अतीत को अपने वर्तमान के अनुक्रम में भविष्य की संभावनाओं के साथ प्रस्तुत करता है।

'इतिहास घटित से ज़्यादा मानव जीवन का अध्ययन है। यह मानव निष्क्रिय या घटना में समाप्त हो गया निर्जीव मानव नहीं अपितु वर्तमान में खपकर फ़लता फूलता, अपनी भविष्य की संभावनाओं के साथ जीता हुआ मानव है, जिसने सामाजिक विषमताओं में संघर्षरत होकर उन्नति की ओर बढने का प्रयास किया है''।[3]

अतीत, वर्तमान और भविष्य की प्रक्रिया निरन्तर गतिशील होती रहती है। इसी प्रक्रिया में अतीत अतीत ही रहता है।किन्तु वर्तमान और भविष्य क्रमशः अतीत की स्थिति को ग्रहण करते हैं और योगपदीय रूप से इतिहास की विषयवस्तु बनते रहते हैं। इस विषयवस्तु को सहित्यकार अपनी रुचि के अनुसार कल्पना का पुट देकर अत्यन्त सजीव साहित्य रचना के रूप में हमारे सम्मुख रख

---

[2] साहित्येतिहासिक दर्शन और हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक प्रक्रिया डा. हरिश्चन्द्र मिश्र पृ. सं .23

[3] साहित्येतिहसिक दर्शन और हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक प्रक्रिया, डा. हरिश्चन्द्र मिश्र पृ. सं.25

देता है। रमेश दवे के अनुसार 'साहित्यकार को समाज से मनुष्य मिलते हैं ,वस्तुएँ मिलती हैं, विषय मिलते हैं, घटनाएँ और पात्र मिलते हैं, तरह तरह के विश्वास, अविश्वास, अन्धविश्वास मिलते हैं, लोकाचार, लोक-प्रसंग और सास्कृतिक आधार मिलते हैं, ये सब जब समाज में हैं, सहज सामान्य और जीवन गत ज़रूरतें बनकर भी जुडे हैं। लेकिन ये सब सर्जक के पास आते हैं तो मनुष्य चरित्र या पात्र में बदल जाते हैं ,घटनाएँ और स्थितियाँ परिवेश बन जाती हैं, लोकाचार या तमाम प्रकार के लोकप्रसंग सौन्दर्य और संवेदन बन जाते हैं और विश्वास अन्धविश्वास मिथक में बदल जाते है''।[4]

जीवन का प्रवाह इतिहास के रूप में निरन्तर गतिशील रहा। धीरे धीरे जीवन की धारावाहिकता के साथ अतीत की घटनाओं का संचयन भी प्रारंभ हुआ। उपन्यास में भारतीय समाज के जीवन के विविध भावस्तर समाहित हुए हैं। इसकी गतिविधि को समझने केलिए जीवन बोध की विविध दृष्टियों से अवगत होना आवश्यक है। जीवन की उलझी हुई परिस्थितियाँ उपन्यास को विरासत के रूप में प्राप्त हैं।उपन्यास जीवन का वैज्ञानिक और दार्शनिक अध्ययन है। मानव जीवन के निकट रहने के कारण उपन्यास अपनी अलग पहचान रखता है। सामाजिक जीवन इतिहास के रूप में हर पल सुरक्षित है। प्रत्येक व्यक्ति के मानस में सामाजिक जीवन इतिहासबोध के रूप में समाहित है। एक साहित्यकार अपने अनुभवों और दूसरों के अनुभवों को घटना प्रधान मानकर विशेषकर सामाजिक घटना मानकर अपनी रचना में रूपान्तरित करे तब वह साहित्य अपने आप में श्रेयस्कर मान बैठता है।

---

[4] चिन्तन सृजन वर्ष ३ अंक ४ समाज और साहित्य संबन्धों के राग विराग रमेश दवे, पृ. सं. 34

उपन्यास में सामाजिक जीवन के अनेक रूप विद्यमान हैं। आदिकालीन समाज से लेकर आज के त्रासदीय समाज जीवन के साथ जुडे हुए उपन्यास अपने आप में गतिशील हैं। इस गतिशीलता के अन्तर से हमें कुछ अच्छे उपन्यास मिलते हैं, उन्हें सही ढंग से मूल्यांकन करना हमारा लक्ष्य होना चाहिए। हज़ारिप्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'अनामदास का पोथा' उनका अन्तिम उपन्यास है। इस उपन्यास में उन्होंने संसार को संसार की परिस्थितियों को,घटनाओं को और स्वरूप को विशेष ढंग से दिखाया है। यह मानवीय जिजीविषा की कहानी है, क्यों कि जिजीविषा का संबन्ध जीवन से है और जीवन को सुखी बनाने की प्रेरणा इस उपन्यास में निरन्तर मिलती है। इसमें प्रस्तुत सामाजिक जीवन में उदारता का दर्शन ज़्यदात्तर मिलता है। द्विवेदी जी अपने इतिहासबोध के बल पर उपनिषद्कालीन सामाजिक जीवन को हमारे सामने रखने में अत्यन्त सफ़ल हुए हैं। इसमें चित्रित सामाजिक जीवन में लालित्य है, बोझ नहीं है। कमलेश्वर द्वारा रचित 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में चित्रित प्रागैतिहासिक जीवन हमें विचार विमर्श करने केलिए अधिक प्रेरित करता है। 'अनामदास का पोथा' में चित्रित प्रागैतिहासिक जीवन अपने आप में महत्वपूर्ण है, लेकिन इससे बिल्कुल अलग दृष्टि से विन्यसित प्रागैतिहासिक जीवन 'कितने पाकिस्तान' को एक अच्छे दायरे में नयी व्याख्याओं के साथ खडा कर देता है। इसमें विशद रूप में नहीं छोटी छोटी कथाओं के संदर्भ से यह हमें मालूम होता है। दलितों की स्थिति, वैदिक कालीन सामाजिक संदर्भ, औरत को देखने की दृष्टि, मानव की मुक्तिकामी आकांक्षा, युद्ध का भयानक वातावरण आदि को इज़हार करने केलिए वैदिक युगीन सामाजिक संदर्भों को लेखक ने उजागर किया है। अनामदास का पोथा में विभाजित कथाएँ नहीं है। इसमें एक फ़लक पर बहती कथा है इसलिए इसमें चित्रित सामाजिक जीवन को पकडना सरल कार्य है। इसमें अनेक स्थलों में सामाजिक दर्शन की अधिकता है।

उपन्यास की शुरुआत की पंक्तियों से उस आदिम समाजिक जीवन का सही रूप हम दर्शाते हैं।'उन दिनों देश का अधिकांश भाग जंगलों से घिरा हुआ था इन जंगलों में जहाँ अनेक हिंसक जन्तु फ़ैले हुए थे,वहाँ ज्ञान के साथ कुछ तपस्वी भी यत्र-तत्र अपनी कुटिया बनाकर रहा करते थे'।'[5] समाज सेवा की सच्चाई बताने वाली पंक्तियाँ हमें आज के संदर्भ में उसकी ओर जाने केलिए प्रेरित करती हैं। ऋतंबरा के इन वाक्यों में यह ठीक तरह से उजागर है 'एकांत का तप बडा तप नहीं है बेटा। देखो संसार में कितना कष्ट है,रोग है,शोक है,दरिद्रता है, कुसंस्कार है। लोग दुख से व्याकुल है। उनमें जाना चाहिए,उनके दुख का भागी बनकर उनका कष्ट दूर करने का प्रयत्न करो। यही वास्तविक तप है। जिसे यह सत्य प्रकट हो गया है कि सर्वत्र एक ही आत्मा विद्यमान है वह दुख कष्ट से जर्जर मानवता की कैसे उपेक्षा कर सकता है वत्स?'[6] उस ज़माने मे लोग तपस्या से सब हाज़िल करता था । रिक्व मुनि के वाक्यों को याद करके रैक्व ने बताया कि 'पिताजी ने बताया है कि तपस्या की कसौटी तो समाज है''।[7] इस तरह तपस्या को श्रेष्ठ मानने वालों केलिए सावधान होने की चेतावनी देने का प्रसंग शंबूक की कथा के द्वारा बताकर कमलेश्वर श्रीराम जी के खिलाफ़ सवालियानिशान उठाते हैं। अनामदास का पोथा में हर कहीं मानवीय जिजीविषा का स्वर मुखरित है। 'कितने पाकिस्तान' में गिलगमेश, कबीर आदि के द्वारा मानव की मुक्तिकामी आकांक्षा गूँज उठ्ती है। मृत्यु को जीतने केलिए गिलगमेश औषधि खोजकर निकलने लगा।उसकी आवाज़ सुनो 'सुनो!देवताओं सुनो! पृथ्वी सम्राट गिलगमेश की आवाज़! यह दूसरी आवाज़ है! यह भोग विलास और पशुवत दैहिक ऎश्वर्य की अवाज़ नहीं, यह मनुष्य की पीडा,दुख, यातना, श्रम और मृत्यु से

---

[5] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. सं.24
[6] अनामदास का पोथा ,हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. सं.59
[7] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. सं.64

मुक्त करने की आवाज़ है !- मै पीडा से लडूँगा ......यातना सहूँगा...... कुछ भी हो मै अपने मित्र और मनुष्य मात्र केलिए मृत्यु को पराजित करूँगा! मैं मृत्यु से मुक्ति की औषधि खोज कर लाऊँगा' ।[88] आज भी हम गिलगमेश के इन्तज़ार में हैं , क्यों कि गिलगमेश की यात्रा आज भी ज़ारी है इन पक्तियों को देखिए 'सदियाँ बीत गयी। और अब तक गिलगमेश की यात्रा ज़ारी है ....औषधि की तलाश में वह अब भी सागर्तल की गहराइओं में उतरता जा रहा है........उतरता जा रहा है '।[9] कबीर जो है वे दिक्काल की सीमाओं को लाँघकर वर्तमान में उतर आते है और वर्तमान संघर्षों में शरीक होकर अपने दायित्व भरपूर निभाते है। कबीर अंधा है ,मानव समाज में घटित हो रहे सभी प्रकार के विषैले वातावरणों को मिटाने के लिए वे बोधि वृक्ष लेकर चल पडा ।'हा बोधि वृक्ष। बोधिवृक्ष की जडें नीलकंठ की तरह सारा विष पी लेती हैं......... पहला बोधि वृक्ष मै पोखरन में लगाऊँगा, फ़िर सरहद पार करके दूसरा वृक्ष मै चगाई की पहाडियों में लगाऊँगा ....तो मै चलूँ'' ।[10] उपन्यास के अंत इन्हीं वाक्यों के द्वारा होता है। कबीर के ज़रिए मानव समाज के भविष्य के प्रति आशा की किरण खोज ही लेता है।

स्वतंत्रता के पूर्व और स्वतत्रता के पश्चात का सामाजिक जीवन उभारने वाले उपन्यासों में अमृतलाल नागर के उपन्यास ''करवट', और पीढियाँ, रवीन्द्र वर्मा का 'निन्यानवे' अलका सरावगी के 'कलिकथा वाया बाइपास, आदि हैं। इन चार उपन्यास में कुछ पीढियों के द्वारा भारतीय समाज हमारे सम्मुख प्रकट होता है। करवट उपन्यास में नागरजी ने बीसवीं सदी के शुरू-शुरू तक के लगभग दो सौ वर्षों का लेखा-जोखा किया है। दिल्ली की

---

[8] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर पृ. सं. 34

[9] कितने पाकिस्तान,कमलेश्वर ,पृ. सं. 35

[10] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर,पृ. सं. 363

मुगलशाही और लखनऊ की नवाबी का अन्त और अंग्रेज़ी राज का आरंभ, अंग्रेज़ों की गुलामी की स्वीकृति, नयी पीढी का उदय, दयानन्द सरस्वती का आर्यसमाजी आन्दोलन, कांग्रेस का जन्म, सुविधाभोगी जीवन के प्रति आकर्षण और कर्मकाण्ड को धर्म मान लेने की भूल, सुधारवादियों के निजी और सार्वजनिक जीवन का विरोधाभास, समाज के स्तर पर उदार, परिवार और बिरादरी के स्तर पर अनुदार और कट्टरपंथी, आदि चित्रों को उभारकर बीसवीं सदी शुरू होने से पूर्व के दो सौ वर्षों के भारत के सामाजिक जीवन का इतिहास उन्होंने प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास के द्वारा लेखक यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि भारत में अंग्रेज़ी शासन जम जाने का कारण हिन्दुस्तानी लोगों की बेवकूफ़ी है। व्यापार के नाम पर वे यहाँ आये और उन्होंने अपना राज की नींव डाली। उस ज़माने में यहाँ के लोग अन्धविश्वास और रूढियों के अन्धकार में खोए हुए थे। इस तरह के समाज में अपने अधिकार थोपने केलिए अंग्रेज़ों को कोई दिक्कत न हुई।

गदर के एक प्रसंग में अंग्रेज़ों द्वारा किए गये अत्याचारों का वर्णन देखिए- 'अंग्रेज़ों ने घेरा डाल-डाल कर गाँव के गाँव पूरे जला दिए। जलती आग से जो निरीह बाहर निकला उसे गोरों ने संगीनों से गोद-गोद कर फ़िर आग में ढकेल दिया। स्त्रियों और बच्चों की निर्मम हत्या की गई। उन्हें हवा में उछाल-उछाल कर किरचों से गोदा, घर के पुरुषों को खंभे से बाँधकर घर की स्त्रियों के साथ बलात्कार किए, फ़िर उनके पति व बच्चों को मार डाला''।[11] अंग्रेज़ों के इस तरह के ज़ुल्मों को भारतीय जनता सह नही सकती, इसके कारण जनता में विद्रोह की भावना भड़कने लगी अंग्रेज़ों के शासन को हटाने केलिए उत्तरी भारत का किसान तक गदर में भाग लेने केलिए फ़ौजी वर्दी पहनकर तैयार हो गया

---

[11] करवट, अमृतलाल नागर,पृ. सं. 121

और अपने प्राणों की आहुति देने केलिए तैयार हो गया। प्राचीनता और नवीनता का तालमेल इस उपन्यास में दृष्टिगोचर होता है। समाज के परिवर्तनों को बहुत ही खूबी और खामी के साथ उन्होने चित्रित किया। 'करवट' में 1852 से लेकर 1905 तक के भारतीय समाज का ऐतिहासिक विकास है तो 'पीढियाँ' में 1905 से लेकर 1986 तक के राष्ट्र और बाद के दशकों के विघटनवादी आन्दोलन का चित्रण है। 'पीढियाँ' में चित्रित समाज ज़्यादात्तर भारतीय स्वतत्रता संग्राम के समय का स्वदेशी आन्दोलन का समाज है। इसके सात इसमें रौलक्ट एक्ट, असहयोग आन्दोलन, बंग-भंग आन्दोलन, सइमन कमीशन, काकेरी-काण्ड और सविनय अवज्ञा आन्दोलन से लेकर बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गान्धी, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, एनी बेसेंट, हरिकृष्ण अवस्थी जैसे राष्ट्रीय चरित्रों की चर्चा है। उनके योगदानों का मूल्यांकन है। 1942 के आन्दोलन के बाद नागरजी सीधे नवे दशक में आ जाते है। पंजाब में अलगाव वादी गतिविधियाँ, शहबानो केस, रामजन्मभूमि विवाद, जातिवाद से लेकर श्रीमती इन्दिरा गाधी की हत्या को उठाते हुए स्वातंत्र्योत्तर भारत की एक उपस्थित तस्वीर पेश करने की कोशिश की गयी है।

रवीन्द्र वर्मा के उपन्यास 'निन्यानवे' में आज़ादी के आरंभ से बाबरी विध्वंस तक का समाजिक जीवन है। जिसके पात्र उन्नीसवीं सदि से 1992 तक के इतिहास चक्र के जीवन्त अंग है। अलका सरावगी का 'कलिकथा वाया बाइपास इससे मेल रखने वाला उपन्यास है। कलिकथा में इतिहास के अलावा और कुछ है भी नहीं। मरुप्रदेशीय मारवाडियों के स्थानान्तरण, कल्कत्ता शहर, ईस्ट इण्डिया कंपनी का कस्ता शिकंजा, स्वतंत्रता आन्दोलन, सांप्रदायिक दंगे, भारत विभाजन-भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेज़, गाँधी, सुभाष और नेहरू-बंगाली क्रान्तिकारी और ज़्मीन्दार, अड्वाणी की रामरथ यात्रा और बाबरी मस्जिद का ध्वंस से लेकर

ग्लोबलाइज़ेशन की बाज़ारू संस्कृति की ओर बढता बीसवीं सदी का नवधनिक हिन्दुस्तानी तक लेखिका का इतिहासबोध उत्तेजनकारी और अक्रामक है। कलिकथा में छह पीढियों की कथा है तो निन्यानवे में चार पीढियों की कथा के साथ सामाजिक विकास उभरकर सामने आता है। बलवन्त सिंह का उपन्यास 'काले कोस' में अंग्रेज़ों द्वारा बोयी गयी साप्रदायिकता का चित्रण है। साथ ही साथ पूँजिवादी व्यवस्था का ज़िक्र भी है। सांप्रदायिक उन्माद के संबन्ध का प्रसंग देखिए 'जो कुछ हुआ है उसमें मुस्लिम जनता का दोष नहीं है। यह सरासर अंग्रेज़ों की शरारत है, बल्कि पूँजिवादी व्यवस्था की शरारत है कि आज भोली-भाली जनता का ध्यान भूख,प्यास,पूँजी के गलत बँटवारे और पूँजिपतियों के अन्यायों और अत्याचारों की ओर से हटाकर उन्हें धर्म के नाम पर भडकाया जा रहा है,एक दूसरे के खून का प्यासा बनाया जा रहा है,लेकिन अन्त में मानवता की जीत होगी, मज़दूरों और किसानों की विजय होगी और धर्म और जाति के भेद मिटाकर दुनिया के सब मेहनतकश इन्सान एक दूसरे के गले मिलेंगे। मनुष्य कभी नहीं मरेगा! मनुष्य कभी नहीं मर सकता।'[12] उपन्यास के इन वाक्यों में अंग्रेज़ों की साजिश और पूँजिवादी व्यवस्था का स्वर दृष्टिगोचर होता है। साथ ही साथ भविष्य की स्वर्णमयी समाज का संकेत भी है। इसमें अधिकतर ग्रामीण कथा है ग्रामीण समाज के साथ नगरीय समाज का वर्णन भी है।

अलका सरावगी का 'शेषकादंबरी' को एक महिला की इकहरी जीवन कथा के साथ गुंफ़ित बीसवीं सदी के इतिहास की संक्षिप्त प्रस्तुति के रूप में देखा जा सकता है। यथार्थ घटनाओं में 'जादू' या 'फ़ैंटेसी' के थोडे से 'अलाय' खोट की मिलावट से एक टिकाऊ सबाल्टर्न इतिहास की रचना होती है। रूबी दी का मामा

[12] काले कोस, बलवन्त सिंह,पृ. सं. 261

देवीदत्त के माध्यम से बीसवीं सदी के भारतीय इतिहास जैसे चंपारन आन्दोलन,खेडा सत्याग्रह,डांडी का नमक सत्याग्रह,कांग्रेस का लखनऊ अधिवेशन,अपातकाल हमारे सम्मुख आ जाते हैं।स्त्री शोषण समाज में घटित होने वाली अत्यन्त दर्दनात्मक घटना है। अनेक स्त्रियों की विवश स्थिति को अत्यन्त मार्मिक ढंग से लेखिका ने इस उपन्यास में प्रस्तुत किया है।

'आखिरी कलाम' उपन्यास में दूधनाथ सिंह ने विषयवस्तु के रूप में बाबरी मस्जिद ध्वंस को अपनाया। अतीत से लेकर वर्तमान त्रासदी की ज्वलन्त सामाजिक घटना के रूप में अयोध्या बाबरी मस्जिद समस्या हमारे समाज में विद्यमान है। बाबरी मस्जिद ध्वंस के पश्चात जनता को कई प्रकार की विडंबनाओं को सहना पडा। बाबरी मस्जिद ध्वंस के बाद के सामाजिक जीवन की विडंबनाओं को अपने ढंग से उपन्यासकार प्रस्तुत करते हैं। इसमें इसका विस्तार से वर्णन है।

विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान में जी रहे मुसलमानों की मानसिकता का अत्यन्त सजीव चित्रण नासिरा शर्मा ने अपने उपन्यास 'ज़िन्दामुहावरे' में चित्रित किया है। श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'विश्रामपुर का सन्त' में सामाजिक संदर्भ के साथ वैयक्तिक आन्तरिक पक्ष ज़्यादा है। इसमें भू समस्या पर अनेक कोणों से दृष्टि डाली गयी है। ऱाजनीतिक और सामाजिक जीवन के दबाव को संवेदना के साथ चित्रित करने वाला उपन्यास है 'काशी का अस्सी'। यह काशीनाथ सिंह द्वारा लिखा गया उपन्यास है। कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान' में इतिहास की भरमार है। इसमें अनेक ऐतिहासिक पात्रों के द्वारा हर युग की समस्याएँ हमारे सम्मुख प्रत्यक्ष होती हैं। वैदिक कालीन समाज से लेकर मध्यकालीन समाज और आज के असंस्कृत समाज तक,विस्तार से इसमें सम्मिलित है। 'आखिरी कलाम', 'कितने

पाकिस्तान', 'काशी का अस्सी' तीनों का सरोकार सांप्रदायिकता, जातीयता, स्त्री विमर्श आदि पर है। 'काशी का अस्सी' में रजनीतिक और सामाजिक गतिविधियों का चित्रण है वह बिलकुल समकालीन है।

इतिहास बोध के ज़रिए सामाजिक व्यवस्था की पहचान

पाषाण युग से मानव आज के वैज्ञानिक युग तक आ गया है। इनके बीच में मानव ने कई युगों को पार किया। इतिहास इसके लिए अनेक तथ्य हमारे सम्मुख रख देता है। इसके द्वारा मानव जीवन के परिवर्तित रूप का पता चलता है। मनुष्य के परिवर्तन का इतिहास देखा जाए तो पता चलता है कि वे प्रगति से और अधिक प्रगति की ओर जा रहा है। विभिन्न युगों में मानव जीवन प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था के अन्तर रखा हुआ था। मानव की बौद्धिक वृद्धि से समाज में अनेक परिवर्तन दिखाई पडे। मानव के बौद्धिक परिवर्तन की एक परिणति साहित्य के रूप में प्रासंगिक है। समाज और साहित्य एक दूसरे से पूरक बनकर संबन्ध स्थापित करता रहा है। साहित्य रचना भी सामाजिक व्यवस्था के अनुसार होना है। तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था से प्रभावित होकर साहित्यकार अपनी रचनाओं की सृष्टि करता है। सामाजिक व्यवस्था की निरन्तरता हर कृति में एक प्रकार से नहीं है। समाज के परिवर्तन के साथ सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन आने की संभावना है। यह एक एक़ रचना को प्रभावित करता है। समाज की सारी व्यवस्थाओं को विस्तार से या संकेत के रूप में अपनी रचनाओं में समेटकर साहित्यकार अपना रचना क्षेत्र समृद्ध करता

रहा है। साहित्य की अनेक विधाएँ हैं, इन विधाओं में उपन्यास अपने आप में महत्वपूर्ण है। आरंभ से लेकर समाज का अत्यन्त विस्तृत रूप उपन्यास में देखा जा सकता है। 'समाज में घटित हुई घटनाओं का अत्यन्त सजग बोध उपन्यास के द्वारा मिलता है। यह सजग बोध और बोध वृत्ति से मनुष्य की बौद्धिकता या चेतना व्यापक हो जाती है'' ।[13]

मनुष्य सामाजिक प्राणी है, इसलिए उन्हें कुछ सामाजिक व्यवस्थाओं का सामना करना पडा है। जातीय, आर्थिक, शैक्षणिक आदि व्यवस्थाएँ इसमें शामिल हैं।समाज में स्थित इन व्यवस्थाओं का ज़िक्र न करने से साहित्य रचना अधूरी रह जायेगी। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'अनामदास का पोथा' 1975 में लिखा गया उपन्यास है। उसमें तत्कालीन समाजिक व्यवस्था का चित्रण नहीं है, वह उपनिषद्कालीन सामाजिक स्थिति को उजागर करने वाला उपन्यास है। यह उपन्यास ऱाजा - प्रजा, गुरु - शिष्य, मैंता - पिता, राजकन्या आदि उस स्थिति को उदात्त करते हुए अनेक सामाजिक आदर्शों और विचारों को हमारे सम्मुख रख देता हैं। बलवन्त सिंह का उपन्यास 'काले कोस' 1982 में लिखा गया उपन्यास है। यह उपन्यास आधुनिक समाजिक व्यवस्था का ज़िक्र करने वाला उपन्यास है। ग्रामीण समाज व्यवस्था की खूबी और खामी के साथ नगरीय समाज व्यवस्था भी इसमें शामिल है, साथ ही साथ अंग्रेज़ों के कलंकित हाथ में पड गयी समाजिक स्थिति का वर्णन है।उन लोगों की बुरी मानसिकता भारतीय समाज को तबाह करने योग्य थी। वर्ग वैषम्य का उदय, पूँजीवादी व्यवस्था आदि उन लोगों की देन है। इससे हमारी व्यवस्था दूषित बन गयी। अमृतलाल नागर के 'करवट', 'पीढियाँ', रवीन्द्र वर्मा का 'निन्यानवे',अलका सरावगी का 'कलिकथा वाया बाइपास' आदि

[13] आलोचना और आलोचना, देवीशंकर अवस्थि,पृ. सं. 64

उपन्यास में भारत में हुए अंगेज़ी अधिवेशन का विवरण है। स्वतंत्रता पूर्व समाज व्यवस्था के साथ स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद की सामाजिक व्यवस्था का चित्रण है। अंग्रेज़ लोगों के राज से त्रस्त जनता ने स्वतंत्रता के लिए अपना जीवन बलि के रूप में दे दिया। उन लोगों के बलिदान, कर्तव्यपरायणता, आदि के बल पर हमें आज़ादी मिल गयी। लेकिन समाज में फ़ैल गयी विषैली स्थिति परंपरा के रूप में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी हमारे समाज में सुरक्षित है। कुछ बदलावों के साथ,फ़िर भी विषैली सामाजिक स्थिति की भयानकता मनुष्य आज भी भोग रहा है। सांप्रदायिकता, भूमण्डलीय व्यवस्था, बाज़ारीकरण, उदारीकरण आदि विशेषण देकर उसके संबन्ध में खूब बहसें हो रही हैं,लेकिन मनुष्य की प्रतियोगिता मानस में कोई बदलाव नहीं आया है। ‘कलिकथा वाया बाइपास ’, ‘कितने पाकिस्तान ’, ‘निन्यानवे’‘ आदि उपन्यास में इसका विस्तार से वर्णन है। बीसवीं शताब्दी की नारी की स्थिति उजागर करने वाले उपन्यास ‘शेष कादंबरी ’,नारी को पूजनीय मानने वाले समाज के लिए यह सवाल उठाता है कि क्या नारी के शरीर और मन सिर्फ़ तृप्ति का साधन मात्र है? वैदिक कालीन समाज द्वारा नारी के ऊपर किए गये अनगिनत अत्याचारों की किस्सा सुनाकर या उस पर बहसें कराकर, समकालीन स्थिति में बाज़ारू चीज़ के रूप में बदल गयी वर्तमान नारी की हैसियत से संबन्धित विचार ‘कितने पाकिस्तान ‘में आ गये हैं।

ज़मीन्दारी प्रथा का अन्त के कुछ पहले 1952 में आचार्य विनोबा भावे के नेतृत्व में भूदान यज्ञ और ग्रामदान आन्दोलन चलाया गया। तत्कालीन समाज व्यवस्था का चित्रण उपन्यासकार श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यास ‘विश्रामपुर का सन्त ‘में किया है। काशी नाथ सिंह का ‘काशी का अस्सी ’ में चित्रित समाज, सामाजिक, राजनीतिक हैसियत को विचारात्मक दृष्टि से देखा गया है। नासिरा शर्मा का ‘ज़िन्दा मुहावरे ‘में भारतीय और

पाकिस्तानीय समाज व्यवस्था का चित्रण है। विभाजन के बाद दोनों देशों की सामाजिक व्यवस्था अत्यन्त दयनीय बन गयी थी। इस के नाते लोगों को अनेक त्रासद स्थिति का सामना करना पडा था। लेखिका ने इस उपन्यास के द्वारा दोनों देशों की सामाजिक स्थिति का अत्यन्त रूपपरक वर्णन प्रस्तुत किया। आखिरी कलाम उपन्यास के द्वारा एक ध्वंसीय सामाजिक स्थिति का चित्र उपन्यासकर हमारे सम्मुख रख देते हैं। 'पहला गिरमिटिया 'में दक्षिण आफ़्रिका का सवर्ण प्रमुख सामाजिक स्थिति का चित्रण है, बीच बीच में भारतीय समाजिक स्थिति भी आ जाती है।

प्राचीन भारत के सामाजिक इतिहास में अंक चार की विशेष भूमिका रही है। भारत में आदि ज्ञान के चार स्त्रोत हैं-ऋग्वेद,यजुर्व्द,सामवेद और अथर्ववेद। यहाँ की समाज-व्यवस्था के मूल आधार भी चार वर्ण ही रहे हैं-ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य और शूद्र तथा चार आश्रम हैं। आदर्श व्यक्ति की जीवन परिकल्पना के लिए चातुर्विद्य,चातुर्वर्ण्य और चतुराश्रम है। इसी प्रकार पुरूषार्थ भी चार हैं-धर्म, अर्थ, कम, मोक्ष। युग भी चार हैं-त्रेता,द्वापर और कलि। विद्वानों में मतभेद है कि जाति-व्यवस्था चातुर्वर्ण्य की परिणति है या कि यह अलग से विकसित होकर कालान्तर में वर्ण-व्यवस्था से जुड गई। किन्तु इस संबन्ध में उनमें सहमति है कि जाति-व्यवस्था के उद्‌भव के मूल में सामजिक अर्थव्यवथा को स्थायित्व देने का विचार था। यह भूमिका किसी सीमा तक जातिव्यवथा ने निभाई भी है। आरंभ में वर्ण-विभाजन जन्मजात नहीं था। वह एक प्रकार का श्रम विभाजन ही था। उसमें कठोरता नहीं थी,जो बाद में वर्ण-व्यवस्था तथा जाति-व्यवथा की अभिन्न विशेषता बन गई।लेकिन भारतीय समाज ने एक एक विभाग को भिन्न भिन्न स्तर निश्चित किया था और यह व्यवस्था लौहे के ढाँचे में जडवत पडी हुई थी। बाद में जाति व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न जातियों का उदय हुआ। जातियों के पारस्परिक संबन्ध ऊँच - नीच तथा पवित्र-अपवित्र की

अवधरणाओं से संचालित होते थे। किन्हीं दो जातियों के व्यक्तियों में संस्पर्श,भोजन,यौन संबन्ध तथा अन्य संबन्ध इन दोनों में से ऊँची जाति को अपवित्र कर देते थे। जातिगत भेदभाव का सबसे अमानुषिक रूप अस्पृश्यता है। इतिहास इस के लिए वेदना जनक उदाहरण दे रहा है। निस्संदेह ‘जाति व्यवस्था अन्य सामाजिक संस्थाओं की तुलना में,अधिक स्थायी और स्थिर रही है। इसका मुख्य आधार श्रेष्ठ जातियों के विशेषाधिकार और हीन जातियों को निर्योग्यता के रूप में देखना है’’।[14] लेकिन यह संस्था हिन्दुओं तक ही सीमित नहीं है। यह भारतीय उपमहाद्वीप के अहिन्दू समुदायों में भी मौजूद है। भारत में आकर इस्लाम भी सामाजिक विषमता के प्रभाव से नहीं बच सका। यही स्थिति भारतीय ईसाइयों की है।अनेक समाज सुधारकों ने जातिव्यवस्था का समूल नष्ट करने के लिए अनेक आन्दोलन चलाए। समाज में फ़ैल गये ऊँच नीच भेदभाव को मिटाने के लिए यह आन्दोलन उचित मालूम हुआ। भारत के अधिकांश राज्यों में ब्राह्मणों को उच्च शिक्षा प्राप्त हो गयी। नीचे जाति के लोगों को विद्यालयों में भर्ति निषिद्ध थी। अंग्रेज़ों की जाति विरुद्ध शासन व्यवस्था के कारण इसमें कुछ बदलाव आया था। नीचे जाति के लोगों को मन्दिर में जाना निषिद्ध था, अनेक आन्दोलनों के फ़लस्वरूप इस मामला ने विजय हासिल की।

अंग्रेज़ों ने उस समय विभिन्न जातियों में स्पर्धा उत्पन्न कर दिया। लेकिन उन लोगों के शासन, रेल-रोड यातायात सुविधा, आदि अनेक प्रगति के कार्यों ने निम्न जाति को जगा दिया। उन लोगों ने स्वत्व बोध से समर करना शुरू किया। लेकिन इससे जाति स्पर्धा और अधिक बढने लगा। इस प्रकार समाज में ज़्यादातर समय सवर्ण मेधावित्व उपस्थित था। ज़रूर साहित्य में

---

[14] गाँधी और अंबेडकर, गणेश मंत्री, पृ. सं. 18

इसका विवरण देखने को मिलता है। वैदिक काल से लेकर यह सवर्ण मेधा समाज निम्न जाति के लोगों की अवहेलना करता था। 'कितने पाकिस्तान ' में चित्रित शंबूक की कथा इसके लिए एक उदाहरण है। 'पहला गिरमिटिया 'में दक्षिण आफ़्रिका में गोरे लोगों द्वारा काले लोगों पर किए अत्याचारों का विस्तार से वर्णन है। दक्षिण आफ़्रिका में गये गाँधीजी इन सबसे परिचित हुए। काला आदमी होने के कारण उसको कई वेदना पूर्ण अनुभवों का सामना करना पडा। ईसाई के साथ एक दिन उसने यात्रा की। सौबत के दिन वे यात्रा नहीं करते हैं। यात्रा रोककर वे प्रार्थना करते थे। उस पूरी पार्टी को होटल में जगह मिल गयी थी। काला होने के कारण मोहनदास को होटल में ठहरने के लिए इज़ाज़त नहीं मिली। इस घट्ना ने उन्हें क्षुब्ध कर दिया था। 'मोहनदास अपने देश की वर्ण व्यवस्था को दूसरे रूप में यहाँ देख रहा था। यहाँ गोरे सवर्ण थे, वह अकेला अवर्ण।'[15] भेदभाव जो बच्चों के नाम पर है तो वह अत्यन्त दर्दनाक बन जायेगा। एक गोरे सदस्य के द्वारा कहा गया इन वाक्यों को देखिए 'अगर अश्वेतों और कुलियों के बच्चे के साथ हमारे बच्चे को पढाया जाता रहेगा तो वह दिन दूर नहीं जब इनके बच्चे सरकारी नौकरी में घुस जाएँगे और हमारे बच्चे दफ़्तरों के बाहर लाइन लगाए खडे रह जाएँगे। अगर अपना सम्मान और पवित्रता बनाये रखनी है तो कुलियों की तरह ही रहने दिया जाय,उन्हें और उनके बच्चों को सिर पर न बैठाया जाय।[16] जिस तरह भारत में अछूतों के टोले बस्ती से बाहर होते हैं उसी तरह ट्रान्सवाल में कुलियों को बाहर कुली लोकेशन में रखा गया था। 'विश्रामपुर का सन्त ','पीढियाँ ' उपन्यास में भी भारत के सवर्ण मेधा समाज का जिक्र किया है। 'अनामदास का पोथा 'में चारों वर्णों का उल्लेख आता है। उपनिषदकालीन समाज रूढिवादिता से ग्रस्त नहीं था, चाहे वह राजन्य परिवार का हो,

---

[15] पहला गिरमिटिया, गिरिराज किशोर,पृ. सं. 191

[16] पहला गिरमिटिया, गिरिराज किशोर,पृ. सं. 292

वैश्य परिवार का हो, प्रत्येक वर्ण के लोग अपने-अपने कर्तव्यों से भली-भाँति परिचित थे। सारा समाज कर्म पर विश्वास करता था। वर्ण व्यवस्था का आधार गुण, कर्म, स्वभाव थे। इस संबन्ध में केवल जन्म को आधार नहीं समझा गया,जैसा कि हम उत्तरवर्ती युगों में देखते हैं जब इस संबध में रूढिवादिता ने वर्ण व्यवस्था के रूप को विकृत कर दिया था। इस प्रकार इस युग में वर्ण व्यवस्था अपने स्वस्थ रूप में थी।

इतिहास यह ज़िक्र करता है कि'हिन्दु जाति और मुस्लिम जाति के बीच की एकता मिटाने का कार्य बाबर ने किया है। अंग्रेज़ों ने अपने शासन बनाये रखने के लिए दोनों जाति की परस्पर घृणा को और भी बढा दिया था। इस स्थिति ने अपने देश को रक्त रंजित रणभूमि बना दिया। साप्रदायिकता, वंश हत्या, विभाजन आदि इसकी देन है, इन्हीं के कारण हमारे समाज में क्रूरता, अपने चरमोत्कर्ष तक आ गयी। 'पीढियाँ', 'करवट,' 'ज़िन्दा मुहावरे ', 'काले कोस', 'कलिकथा वाया बाइपास ', 'निन्यानवे ',' कितने पाकिस्तान ' उपन्यास में इन्हीं का विस्तार से वर्णन है।

हम भारतीय आर्थिक व्यवस्था के बारे में खूब बातें कहते हैं। ब्रिटिश का चरण पडते समय यहाँ एकत्रित आर्थिक व्यवस्था नहीं थी। लेकिन यह भी है कि वह व्यवस्था जाति व्यवस्था के जंजीरों में पडी हुई थी। यहाँ की बहु संख्यक जनता ने ज़मीन्दारी व्यवस्था के अधीन काम किया था, और अपने गुज़ारा भी इस के आधार पर था। ज़मीन के अधिकारी मिट्टि को छुआ तक नहीं थे, निम्न जाति के लोग मिट्टि में काम करते थे। फ़सल का एक हिस्सा उन लोगों के लिए बाँटा गया था।यह भी नहीं अन्य काम करने वाले लोगों को भी वेतन, साधन के रूप में देता रहा। उस समय पैसे का उपयोग विरले ही करते थे। इस व्यवस्था को बाद

में आए उपनिवेश वाणिज्य और पूँजिवाद ने बदल दिया। इससे भारत में भयानक सामाजिक कान्ती की शुरुआत हुई।

पाश्चात्य व्यापारियों ने उस समय विशिष्ट कपडों और मसाले की खोज की। भारत के अत्भुत उत्पादों को देखकर वे लोग चकित हो गये। वे सब अपने वश में करने की इच्छा से वे लोग यहाँ ठहरने लगे। इसके बहाने अठारहवीं शति के अन्त तक उन लोगों के बीच दंगा चल रहा था। अन्त में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने उन लोगों को यहाँ से भगा दिया और भारत उसके अधीन में हो गया। मुगलों के आगमन के तहत आर्थिक अधिकार के अलावा राजनीतिक अधिकार भी उन लोगों के हाथ में आ गया। आर्थिक व्यवस्था के परिवर्तन के कारण यहाँ सामाजिक क्रान्ति का अभ्युदय हुआ,उस समय अंग्रेज़ लोग पूँजिपति बन गये थे। तब से पूँजिपत्ति व्यवस्था के अन्तर्गत उत्पादन शुरू हुआ। इस व्यवस्था के अन्तर्गत आने वाले भारत जैसे राष्ट्रों का काम तेज़ी से प्रगति की ओर जाने वाले भूभागों के लिए ताज़ी वस्तुएँ देते रहना था। उस समय के भूमण्डलीय व्यवस्था से लोग पीडित होने लगे और हम उसके दुष्फ़ल आज भी भोग रहे हैं।

आय बढाना,उद्योगों के लिए वस्तुएँ इकट्टा करना ऐसे मक्सदों के साथ आंग्रेज़ों ने यहाँ की कृषि व्यवस्था को बदल दिया। उन लोगों ने परिचित वैयक्तिक संपत्ति सिद्धान्त के अनुसार नया भूमि-पति रिश्ते को यहाँ थोपा दिया। आम जनता के उपयोगी धान्यों की कृषि को निरुत्साहित किया। वाणिज्य फ़सलों की कृषि करने के लिए कृषकों को मज़बूर किया। ग्रामीण उद्योगों को तबाह किया, कृषकों को और भी गरीब बना दिया। बाद में कृषकों ने अपने हकों को हासिल करने केलिए कई आन्दोलन चलाये। ‘विश्रामपुर का सन्त’ उपन्यास में 1951 में साम्यवादियों के नेतृत्व में भूमिपतियों के खिलाफ़ किसानों का व्यापक आन्दोलन का संकेत

किया गया है। इससे तेलंगाना की स्थिति विस्फ़ोटक बन गयी। आचार्य विनोबा भावे वहाँ चला गया। वहाँ किसानों और विशेषतः दलितों की भयानक विपन्नता के दृश्यों ने आचार्य को हिला दिया।तब से आचार्य विनोबा भावे द्वारा संचालित भूदान आन्दोलन की शुरुआत हुई।

हमारी आर्थिक व्यवस्था ज़्यादात्तर कृषि के आधार पर है। काले कोस उपन्यास में तत्कालीन कृषि व्यवस्था का ज़िक्र किया गया है। भारत में व्याप्त पूँजिवादि व्यवस्था के खिलाफ़ आवाज़ उठाने वाले सूरत सिंह का वक्तव्य देखिए 'आज की दुनिया में कोई पूँजिपति नहीं होना चाहिए।क्यों कि वास्तव में जो कुछ यह पूँजिपति घर बैठे खाते है और जिस धन के ये मालिक बने बैठे हैं यह दरअसल इनका नहीं है, इस पर सब किसानों और मज़्दूरों का अधिकार है।'[17] उसको चार गाँव की किसानों की हालत देखकर अत्यन्त निराशा हुई। किसान सब पिछडे हुए होते हैं, आर्थिक संकटों में घिरे हुए होते हैं, इसलिए उनकी कठिनाइयों के हल की ज़रूरत है।इस प्रकार किसानों की स्थिति के बदलाव के लिए सामाजिक क्रान्तियों का अभ्युदय हुआ। आज हमारी आर्थिक व्यवस्था में कुछ सुधार ज़रूर आ गया।लेकिन किसान आज भी आत्महत्या के छोर पर पडा हुआ है।

प्राचीन काल में शिक्षा प्राप्ति के लिए गुरु-कुल रीति का प्रचार था। उस समय गुरुओं का अत्यधिक सम्मान किया जाता था। शिक्षा प्राप्ति का वास्तविक स्रोत गुरू मात्र था। गुरु मूँह से आयी हुई बातों का श्रवण कर शिष्यों का पठन-पाठन होता था। उस समय गुरु के गृह या आश्रम में रहकर शिक्षा का प्रारंभ होता था। गुरु और शिष्य के बीच वास्तविक स्नेह होता था। और गुरु

---

[17] काले कोस, बलवन्त सिंह,पृ. सं.57

अपने कर्तव्यों के प्रति बहुत ही ईमानदार रहा था। शिष्यों को भी अनेक कर्तव्य भार होते थे। सर्वप्रथम शिक्षा प्राप्ति के लिए गुरु का आदर करना था,विनम्रता की आवश्यकता थी। पाठशाला के रूप में तपस्वी लोगों के आश्रमों में ही अध्ययन-अध्यापन चलता था। उपनिषद कालीन शैक्षणिक व्यवस्था उजागर करने वाला उपन्यास है, हज़ारी प्रसाद द्विदेदी का उपन्यास 'अनादास का पोथा '।

अंग्रेज़ों के आने के बाद यहाँ की शैक्षणिक व्यवस्था में बदलाव लाने के लिए उनकी तरफ़ से कोई प्रयत्न नहीं हुआ था। उन्हें डर था कि अपनी व्यवस्था से जब यहाँ के लोग परिचित हो, तब स्वाधीनता के लिए आवाज़ उठायेंगे। संसदीय प्रजातंत्र और औद्योगिक कान्ति के देशों के आशयों से परिचित होने का अवसर नहीं दिया गया। भारत में पंडितों की भाषा संस्कृत,शासन करने वालों की भाषा फ़ारसी, यही हालत विद्यमन थी। लेकिन अंग्रेज़ी शासन के बाद शासन और कानून व्यवस्था में अग्रेज़ी भाषा का प्रयोग व्यापक हो गया। उच्च पद हासिल करने के लिए और लिपिक बनने के लिए अंग्रेज़ी भाषा की निहायत ज़रूरत पड्ने लगी। फ़ारसी और संस्कृत में ज्ञान बढाने के लिए अनेक विद्यालयों की स्थापना की गयी।

ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों ने प्राचीन शैक्षणिक व्यवस्था की पुष्टि की। लेकिन प्रबुद्ध भारतीय जनता ने उसका असमर्थन किया। प्राथमिक शिक्षा के प्रचार प्रसार करने का कानून बनाने के लिए जब कोई आता है तब मुखिया लोग उसका असमर्थन करते हैं। अनेक वर्षों बाद उन्नीस सौ ग्यारह में गोपाल कृष्ण गोखले ने इससे संबन्धित एक बिल संसद में प्रस्तुत किया तब औद्योगिक बहुमतों ने उसको पराजित किया। उस समय के राज्यपल ने भी इसका विरोध किया था। उन लोगों के मन में यह

आशंका थी कि किसानों को पढने लिखने का कार्य आता तो वे स्वाधीनता के लिए आवाज़ उठायेंगे।

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद निम्न जाति को शिक्षा देने के लिए सवर्ण जाति तैयार नहीं थी। उन लोगों का भय,हर जगह प्राथमिक शिक्षा मुफ़्त और मजबूरन करने के लिए बाधा बनने लगी। गरीब परिवार के बच्चे विरले ही स्कूल में प्रवेश करते हैं और बहुसंख्यक बच्चे भर्ती मिलने के बाद वापस चले जाते हैं। शैक्षणिक व्यवस्था को नेतृत्व करने वाले को यह देखकर तनिक भी दुख न आया। उदारीकरण के उदय से शिक्षा के क्षेत्र में वरेण्यीकरण की वृद्धि हुई। इसके साथ बाज़ारीकरण भी था।

मिषनरियों के परिश्रम के फ़लस्वरूप उन्नीसवीं शति के अंत में कुछ लोगों को अंग्रेज़ी शिक्षा मिल गयी। उन्नीस सौ ग्यारह में एक प्रतिशत जनता को अंग्रेज़ी शिक्षा मिल गयी और छह प्रतिशत जनता को प्रादेशिक भाषा की शिक्षा मिल गयी। उन लोगों से कुछ उच्च शिक्षा प्राप्त करके अध्यापक,सरकारी कर्मचारी,डाक्टर,वकील आदि बन गये। देशभक्ति, राजनीतिक स्वतंत्रता, प्रजातंत्र, धर्मनिरपेक्षता आदि आधुनिक आदर्शों को जनता के मानस तक पहूँचानेवाले बुद्धि जीवीवर्ग की संख्या बहुत कम थी। लेकिन नवीन अभिलाषाओं को जगाने के लिए उन लोगों ने बडा कार्य किया। अंग्रेज़ी शिक्षा प्राप्त बुद्धि जीवीवर्ग ने विभिन्न सामजिक सुधार संस्था का आरंभ किया।इन संस्थाओं ने धार्मिक,आर्थिक भेदभव को मिटाने के लिए अनेक कार्य किए।

आज व्यापक रूप में निजीकरण और बाज़ारीकरण हो रहा है। यह स्थिति हमारे शैक्षणिक व्यवस्था को नीचे स्तर की ओर धकेल देती है। अनेक अनएडड स्कूलों, कालेजों की स्थापनाओं के फ़लस्वरूप सार्वजनिक शिक्षा अप्रासंगिक बनती जा रही है। यह भी

नहीं हमारा समाज बेरोज़गार लोगों से भरा हुआ है। उच्च शिक्षा प्राप्त लोग सब बेरोज़गारी के घेरे में पडा हुआ है। पीढियाँ,करवट आदि उपन्यास में इसका संकेत दिया गया है।

'अनामदास का पोथा' से उपनिषद कालीन शैक्षणिक व्यवस्था से हम परिचित होते हैं। करवट में अंग्रेज़ी शिक्षा की प्रधानता के बारे में बताया गया है। उस समय फ़ारसी संस्कृत भाषा से परिचित व्यक्ति को आदर मिलता रहता थां। उस समय अंग्रेज़ लोगों की शैक्षणिक व्यवस्था से कलकत्ते की स्त्रियों को शिक्षा मिल रही थी। परेश बाबू के वक्तव्य को देखिए 'हमारे कलकत्ते की स्त्रियों में भी अभी शिक्षा का कितना प्रसार हो चला है। हमारी लडकियाँ भी अब काफ़ी पढने लगी है''।[18] इन वाक्यों से अंग्रेज़ लोगों का चालाक व्यक्त होता है।'नयी अंग्रेज़ सरकार हिन्दुस्तानियों को अंग्रेज़ी शिक्षा देने के पक्ष में तो थी, लेकिन वह बहुत अधिक लडकों को शिक्षा देने के पक्ष में नहीं थी। सरकार इतना ही चाहती थी कि उसके दफ़्तरों का काम चलाने लायक कुछ क्लर्क अवश्य तैयार हो जाय''।[19] वे मात्र ज़रूरत की पूर्ति के लिए अंग्रेज़ी शिक्षा देने के लिए तैयार थी।

उस समय अनेक समाज सुधार संस्थाओं की स्थापना हुई थी, ये सब अंग्रेज़ी शिक्षा के आधुनिक आशयों से परिचित बुद्धि जीवि वर्गों द्वारा चलाया गया। आर्य समाज, प्रार्थना समाज, श्री रामकृष्ण मिषन आदि इसके लिए उदाहरण हैं। उस समय की शिक्षा पद्धति को लेकर मतभेद हो रहा था।'लाहौर में शिक्षा पद्धति को लेकर आर्य समाजियों के दो दल बँट रहे हैं। महात्मा मुंशीराम चाहते हैं कि गुरु कुल जैसे शिक्षा संस्थान खोले जाए और लाला लाजपतराय तथा महात्मा हंस राज आदि इस पक्ष के

---

[18] करवट, अमृतलाल नागर,पृ. सं. 122
[19] करवट, अमृतलाल नागर,पृ. सं. 263

हैं कि वैदिक संस्कारों के साथ ही साथ अंग्रेज़ी ज्ञान विज्ञान को भी पढाया जाय।इसके बिना भारत की सुगति नहीं हो सकती'।[20] इससे मालूम होता है कि उच्च शिक्षा प्राप्त आधुनिक लोगों ने नवोत्थान काल में भी अपनी परंपरा के अनुसार अर्थात प्राचीन शैक्षणिक व्यवस्था के साथ अंग्रेज़ी शिक्षा की प्रधानता का प्रचार किया था।आज के ज़माने में भी अंग्रेज़ी शिक्षा अपनी प्रधानता दिखाकर अपनी रवानगी तेज़ कर रही है।

'पहला गिरमिटिया ' का मोहन दास उच्च शिक्षा प्राप्त करके दक्षिण आफ़्रिका जाता है,लेकिन अपने बच्चों को अंग्रेज़ी शिक्षा देने के लिए वह तैयार नहीं है।अपने आदर्शों को बनाये रखने के लिए वह बच्चों की शिक्षा का खंडन करता है।आज शिक्षा प्राप्त लोग नौकरी को पैसा कमाने का माध्यम बनाता है,अपने कर्तव्य के बारे में वे लोग तनिक भी चिन्ता नहीं करते हैं। 'कलिकथा वाया बाइपास ' का शान्तनु डाक्टर बनने के बाद अपनी सेवा को भूल जाता है, अत्यधिक सुविधा जनक घर बनाने के लिए नौकरी करता था। पहले वह सुभाष भक्त था कालान्तर में वह अपने आदर्शों को भूल जाता है। 'काले कोस 'का सूरत सिंह शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपने गाँव की जनता के सुधार के लिए काम कर लेता है। उसकी साथी महेन्द्र कौर ने डाक्टर बनने के बाद गाँव की सेवा के लिए तत्परता प्रकट की थी। 'आखिरी कलाम 'का तत्सत पाण्डे ब्राह्मण होते हुए भी अच्छा आचार्य या अध्यापक बन गया था, सवर्ण जाति की चिन्ता उसमें तनिक भी नहीं थी। उसका पुत्र माधवानन्द भी इस प्रकार का एक पात्र था। शैक्षणिक स्थिति बताने वाले उपन्यास सब आज की स्थिति के साथ भविष्योन्मुखी स्थिति भी बताते है।

---

[20] करवट, अमृतलाल नागर,पृ. सं. 236

संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि अनामदास का पोथा में जिस शैक्षिक व्यवस्था का जिक्र हुआ इसमें कई प्रकार का बदलाव बाद के युगों में हुआ। यह अन्य कई उपन्यासों में अभिव्यक्त हैं।अनामदास का पोथा में चित्रित सामाजिक आदर्श और विचार का उतार चढाव बाद के उपन्यासों में प्रकट है। इतिहास की निरन्तरता इतिहास बोध के रूप में सुरक्षित रहकर मानव को सही दिशा देने के लिए पर्याप्त है। लेकिन अन्य उपन्यासों की स्थिति देखकर इसका समर्थन व्यर्थ मालूम होता है। अंग्रेज़ या अन्य कुत्सित लोगों के मानस में संचित बुरी व्यवस्थाओं ने देश को नाश से विनाश की ओर चला दिया। प्राचीन काल से हमारे समाज में मौजूद सामाजिक स्थिति अधिकतर कुछ वर्गों के लिए उपयोगी सिद्ध हुई थी। निम्न वर्ग और भी निम्नता की ओर जाने लगी। आज हमारी व्यवस्था में बदलाव आ गया है। यह बदलाव कुछ हद तक मानव की निरन्तर कोशिश की परिणति है, लेकिन पूर्णता के साथ यह नहीं कहा जायेगा कि हमारी सामाजिक व्यवस्था मानव के लिए समाधान सिद्ध करेगी।

नारी चेतना

उपनिषद्काल में स्त्री समाज में ऊचे पद की अधिकारिणी थी। गार्गी जैसी विदुषी स्त्रियाँ भरी सभा में विद्वान पुरुषों से वाद-विवाद कर सकती थीं। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी जी के उपन्यास ‘अनामदास का पोथा ’ में जाबाला,ऋजुका,ऋतंबरा,अरुन्धती आदि स्त्रियाँ इस बात का प्रमाण हैं। वे पुरुष के समान अध्ययन करती थीं, यज्ञ में भाग लेती थीं और साथ साथ गृहस्थ जीवन के कर्तव्यों का पालन भी करती थीं। औषस्ति ऋषि की पत्नी ऋतंबरा जहाँ

एक तरफ़ रैक्व को अनेक प्रकार का उपदेश देती थी, वहीं अपने गृहस्थ जीवन के प्रत्येक कर्तव्य से भली-भाँति परिचित भी थी। घर आये अतिथियों का सम्मान,रहने की व्यवस्था,सभी कुछ का ध्यान उसे बराबर बना रहता था। समय की आवश्यकता के अनुसार स्त्री,पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर भी कार्य करती रही है। ऋजुका इस प्रकार की एक नारी है। जाबाला स्वयं खेतों में जाकर कर्मकारों के साथ खेती बारी का काम देखती थी और अपने हाथों से गाय-बैलों की सेवा भी करती थी। अकालग्रस्त क्षेत्रों में माता ऋतंबरा स्वयं जा-जा कर लोगों को धीरज बन्धाती है।

'करवट ' उपन्यास का केन्द्रीय पात्र है बंसीधर टंडन, उसका विवाह अपनी ही जाति की एक कन्या चमेली के साथ हुआ। बंसीधर जो है वह फ़ारसी का विद्वान था, इसलिए जानी मानी रईस मन्नो ने अपनी एक मात्र कन्या के विवाह का प्रस्ताव तन्कुन के लिए रखा। तन्कुन के पिता ने इस प्रस्ताव को खुशी से स्वीकार कर लिया। लेकिन बंसीधर यह नहीं चाहता है कि एक विवाह होते हुए दूसरे विवाह करे। इसलिए वह घर छोड़्कर चला गया। यहाँ मन्नो नामक स्त्री की मानसिकता दूसरी कन्या की ज़िन्दगी बरबाद करने योग्य है। अपनी पुत्री को अच्छा दामात मिलने केलिए वह अपना कारोबार भी सौंप देना चाहती थी, लेकिन वह यह जानती भी नहीं थी कि बंसीधर ने शादी की थी, और चमेली की ज़िन्दगी भी बरबाद हो जायेगी।

बंसीधर अंग्रेज़ी जानता था,इसलिए उसकी मुलाकात नैन्सी से हुई। माल्कम उसका पति था,वह गोली से मारा गया। उसके बाद नैन्सी अपने सामान लेकर बंसीधर के साथ कल्कत्ता आयी। वहाँ वह अपने अंग्रेज़ी मित्रों से मिलती है। उनसे इतनी घुलमिल जाती है कि उसको तनकुन का ध्यान भी नहीं रहता।तनकुन को हर समय रिझाने वाली नैन्सी अब उसे अपने अंग्रेज़ मित्रों से

परिचय के काबिल भी नहीं समझती है। तनकुन को नैन्सी की यह बात बहुत अखरती है यह उसे नैन्सी का दूसरा रूप दिखाई देता है। उसकी खूबसूरती उसे अब बदसूरती के रूप में नज़र आने लगती है। नै़न्सी वहाँ एक अंग्रेज़ अफ़सर से विवाह कर लेती है। नैन्सी के प्रेमिका रूप से पाश्चात्य नारी संस्कृति का पूर्ण रूप हमें मिलता है।'आखिरी कलाम के तत्सत पाण्डेय का पुत्र माधवानन्द जो उच्च शिक्षा केलिए अमेरिका जाता है,वह शादी शुदा भी है। रौ़श्नी जैसी अपनी खूँखार पत्नी गायत्री को अंततःछोड्कर अपनी अमेरिकी शोध सहायिका गैब्रियेला से विवाह कर लेता है। गब्रियेला के माध्यम से हमें यह पुट मिलता है कि पाशात्य सामाजिक संस्कृति नारी की स्वतंत्रता में बाधा नहीं डालेगी। गैब्रियेला नैन्सी की तरह चंचल नहीं है।वह सामाजिक नैतिक ज़िन्दगी जीने केलिए तैयार है।

बंसीधर ने चमेली का नाम चंपकलता टंडन कर लिया। उन्होंने अपनी पत्नी के विचारों में भी परिवर्तन किया। वातावरण से अभ्यस्त हो गयी चंपकलता नवीन विचारों से प्रभावित होने लगती है। तथा अंग्रेज़ी भी पढती है। यहाँ की नारी चेतना वैयक्तिक सत्ता के साथ सामाजिक सत्ता की भी रक्षा करती है। इसके लिए एक और उदाहरण-बंसीधर और चंपकलता के नवीन विचार और रहन सहन के कारण उनके परिवार के लोग उन्हें घर में टिकने नही देते और उनकी खत्री जाति भी उनको जाति से बहिष्कार कर देती है। इसी स्थिति में भी चंपकलता ने अपने पति का साथ दिया था। 'पीढियाँ ' उपन्यास की स्थिति भी यही है,लेकिन इसमें कुछ बदलाव है। सुमन्त टंडन जो राजनीतिज्ञ है उसकी पत्नी शारदा हमेशा उसका साथ देती थी। वह उसकी दूसरी पत्नी है, फ़िर भी सुमन्त उसको समानाधिकार देता रहा। सुमन्त का पुत्र युधिष्ठिर की याद ,उसने अपनी पत्नी शकुन्तला से कहा।'आई स्टिल रिमंबर पापा सेईंग टु मम्मी,शारदा तुम पिछले जन्म की और इस

जन्म से भी पैदायशी तपस्विनी हो। पहली नियति ने तुम्हें विधवा बनाया और अब सौभाग्यवती बनाकर भी वैधव्य का ही अनुभव कराया। साथ ही मैं भी तुम्हारा सौभाग्यवान पति होकर भी विधुर ही रहूँगा। चक्रवर्ती महाराज रामचन्द्र और महारानी सीता राजा रानी होने के बाद भी नसीब के धोबी के पाप से अलग रहे। हम भी वैसे रहेंगे........ फ़िर मुझे देखकर मम्मी से बोले,तुम अपने बेटे में मुझे देखना। जब बहुत याद आये तो आ जाया करना। हमें तुम्हें मिलने केलिए राम के राजसूय यज्ञ के मौके की ज़रूरत नहीं पडेगी।'[21] शारदा यहाँ एक सम्झौते करने वाली नारी की तरह सब कुछ मन में समाहित कर संतोषमय ज़िन्दगी जी रही है। युधिष्ठिर टंड्न की पत्नी शकुन्तला अपने दाम्पत्य में सुखी का अनुभव कर लेता है। सामाजिक परिवर्तन होने के कारण मनुष्यों की मानसिकता में बदलाव आ जाती है।

सांप्रदायिकता की सबसे त्रासद शिकार स्त्री वर्ग ही है।करवट उपन्यास के एक प्रसंग से इसके लिए उदाहरण हमें मिलता है।साप्रदायिक तनाव के ज़ोरों पर,मुसलमान लोग हिन्दू लडकियों को भगा के ले जा रहे थे। गुंडे के केवल स्पर्श मात्र से ही हिन्दू कन्या को समाज त्याग दे रहा था। ऐसी लडकियों को नरक तुल्य यातनाएँ भोगनी पडती थीं। कौशल्या जो लाहौर में रहती थी,वह भी इस हादसे की शिकार बन गई थी। गली में शोर होने के कारण गुंडे उसको छोड के चले गये। लेकिन कौशल्या को समाज ने त्याग दिया। उसके ससुराल वालों ने भी उसको अस्वीकार कर लिया। कितने पाकिस्तान उपन्यास में चित्रित स्त्री पात्रों में एक है जेनिव,जो सांप्रदायिकता की शिकार बन गयी थी। देश विभाजन के समय हुए दंगे में कुछ हिन्दू दंगाई एक अकेली मुस्लिम लडकी के साथ बलात्कार करने केलिए उसका पीछा

---

[21] पीढियाँ, अमृत्लाल नागर,पृ. सं. 25

करते हैं। बूटा सिंह नामक एक अविवाहित किसान उसे बचाता है,उन्हें एक बेटी हुई। लेकिन फ़ौजी टुकडी द्वारा विवाहिता जेनिव को उसके घर से उठा लिया गया और उसके घरवाले जो पाकिस्तान में थे, उनको सौप दिया गया। इसके बाद वह वहाँ भी रहने लगी, अकेलापन महसूस करके। इस प्रकार की नियति से नारी की ज़िन्दगी बरबाद हो जाती है। लेकिन कौशल्या की ज़िन्दगी में देश्दीपक टंडन आ गया, वे बाद में समाज सेवाओं में लगे रहते हैं। स्त्री का सब कुछ उसकी इज़्ज़त है। अपनी इज़्ज़त को बचाये रखने के लिए वह सब कुछ त्यागने में तैयार है। ज़िन्दा मुहावरे का प्रसंग देखिए 'बट्वारे में सबीहा का खानदान फ़ैजाबाद छोडकर आना चाहता था,मगर चारों तरफ़ मिलती खबरों से परेशान खाँ साहब मेरठ अपने साले के घर इस ख्याल से पहूँचे थे कि वह पुलिस के महकमे में बडे ओहदे पर हैं। उनका घर महफ़ूज रहेगा। वहाँ जाकर पता चला कि वह तो मार डाला गया और उनकी जवान बीवी अपनी नन्हीं-सी बेटी को सिने से लगाए,चने की पोटली में जेवर डाले अलीगढ की तरफ़ अपने भाई के घर जाने को तैयार थी। उनके दुपट्टे के आंचल में पिसी चूडियां बंधी देखकर सबीहा ने पूछा था कि यह क्या है? 'तुम भी बांध लो वक्त ज़रूरत पर काम आयेगी। इज़्ज़त की मौत,बेइज़्ज़ती की ज़िन्दगी से कहीं बेहत्तर है। 'मुमानी ने सबीहा के आंचल में आधा चूरा बांधते हुए कहा था।'[22] साप्रदायिकता के नाम पर मानव द्वारा किए जानेवाले अत्याचारों की शिकार बन गयी स्त्रियों की कहानी आज भी जारी है।

पुरुष की एक प्रकार की अहं मानसिकता से नारी की ज़िन्दगी बरबाद हो जाती है। पीढियाँ उपन्यास के मनोरमा (मन्नो) अपने पति जयन्त टंडन की बुरी मानसिकता को सहन कर लेती

[22] ज़िन्दा मुहावरे, नासिरा शर्मा,पृ. सं. 67

है। जयन्त पहले अनारो नामक लडकी को बरबाद करता था, फ़िर इंग्लैण्ड जाकर रंगरेलियाँ मनाता है और हिन्दुस्तान आने पर कई स्त्रियों से संपर्क स्थापित करता है। मनोरमा से उसका मन नहीं जुड पाता, इसलिए अपने एक ग्राहक और मित्र की पत्नी 'मन्नो' से दिल लगाता है। एक पत्नी के रूप में पुरुष की कामुक वासना को चुप चाप सहन करने के लिए स्त्री मजबूर हो जाती है। एक तरह भारतीय नारी आर्थिक विवशता के कारण ही पतिव्रता धर्म को ओढने के लिए विवश हो जाती है। इसलिए पति परायणता के झूठे मुखौटे को लगाना पड्ता है। वह अपने भविष्य और बच्चों के भरण पोषण के लिए ही पुरुष के मनमाने अत्याचारों को सहन करने के लिए मजबूर होती है। पुरुष उसकी इस विवशता से अनुचित लाभ उठाकर निरंकुश स्वेच्छाचरण में रत हो जाता है।

मध्यवर्गीय नारी मानसिकता का चित्रण कुमारी महेन्द्र कौर के माध्यम से उपन्यासकार बलवन्त सिंह ने अपने उपन्यास 'काले कोस' में किया है। पैशोरा सिंह का बेटा सूरत सिंह वह प्रतिभाशाली अवश्य है किन्तु उसकी गणना अच्छे विद्यार्थियों में नहीं होती थी। कुमारी महेन्द्र कौर के कारण उसके विचारों में बदलाव आने लगा । महेन्द्र कौर मेडिकल कालेज की छात्रा थी। उसी के कारण सूरत सिंह में क्रान्ति की भावना जगी। एक पुरुष की विजय के पीछे एक स्त्री ज़रूर है, इसका उत्तम उदाहरण है महेन्द्र कौर। वह सूरत सिंह के साथ उनके गाँव में आ गयी। महेन्द्र कौर झोंपडी में रहना पसन्द करती थी। मैदान में क्यारियाँ देखने से उसने कहा''यहाँ मैने फ़ूलों का बीज बोऊँगी''।[23] उसने झोंपडी को क्लिनिक बना दिया। उसकी अच्छी मानसिकता पूरे गाँव के लोगों के लिए उपयोगी होती रही। उसके गाँव के आने के बाद वहाँ की स्त्रियों में बातचीत हुई कि वह आवारा गर्दी है।

---

[23] काले कोस,बलवन्त सिंह,पृ. सं. 84

इसको ठीक जवाब देने लिए सूरत सिंह की बहन गोबिन्दी वहाँ थी। गोबिन्दी का वक्तव्य देखिए 'वह डाक्टर है। जो स्त्रियाँ डाक्टरी करती है उन्हें अपना काम तो करना ही पडता है। वह अगर घर में घुसी बैठी रहे तब फ़िर कैसे काम चले?'।[24] गोबिन्दी की अच्छी सोच से उन स्त्रियों में कोई प्रभाव नहीं पडा। वे बाद में बुरी बातें करने लगे।

अपनी स्वतंत्रता में बाधा न आने के लिए कुछ स्त्रियाँ अपनी मर्जी से कुछ काम कर लेती है। दूधनाथ सिंह का उपन्यास आखिरी कलाम की गायत्री ने पति के घर में आते दूसरे ही दिन सुबह माँ से पूछा 'पूजाघर कहाँ है? माताजी'।[25] माताजी ने भौहें टेढी कीं। उस घर की व्यक्तियों का मानना यह है कि यहाँ सत्य निवास करता है। इस प्रकार के घर में पूजाघर कहाँ? लेकिन गायत्री पराजित नही हुई,उसने देखा एक छोटी सी कोठरी कोने में बद पडी थी । उसने कोठरी खुलवाई। पुराने अखबार, पत्रिकाएँ, टिन के मोर्चा खाए पुराने बक्से अबाड-कबाड सब आँगन में फ़ेक दिया। उसके बाद उसने अपनी अटैची में से देवी देवताओं की मूर्तियाँ निकालीं और कमरे में संस्थापित कर दी। इसके कारण उसके ससुर से दुख झेलना पडा। उसके पति ने अमेरिका में जाकर दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया। वह जीवित वैधव्य का अनुभव कर ससुराल में रहने लगी। उनकी पुत्र वधू सुहासिनी को अपना पुत्र रविकान्त ने मार पीटकर घर से निकाल दिया। इन दोनों स्त्रियों के मौन विलाप समझने के लिए हम काबिल हो जाते हैं।

नारी के लिए ऐसा ही ज़माना समाज में मौजूद था कि लडके को देखे बिना उसकी शादी तय कर लेती थी ऩिन्यानवे की

---

[24] काले कोस,बलवन्त सिंह,पृ. सं. 86

[25] आखिरी कलाम, दूधनाथ सिंह,पृ. सं.19

किशोरी की स्थिति ऐसी थी। शादी के बाद वह घर में आई तो घर में साँस थी, ससुर थे,और विधवा ननद थी और घर में घनघोर पर्दा था।खद्दर की जाँघिया पति की पहचान थी रात में छोटी अटारी में जब वे घूँघट काढे घुराती,तब उसका पति किताब पढ रहे थे।'अपना घूँघट खोलकर वे उनके चेहरा दिखती। फ़िर लालटेन बुझा दी जाती। अगले दिन वे पिछली रात में देखे चेहरे को याद करती रहती। कभी चेहरा याद नहीं आता-कुछ रेखाएँ उभरकर उलझ जाती। जिस चेहरे से उनका ब्याह हुआ था, वह चेहरा बल्लो की अम्मा को याद नहीं था।'[26] इससे कुछ अलग किशोर बाबू की पत्नी,पति की बुरी हालत से चिंतित थी। कलिकथा वाया बाइपास का नायक किशोर बाबू को बाइपास सर्जरी के बाद सिर पर चोट लगी और वह सडकों पर घंटों,अकेले घूमते रहा। पति की यह हालत देखकर उसने सब कुछ नियति का चक्र समझा,फ़िर भी कभी कभार किसी पंडित को उनकी जन्मकुंड्ली दिखा कर कुछ दान वान या पूजा पाठ करवाती रही। ऩारी की चेतना इस बात पर ही है कि अपने परिवार में किसी न किसी प्रकार का दोष न आ जाय।

अमीर घर की नारी हो,गरीब मज़दूर नारी हो,गृहिणी हो या कामकाजी नारी हो ,नीची जाति की नारी हो,उच्च जाति की नारी हो वह शोषण की शिकार अवश्य होती है । उसके श्रम का शोषण तो होता ही है-घरेलू काम करने,बच्चों को पैदा करने और पालने - पोसने,पति के अलावा परिवार के बूढों और बच्चों की सेवा करने आदि में किये जाने वाले उसके श्रम को तो श्रम ही नहीं माना जाता-वह तरह तरह के यौन शोषण का शिकार भी बनती है,जो घर में होने वाले बलात्कार से लेकर बाहर होने वाले बलात्कार जैसे अनेक रूपों में होता है। शेष कादंबरी की रूबी दी 'परामर्श'

---

[26] निन्यानवे, रवीन्द्र वर्मा, पृ. सं.10

नामक एक संस्था चलाती है। ऩारी शोषण से मुक्ति मिलकर अनेक स्त्रियाँ उस परामर्श संस्था में अपनी स्वस्थ ज़िन्दगी जी रही हैं। उसमें सविता है,माया बोस है,आभा जैन जैसी स्त्रियाँ हैं। रूबी दी बीच बीच में यह सोचती है कि आज के ज़माने में सोशल वर्क ही नहीं सोशल जस्टिस की ज़रूरत है।

कमलेश्वर का कितने पाकिस्तान उपन्यास में चित्रित सभी स्त्रियाँ पुरुष के दोहरे मानदण्ड का शिकार हैं,चाहे वे वैदिक युग की अहल्या हो,या आधुनिक युग की सलमा हो। जब उपन्यास के प्रधान पात्र अदीब को यह पता चलता है कि अहिल्या द्वारा कोई अपराध न किए जाने पर भी गौतम ऋषि ने उसे दण्ड दिया था,तब अदीब कहता है-'' इन ब्राह्मणों ने अपने श्रम जीवियों को शूद्र तो बनाया ही, इन्होंने स्त्री को भी दण्ड देकर शूद्र की श्रेणी में डाल दिया'।[27] इस घटना पर अर्दली महमूद प्रतिक्रिया व्यक्त करता है-'विलासी आर्यों ने औरत को हमेशा पुरुष की संपत्ति माना है'।[28]

हित्ती सभ्यता के गिलगमेश देवदासी रूना को एकिन्दु को वश में कर लेने के लिए जंगल में भेजता है।स्त्री उनके लिए सिर्फ़ भोग वस्तु थी। वैदिक युग के 'सूर्य अपने भाई विश्वकर्मा की पुत्री को अपनी पत्नी बना रखा है। चन्द्र ने गुरु पत्नी तारा का अपहरण किया'।[29] 'सप्त सिन्धु की आर्य सभ्यता भी अपने देवताओं को वश में कर लेने के लिए अप्सराओं का उपयोग करती है'।[30] इन्हीं वाक्यों से यह मालूम होता है कि पुराने ज़माने से लेकर नारी शोषण का शिकार बनती आती है। पुरुष प्रधान समाज में स्त्री को

---

[27] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं.21
[28] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं.20
[29] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं.32
[30] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं.34

एक सीमित दायरे में रहना पडा है। पुरुष वर्ग नारी को स्वार्थ सिद्धि की पूर्ति के लिए और शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने का साधन के रूप में देखते हैं। आज भी हम देखते है कि पाँच महीने की बच्ची हो या सत्तर साल की बूढी हो,इन लोगों के हाथों से बचती नहीं है। कुछ साल पहले नयना साहनी के ऊपर किये गये अमानवीय अत्याचार इसका उत्तम उदाहरण है। इसके अलावा और कई घटनाएँ घटित हो रही हैं। ऩारी का शोषण केवल शारीरिरिक रूप से ही नहीं बल्कि मानसिक रूप में ही होता रहता है। ऱाजनीतिज्ञों का,नारी के प्रति अमानवीय व्यवहार हम मधुमिता शुक्ला की घटना में देख सकते हैं। नारी के ऊपर होने वाले शोषण और इसको जानने वाले सत्ताधारी भी इसके प्रति आँखें मूद लेता है और इन्हें कोई न्याय भी प्राप्त नहीं।

कमलेश्वर ने कितने पाकिस्तान में जहाँ हिन्दू और मुसलमान दोनों ही संप्रदाय में किये जाने वाले नारी शोषण व नारी की स्थिति पर प्रकाश डाला है,वहीं विभिन्न देशों में होने वाले नारी के शोषण की ओर भी ध्यान आकर्षित करने का प्रयास किया है।जब एक देश दूसरे देश पर आक्रमण करता है,तब सबसे अधिक शोषण नारियों का होता है। द्वितीय विश्व युद्ध के समय कोरियाई नारियों पर हुए अत्याचार पर प्रकाश डाला गया। यह देखकर ऐसा लगता है कि मनुष्य मनुष्य नहीं बल्कि वह तो एक जानवर है। क्योकि जानवर ही ऐसा सलूक कर सकता है।'मै कोरियन हू! तब मै 17 साल की थी। वैसे मै पैदा तो सन 1924 में,जिलिन में हुई थी। लेकिन 1941 में पेइचिंग से जापानी फ़ौजियो ने उठाया था और दूसरे महायुद्ध के दौरान मुझसे जापानी सोलजरों ने लगातार 15 बार प्रतिदिन बलात्कार किया। मुझे तिसिनहनताई कोर में भर्ति की गयी, जो सेक्स कोर थी, जिसे केम्फ़र्ट कोर के नाम से पुकारा जाता था।इस कोर में करीब चालीस हज़ार औरतें-लडकिया जबरदस्ती भर्ति की गई थी और

हम प्रतिदिन कम से कम पन्द्रह जापानी पाश्विक वासना को सहती और तृप्त करती थी''।[31] एक बिलकिस के माध्यम से अमानवीय शोषण का एक चित्र हमारे सामने कमलेश्वर प्रस्तुत कर देते हैं वह तो कि पन्द्रह जापानियाँ हवस की शिकार होती थीं। इसी क्रम में बंगला देश के गठन के लिए जो युद्ध हुआ था, उसमें नारियों का सैनिकों ने किस प्रकार भूखे भेडियों की तरह शोषण किया। कमलेश्वर ने उपन्यास में एक घटना के द्वारा उसे सिद्ध किया है। प्रत्येक मानव में यह यौन भूख प्रचुरता में होती है। सामाजिक मर्यादाओं, मान्यताओं और नियन्त्रण के कारण व्यक्ति इनका दमन करने का प्रयास करता है। आज मानव इतना निरीह और इतना स्वार्थी हो गया है कि वह कभी इन मर्यादाओं का ध्यान नहीं देता। बहुतरे मानव अपने में सीमित होकर ही दूसरों को देखते हैं विशेषकर स्त्रियों को अपनी इच्छा पूर्ति का साधन मात्र मानता। इसके लिए अपनी माँ हो,बच्ची हो,या बहन,ऐसे रिश्तों को भी नहीं मानता। रिश्ते नाते के बीच में भी आज दरार पड गया है। कमलेश्वर नारी शोषण के भीषण चित्र का अनावरण करके सामाजिक बोध की ओर पाठकों को ले गये।

भारतीय नारी कहीं भी हो वह अपनी संस्कृति की पूर्ण रक्षा करती है। पहला गिरमिटिया की कस्तूरबा गाँधी के साथ रहते हुए भी सारे आग्रहों, सीमाओं, कामनाओं को सहित एक आम भारतीय स्त्री बनी रहती है। गाँधी के कार्यों की एक नितांत व्यक्तिगत आलोचिका है कस्तूरबा।

नारी का अनैतिक रूप 'विश्रामपुर का सन्त ' उपन्यास की जयश्री में देखता है। जयश्री शादी शुदा होने पर भी कुंवर जयंती प्रसाद सिंह से संबन्ध जोड देती है। पतिव्रता नारी को अपमान

---

[31] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर पृ. सं. 89

बनाने वाली नारी की बुरी मानसिकता को चकनाचूर करने का कार्य नारी का स्वयं करना उचित होगा। रूबी दी के समान समाजसेविका का रूप धारण करने वाली नारी है विश्रामपुर की सुन्दरी। वह समझदार नारी का प्रतिनिधि है।

संक्षेप में यह कहना उचित होगा कि स्त्री समाज का मुख्य अंश है। भारतीय समाज की विडंबना है कि उसने नारी को पुरुष के समकक्ष कभी नहीं रखा। समाज का वैधानिक दृष्टिकोण सदैव से ही नारियों के प्रति अल्पसंख्यक रहा है। बाल्यावस्था में माता-पिता के नियंत्रण में रखा जाता था,युवति होने पर पति तथा वैधव्य प्राप्त हो जाने पर वह पुत्रों पर आश्रित हो जाती थी। इस प्रकार सदैव नारी के स्वतंत्र अस्तित्व पर अंकुश लगाया गया। यही नहीं यातना के बडे लंबे दौरों से नारी गुज़र रही है। आज स्त्री सचमुच बिकाऊ का माल बन गयी है। नारी की अनेक त्रासद स्थितियाँ अखबारों में छपती है। आज नारी की स्थिति यह है कि वे अपने पिता और भाईयों के सानिध्य में सुरक्षित नहीं है। बच्चियों की हालत भी यह है। शोषण के तरीके अलग-अलग हो,लेकिन शिकार तो नारी ही होती है। सामाजिक बुराइयों के खिलाफ़ आवाज़ उठाने के लिए नारी को खुद ही सोचना और विचार करना ज़रूरी है।

सांप्रदायिकता

समाज में जो कुछ घटित हो चुके हैं, घटित हो रहे हैं उनके दबावों को इतिहास झेल रहा है। मानव यह सोचता है कि आज से बढकर अगली सदी खूबसूरत सदी होगी। आज भी हमारी

सोच में बदलाव नहीं है। लेकिन समाज में सांप्रदायिकता अपने चरम पर है। सांप्रदायिक ज़हर हमारे समाज में फ़ैल रहा है। साप्रदायिकता का प्रश्न आज प्रबुद्ध जनों को बुरी तरह मथ रहा है। कुछ लोग इसे धर्म से जुडा हुआ सवाल मानकर इसका हल ढूँढने में लगे हैं, तो कुछ के लिए यह एक राजनीतिक समस्या है।'साप्रदायिकता धार्मिक कट्टरता और रूढिवाद का वह रूप है,जिसमें एक धर्म के मतावलंबी के प्रति विद्वेष का भाव रखते है' ।'[32]

आज साप्रदायिकता के अनेक चेहरे हमारे सामने विद्यमान हैं। इतिहास बोध के ज़रिए हमें मालूम है कि,साप्रदायिकता के बीज तो निश्चित रूप से मध्यकाल में ही बोये गये, पर उन्हें अंकुरित करने और फ़ूलने फ़लने का अवसर देने का श्रेय मुख्यतः ब्रिटिश शासन और आज की राजनीतिक व्यवस्था को है। अग्रज़ों के आने के पहले भी भारत में धार्मिक विद्वेष समय-समय पर उभरा,आपसी मारकाट हुई,धार्मिक कट्टरता ने अनेक बार धार्मिक विद्वेष का रूप धारण किया। एक प्रकार कहा जाए तो अंग्रेज़ी राज ने हमारी कमज़ोरियों का फ़ायदा उठाकर हमारी एकता को नष्ट भ्रष्ट किया।

पंजाब समस्या, 1984 का सिक्ख विरोधी दंगा, अयोध्या विवाद, 1988-89 में पूरे देश में सांप्रदायिक तनाव, 1992 में बाबरी ढाँचे का ध्वंस और गुजरात का दंगा जैसे सांप्रदायिकता का लंबा और भयानक सिलसिला ज़ारी है।

यहाँ का धार्मिक इतिहास देखे तो पता चलता है कि सांप्रदायिक संघर्ष सिर्फ़ हिन्दू मुस्लिम तक सीमित नहीं थे, यहाँ के

---

[32] समीक्षा,जुलाई,सितंबर 1989 साहित्य बनाम साप्रदायिकता पृ. सं. 6

बौद्ध, ब्राह्मण, शैव-वैष्णव के बीच के संघर्षो की लंबी परंपरा हमारे नज़दीक है। आधुनिक भारत में साप्रदायिकता की समस्या एक अलग अंदास में उठी है,इसके कारण बदली हुई परिस्थितियाँ भी हैं,हमारा भौतिक परिवेश भी पहले की तरह नहीं रहा,अतएव सांप्रदायिक समस्या पहले की तरह नहीं रही। इसमें युगानुरूप जटिलताएँ आई हैं। आज हम देश में जिस सांप्रदायिकता को देख रहे हैं, यह राष्ट्रवाद के चिन्तन के साथ उभरा है,और इसलिए इसके अनेक पहलू हैं। भले ही इसे सांप्रदायिक या धार्मिक रूप में रखने की कोशिश होती है,लेकिन इसके निहितार्थ राजनीतिक व सामाजिक हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप की एक अहम मसला मज़हब पर आधारित राष्ट्रीयता की है। सन इसवीं में इस उपमहाद्वीप को दो राष्ट्रों में विभाजन मज़हब के नाम पर हुआ। भारत से बहुत मुसलमान अपने सपनों का देश पाकिस्तान चले गये। पर बाद में क्या हुआ? पाकिस्तान के तो अधिकांश हिन्दू मार डाले गये या खदेड दिए गये,पर भारत से जो मुसलमान पाकिस्तान गये उनकी क्या हालत हुई? आर्थिक दृष्टि से कुछ लोगों की उन्नति अवश्य हुई, लेकिन वे अपनी ज़मीन,भाषा और संस्कृति से कट नहीं गये। पाकिस्तान के नागरिक बन जाने पर भी वे मुहाज़िर ही बने रहे। पाकिस्तान से बहुत से मुसलमान नागरिक अवैध के रूप में भारत में रह रहे हैं। मज़हब के नाम पर ही पाकिस्तान कश्मीर के मुसलमानों को भारत से अलग होने के लिए उकसा रहा है और उग्रवादियों को इसके लिए हर तरह की सहायता दे रही है। आतंकवाद को बढावा देने की भयानक स्थितियाँ , तथा इससे जुडी हुई घटना हम आज सुन रहे हैं और देख रहे हैं। इसके फ़लस्वरूप भारत में दिनों दिन धार्मिक और रजनीतिक तनाव बढ रहा है। जिसका एक दुखद परिणाम अयोध्या के बाबरी मज़्जिद के नाम से जाने वाले विवादास्पद ढाँचे को तोडा जाना था। यह सारा

अन्तहीन सिलसिला मनुष्य के अविवेक के कारण है या चालाक सत्ताधारी वर्ग की साजिश का।

नासिरा शर्मा का उपन्यास ज़िन्दा मुहावरे उपर्युक्त स्थिति से पैदा हुई एक मानवीय चेतना का अंकन करता है। भारत की आज़ादी के पूर्व एक विशेष तबके के मुसलमान नेताओं ने आम भारतीय मुसलमान जनता को समझा दिया कि नया बनने वाला पकिस्तान उनके सपनों का देश होगा। इससे मुसलमान जनता में यह डर पैदा हुआ कि बहुसंख्यक हिन्दू जनता इस्लाम मज़हब और संस्कृति के लिए खतरा बन जायेगी। परिणाम स्वरूप पाकिस्तान बनने की घोषणा होते ही भारत से विशेषकर उत्तर प्रदेश और बिहार से मुसलमानों का पश्चिमी उत्तरपूर्वी पाकिस्तान के लिए प्रयाण आरंभ हो गया। इस सामूहिक प्रयोग से मुस्लिम जनता के बीच अनेक मसलें पैदा हुईं। बूढों की ज़िन्दगी असहाय होने लगी, जवान होती लडकियों की शादी मुश्किल हो गयी। शादियाँ टूट भी गयी। यहाँ से चले गये मुसलमानों को वहाँ की जनता ने हृदय से नहीं अपनाया। इसप्रकार धर्मान्धता की तो विजय हुई पर मनुष्यता पराजित हुई। 'दो शब्द' में नासिरा शर्मा कहती है 'आज दोनों देशो में रहने वाली अधेड और जवान होती नस्लें बंटवारे जैसी ऐतिहासिक घटना की चश्मदीद नहीं है मगर उनकी अनुगूँज न किए हुए गुनाह की प्रताडना बन बचपन से उनका पीछा करती उनके दिल व दिमाग पर फ़साद और कटाक्ष के रूप में कोडे बरसाती उन्हें आत्मग्लानी के सरोवर में गर्दन तक डुबोती रही है'। ऩासिरा शर्म ने बंटवारे के बाद भारत में रह गये और पाकिस्तान चले गये मुसलमानों की वेदना को बहुत ही सहानुभूति और संवेदना के साथ अंकित किया है। ऩिज़ाम पाकिस्तान गये, आरभिक संघर्ष के बाद अर्थोपार्जन की दृष्टि से एक बडा आदमी तो बन गया, पर घर का मोह उसे हर पल चिंतित रहता। पकिस्तान में रहने वाला उसका शरीर मात्र है,मन

वहाँ है जहाँ उसके माता पिता हैं, भाई बहन हैं, प्रेमिका है। भारत आने की इच्छा से उसने परिवार को खत लिख दिया। इसकी पूछ्ताछ के लिए पुलिस घर में आये,,उसके भाई इमाम से कुछ बातें पूछ ली तब उसने उत्तर दिया कि भाई अपने रिश्तेदारों से मिलने आ रहा है। पुलिस ने कहा फ़िर गये क्यों था? तब उसका वालिद ने कहा 'ई मारे गवा रहा कि अज़ादी के मतवाले पाकिस्तान बनाए दीन रहा। दिल काटकर रह दिहिन। यही तो हम पूछत हन कि सरकार अगर बंटवारा न कराती,तो कउन सुसरा वहा जात?'।[33] बंटवारे के बाद की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। आज भी हमारे समाज में इसका फ़ल भोगने वाले मौजूद हैं। निज़ाम हिन्दुस्तान जाने के लिए विज़ा के लिए उसके चक्का भारतीय दूतावास में लगने लगे थे। लेकिन निज़ाम को इज़ाज़त नहीं मिली। वजह बताई गयी कि सियासी तनाव है। 'हिन्दुस्तान एङ्क सपना बन गया और तनहाई उसका भाग्य'।[34] इस प्रकार बडी दर्दनाक मानसिकता का चित्र उभारने के लिए लेखिका सफ़ल हुई।

अलग अलग पकिस्तान बनने का कार्य प्राचीन काल से आ रहा है। कितने पाकिस्तान उपन्यास में विस्तार से इसकी झानबीन की थी। सांप्रदायिकता इसके लिए एक कारण थी। पाकिस्तान को यहाँ प्रतीक रूप में लिया गया है,पाकिस्तान केवल एक देश नहीं है बल्कि वह सांप्रदायिक आधार पर बंटे मानवीय इतिहास की त्रासद गाथा का जीता जागता रूप है।

'पीढियाँ ' में भी इस देश के बँट्वारे का जिक्र है, अर्थात पाकिस्तान बनने का वर्णन है। अग्रेज़ों ने हिन्दू और मुसलमानों के मन में वैमनस्य का बीज बोकर अपने लक्ष्य को पा लिया। इसी

---

[33] नसिरा शर्मा, ज़िन्दा मुहावरे, पृ. सं. 62

[34] ज़िन्दा मुहावरे, नासिरा शर्मा पृ. सं. 32

कारण इकबाल व सवरकर जैसे देशभक्त भी संप्रदाय के नाम पर बंट गये। उदाहरण के लिए 'आप कौन मै विनायक दामोदर सवरकर पर आप तो राष्ट्रवादी थे, हिन्दुवादी नहीं। वह पाकिस्तान का इकबाल भी राष्ट्रवादी था, जिसने लिखा रहा सारे जहा से अच्छा हिन्दोस्ता हमारा पर देखते देखते इन्सान शैतान में बदल गया'।[35]

हिन्दू महासभा के वीर सावरकर ने कहा समान भाव में बधे हुए भारत की परिकल्पना मृगतृष्णा के समान है। हिन्दू-मुस्लिमों के बीच का दबाव एक कडवा सत्य है।' हिन्दुस्तान हिन्दुओं का राष्ट्र है,उनकी भूमि है,भारत में सिर्फ़ एक देश हो सकता है,वह है हिन्दू देश। मुसलमान यहाँ अल्पसंख्यक है और उन्हें भारत के एक प्रदेश में ही शरण लेनी होगी,जहाँ वे धर्म और जाति की समस्त बेडियों से मुक्त होकर स्वतंत्र नागरिकों की तरह जीवनयापन करेंगे'।[36]

'सहमत अली ने पकिस्तान नेशनल मूवमेन्ट की बात उठाई जिसमें ईस्ट बंगाल यानी बंगिस्तान,निज़ाम हैदराबाद स्टेट यानी उस्मानिस्तान और राजस्थान एवं सिन्ध के बार्डर पर म्यूनिस्तान तथा बाकि सब पंजाब,सिन्ध वगैरह को मिलाकर पाकिस्तान बनाने की बात की थी। इकबाल भी उन दिनों इंग्लैण्ड में ही थे और वह भी इस मूवमेंट के साथ हो गए''।[37] इन वाक्यों से मालूम होता है कि मनुष्य का अंतिम लक्ष्य धर्म के आधार पर एक दूसरे का बंटवारा है। यहाँ मनुष्य सब केवल अपने संप्रदाय को ऊँचे दिखाने के प्रयत्न में है।

---

[35] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर,पृ. सं.111
[36] पीढियाँ, अमृतलाल नागर, पृ. सं. 359
[37] पीढियाँ, अमृतलाल नागर, पृ.सं. 364

'काले कोस ' उपन्यास में इसका सकेत है।'पाकिस्तान लेने के लिए बडे ज़ोर की माँग की जा रही है। हमें तो पाकिस्तान का पता ही न चल सका। आखिर पाकिस्तान से मतलब यह है कि ऐसा मुल्क बनाया जाये जहाँ इस्लामी हुकुमत हो और वहाँ एक भी हिन्दू सिक्ख को रहने की इज़ाज़त न हो'' ।[38]

'कलि कथा वाया बाइपास ' में बंगाल विभाजन के लिए मुहर लगा दिये गये एक प्रसंग का संकेत है। बंगाल में उस समय राजनीतिक मतभेद का समय था। हिन्दू और मुसलमानों के बीच का संघर्ष अतीत से चलती आ रही समस्या है। 1916 अगस्त में कलकत्ते की सडकों पर शुरू होते दंगे में हज़ार गंधाती लाशें सडकों से उठाकर गंगा में प्रवाहित कर दी गई। कत्ल मुसलमानों का ज़्यादा हुआ। मिलिट्रि पुलिस हाथ पर हाथ धरे शस्त्रों से लौस खडी रही। कर्फ़्यू का आदेश हुआ। इस दंगे की अवधि एक साल से अधिक दिनों तक जाती रही, जिससे कलङ्कत्ता में लगातार खून खराबा होता रहा। इसके परिणाम नोआखाली और बिहार के दंगे थे। 'इस दंगे को इतिहास में द ग्रैट कैलकटा किल्लिंग के नाम से जाना जाता है। इसी किल्लिंग ने देश और बंगाल के विभाजन पर एक तरह से मुहर लगा दी'' ।[39]

हिन्दू मुस्लिम संघर्ष का फ़ायदा उठाने वाले अंग्रेज़ लोग भारतीयों को दोष पहूँचाते रहते थे। करवट उपन्यास में 1854 से 1902 तक का इतिहास है। उस समय यहाँ अंग्रेज़ों का राज था। हमारे वतन के लोगों के प्रतिनिधि बनकर आये इस उपन्यास के लोग,अंग्रेज़ों का शिकार बन गये थे। लेकिन उनमें से कुछ ने कहा 'आरसमाजी रात दिन चिल्लाये रहे है कि ये आरसमाजियों का देश है, हिन्दुओं का नहीं। मुसलमान तो पहले ही से कह रहे है

---

[38] काले कोस,बलवन्त सिंह,पृ. सं. 209

[39] कलिकथा वाया बाइपास, अलका सरावगी, पृ. सं. 165

कि हिन्दू काफ़िर है, इन्हें मिटाओ '।[40] इस प्रकार धर्मान्ध होकर घूमने वाले जनता को कैसे समझेगा कि यह हमारा देश है अंग्रेज़ तो यहाँ आये हुए है। उन लोगों से हमें मुक्ति मिलनी है। इसके लिए उस समय गाँधी जी ने खिलाफ़त आन्दोलन की शुरुआत की थी। हिन्दू मुसलमान एकता को बनाये रखने के लिए गाँधी जी ने भरसक प्रयास किया। इसकी झलक पीढियाँ उपन्यास में है। 'खिलाफ़त आन्दोलन,और असहयोग आन्दोलन दोनों ही समस्याओं को जोडकर देश को आगे बढने का नया मार्ग दे दिया'।[41]

अंग्रेज़ राज के समय लखनउ में 'हिन्दू अपने हिन्दू संप्रदाय को बचाने के लिए बडे उत्साह से संगठित हो गए। मुसलमानों में तज़लीम और तन्ज़ीब संस्थाएँ भी प्रबल रूप से संगठित हो चुकी थीं। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपनी राष्ट्रीयता को भूलकर अपने-अपने संप्रदायों को प्रबल करने के लिए जुड पडे थे'।[42] इस तरह अपने संप्रदाय में आस्था रखने वाले लोग अपने देश के बारे में चिंतित नहीं थे, अगर चिन्ता हो जाय तो अंग्रेज़ दीर्घकाल यहाँ राज नहीं किया करते।

काले कोस का एक प्रसंग देखिए 'साप्रदायिक वातावरण इस प्रकार बिगड चुका था कि धीरे धीरे दारे में सिर्फ़ मुसलमान जाने लगे। हिन्दू और सिक्ख अपनी अपनी जगह पर बिल्कुल चौकन्ने हो रहे थे। भीतर ही भीतर हथियार और लडाई की अन्य सामग्री एकत्र की जा रही थी। यों हँसना बोलना ज़ारी था किन्तु भीतर ही भीतर परस्पर घृणा और द्वेष का विष फ़ैलता जा रहा

---

[40] करवट, अमृतलाल नागर, पृ. सं. 297
[41] पीढियाँ, अमृतलाल नागर, पृ. सं. 280
[42] पीढियाँ, अमृतलाल नागर, पृ. सं. 314

था'।[43] सांप्रदायिकता का भीषण स्वर से त्रस्त जनता का इतिहास आज भी ज़ारी है।

साप्रदायिकता चाहे वह अल्पसंख्यकों की हो या बहुसंख्यकों की वह हमेशा गलत होती है।हम एक से लडने के लिए दूसरे का पक्ष नहीं ले सकते,न ही उसे सही ठहरा सके। लेखकों ने उपन्यास में सांप्रदायिकता के कारण होने वाले दुष्परिणामों को सामने रखकर हमारी आँखें खोलने का प्रयास किया है कि जब संप्रदाय की भावना व्यक्ति की मानसिकता पर हावी हो जाती है,तब वह राष्ट्र तथा समाज को दूसरे दर्जे पर रखने लगता है व संप्रदाय को पहले पर रखता है।

दलित चेतना

दलित वह व्यक्ति है,जो संकुचित समाजिक स्थिति का अनुभव करता है, जिसे मात्र जन्म के आधार पर समाज में एक ही प्रकार का जीवन जीने का अवसर मिला है। मनुष्य के रूप में उनके मूल्यों को नकारा गया है। अतः दलित वही है जो सामाजिक अछूत, शूद्र, बहिष्कृत,उत्पीडित और पिछडा हुआ वर्ग है। वे समाज में रहकर संकुचित और हीन भावना का अनुभव करते हैं। 'दलित केवल हरिजन और नवबौद्ध नहीं। गाँव की सीमा के बाहर रहने वाली सभी अछूत जातियाँ, आदिवासी, भूमिहीन, खेत मज़दूर, श्रमिक, कष्टकारी जनता और यायावर जातियाँ सभी के सभी दलित शब्द से व्याख्यायित होती है। दलित शब्द की

---

[43] काले कोस, बलवन्त सिंह, पृ. सं. 237

व्याख्या में केवल अछूत जाति का उल्लेख करना पर्याप्त नहीं होगा, इसमें सामाजिक एवं शैक्षणिक दृष्टि से पिछडे हुए लोगों का भी समावेश हुआ है। ऐसे लोग भी अपने आप को आहार व्यवहार में पिछडे हुए अथवा दीन हीन समझते हैं किन्तु वे दलित नहीं हैं। सच्चे अर्थों में तो दलित वही लोग हैं जो पिछडी जाति के साथ साथ सामाजिक,आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछडे हुए हैं,केवल वही दलित है '।[44]

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में चित्रित शंबूक की कथा के ज़रिए दलितों की प्राचीन स्थिति का पुट मिलता है। शंबूक की तपस्या एक प्रकार का प्रतीकात्मक रूप है। शंबूक की कथा के ज़रिए वर्तमान लहुलुहान वास्तविकताओं का चित्रण करने की कोशिश भी कमलेश्वर ने की है। शंबूक दलित है। दलितों को आगे बढने की कोशिश विविध स्तरों पर हो रही है। मानव के रूप में जीने का अधिकार उन्हें है। हिन्दू समाज के सवर्ण समुदाय पहले ऐसे लोकमत का निर्माण कर रहे हैं जिसमें दलितों के प्रति विरोध नहीं बल्कि सख्त नफ़रत का भाव मौजूद है,जो वर्ग भेद या रंग भेद के नाम से जाना जाता है। प्राचीन काल से लेकर दलित कई प्रकार की यंत्रणाओं के शिकार बनते आते हैं। शंबूक शूद्र वंशी होने के कारण तपस्या करने के अधिकार से वंचित है। शूद्रों के लिए तपस्या करना पाप समझता है। यहाँ यह स्पष्ट है कि पुराने ज़माने से आदमी और आदमी के बीच विभाजन ज़ाहिर था। शंबूक कि तपस्या से वहाँ के ब्राह्मण पुत्रों की मृत्यु होती रही। रामचन्द्रजी ने क्षत्रिय धर्म के पालन के लिए और ब्राह्मण धर्म की रक्षा के लिए शूद्र शंबूक की हत्या की। इस से यह स्पष्ट होता है कि पहले से लोग उच्च जाति की पनाह के लिए जाग्रत है। शंबूक की कथा राम कथा में उपेक्षणीय हिस्सा है, इस कथा को कितने

---

[44] दलित विमर्श, डॉ नरसिंहदास वणकर, पृ. सं.12

पाकिस्तान में लाकर बहुत ही मार्मिक संवेदना उपन्यासकार जगाते हैं।

स्वतत्रता संग्राम के समय विलायती कपडों के बहिष्कार के लिए गाँधी जी के नेतृत्व में जनता इकट्ठी हो गयी। अंग्रेज़ों ने इसी समय एक षड्यन्त्र रचा। उन्होंने सबसे पहले मुसलमानों को पृथक निर्वाचन का अधिकार दे दिया। इसी तरह सवर्ण हिन्दुओं से दलित वर्ग को इस तरह अलग करना गाधी जी को असह्य हो उठा। गाँधी जी ने कहा था कि 'जहाँ तक हिन्दू जाति का संबन्ध है, पृथक निर्वाचन उसका अंगभंग और विच्छेद ही करेगा''।[45] उन्होंने सबसे पहले अछूतों का नाम हरिजन दिया। जो सारे देश में प्रचलित हो गया। अंग्रेज़ों के चाल से हमारे समाज की स्थिति और भी भयानक हो गयी। जेल में रहते हुए भी गाधी ने हरिजन सेवक संघ की स्थापना की और उनके अनुयायियों ने हरिजनोद्धार काम को सारे देश में तेज़ी से आगे बढा दिया। उस समय की नयी पीढी समाज के रूढियों को तबाह करने के लिए आगे आयी थी। इससे पता चलता है कि प्रगति की ओर अग्रसर होने के लिए और अछूतों की रक्षा के लिए लोग सजग हैं। लेकिन उनकी स्थिति आज शोचनीय बनती जा रही है। यहाँ प्रसंग हरिजन को हरिजन नाम प्राप्त इतिहास का है।

विश्रामपुर का सन्त उपन्यास का कुंवर जयंती प्रसाद सिह राज्यपाल था। उनके पहले के राज्यपाल एक गाँधी वादी नेता थे। वे हरिजन थे और पिछडे वर्गों के विकास में उनकी रुचि बेहिचक प्रकट होती रहती थी। तब 'दलित'का प्रयोग इतना व्यापक नहीं हुआ था। गाँधीवादी परंपरा में होने के कारण अपने को हरिजन सेवक मानने में असमझस भी नहीं थी। लेकिन सवर्ण नेता और

---

[45] पीढियाँ, अमृतलाल नागर, पृ. सं. 355

अवसरशाही इन कारणों से उन्हें जातिवादी कहा करती थी। पर राजभवन के अहाते में सारे कर्मचारी समुदाय से उन्हें एक निस्संग संत का सा आदर मिलता था।जो भी हो,दलित का प्रयोग व्यापक न होते वजह भी जनता एक दूसरे में भेदभाव दिखाते थे। कुछ अच्छे लोगों की कोशिश से उन्हें सम्मान का भाव मिलता था लेकिन बुरी मानसिकता से जीने वाले लोग सब कहीं विषैली स्थिति देखते है। एक उच्च पद हाज़िल करने के बाद भी एक रज्यपाल को इसी प्रकार की अवहेलना सुनना अत्यन्त दर्दनाक है। आज भी लोगों के मन इस प्रकार की बुरी चिन्ताओं से ग्रस्त हैं।

प्राचीन काल से दलित लोग समाज की अस्पृश्य वस्तु थी, अपना काम के लिए उन्हें उचित फ़ल नहीं मिलता था। बाद में अपनी स्थिति के बारे में वे सोचने लगे। अंबेडकर, ज्योति बा फ़ुले आदि समर्थ व्यक्तियों की कोशिश के फ़लस्वरूप उन लोगों की स्थिति में सुधार आ गया। आज दलित लोग अपने हकों से परिचित है।

प्रान्तीयता

हमेशा भारत में एक रूप में या अनेक रूप में प्रान्तीय मनोभाव विद्यमान था। परिवर्तित युगों में उसकी भयानकता बढती रहती थी। अनेक राज्य मिलकर एक राष्ट्र बनता है तब प्रान्तीय भाव देशीय एकता के लिए भीषण स्वर उठाकर आ जाती है। अपने प्रान्त में रहने वालों के साथ रिश्ता और प्यार दिखाना और अन्य प्रान्त में रहने वालों से घृणा दिखाना यह है प्रन्तीयता का भाव। भौगोलिकता इसके लिए एक कारण है। अलग,अलग प्रान्तो

में रहने वालों की भाषा, भोजन, आदत, रीति-रिवाज़ आदि में भिन्नता है। इन्हीं के कारण एक प्रान्त के लोग अन्य प्रान्त के लोगों को घृणा और भय से देखते हैं। इसके पीछे इतिहास परक कारण अधिक है। दक्षिण और उत्तर में रहने वालों के बीच के भेदभाव आर्यों के काल से शुरू हुआ है, इतिहास इसके लिए अनेक प्रमाण हमारे सामने रख देता है। राजनीतिक कारणों से भी प्रान्तीय भाव उत्पन्न होता है।

प्रान्तीय भाव को बनाये रखने के लिए मनोवैज्ञानिक कारण का भी हाथ है। हर जनता की इच्छा यह है कि अपना देश हर कहीं ऊँचे दर्जे में आ जाय। प्रान्तीय विकार तब आ जाता है जब हम देशीय तत्परता की उपेक्षा करते हैं। एक व्यक्ति में पनपने वाली संकुचितता अनेक व्यक्तियों में फ़ैल जाती है, इसी से प्रन्तीयता का भाव उत्पन्न होने का अवसर मिल जाता है। क्यों कि यह विष एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में जाने के लिए अधिक समय की ज़रूरत नहीं है। हमारे भारत देशों में भी इसी प्रकार का प्रान्तीय भाव अनेक वर्षों पहले पनपा था। पंजाब में 1970 और 1980 में एक आन्दोलन हुआ था, वह यह है कि पंजाब में सिखों के लिए अलग राज्य खालिस्तान चाहिए। जगजीत सिंह नामक व्यक्ति ने यह नाम दिया था। जनता के समर्थन न होने के कारण यह आन्दोलन मन्द गति में हो गया। उत्तर अमेरिका के सिखों से खालिस्तान को समर्थन मिला। पाकिस्तान ऎ.एस. ऎ .से भी उसे समर्थन मिला। इस आन्दोलन के कारण पंजाब में अराजकता और आतंकवाद शुरू हुए। आतकवादियों ने उस समय एयर इंडिया फ़्लैट 182 पर बंब विस्फ़ोट किया, इससे 329 कनेडियन सिविलियनस मारे गये। 1980 में यह आन्दोलन उच्चता में पहूँचा था, इसके नेतृत्व करने वाला व्यक्ति जार्नैल सिंह बिन्दारवाले था। इस आन्दोलन के कारण हज़ारों निर्दोष मारे गये। उनका उद्देश्य हिन्दु-सिख में दरार पैदा कर अलग खालिस्तान बनाना है।

नासिरा शर्मा के 'ज़िन्दा मुहावरे ' में खालिस्तान समस्या का संकेत है।अरसे बाद निज़ाम की मुलाकात शहाणी से हुई। शहाणी हिन्दू सिन्धी है,ज़मीन्दार आदमी है। दोनों बहुत सी पुरानी बातें कहने लगे। घर-बार की,तिजारत,ज़मीन की बातों के बाद तान सियासत पर आकर टूटी और एक-दूसरे पर छींटाकशी कर दोनों बडी देर तक हँसते रहे।निज़ाम ने कहा 'यार शहाणी! सियासत इन्सान को बन्दर का नाच नचाती है। गलती तो दोस्त हमारी है,जो डुगडुगी बजाने वाले के हाथों हम अपनी गर्दन की रस्सी थमा बैठते हैं। शहाणी ने संजीदा होकर कहा। यह खालिस्तान का चक्कर अजीब उठ गया है निज़ाम ने बात का सिरा पकडते हुए कहा। फ़िक्र काहे की,यार! खालिस्तान बना,तो अपना लाहौर जाएगा,मगर यह कराची सैयद साहब के मुताबिक हिन्दुस्तान में वापस मिल जाएगा, फ़िर तुम्हें दुख काहे का,मेरे यार? शहाणी ने ज़ोर का कहकहा लगाया। कुछ लोगों की संकुचित मानसिकता खालिस्तान बनने के पीछे थे,उनकी मानसिकता में कुछ बदलाव उस समय आ जाय तो अनेक साधारण लोगों को अपना जान देने का अवसर नहीं मिलेगा।

भारत को तोडने की छोटी कोशिशें कई हुई हैं। जिनमें तमिलनाडु, मिज़ोरम और नागलैंड के आन्दोलनों को रखा जा सकता है। खून खराबा न सही,पर सिंधियों ने पाकिस्तान से अलग होने की मुहिम पिछले आठ दस साल से चला ही रखी है। इधर पिछला दशक समाप्त होने के पहले भारत में दो अलगाववादी हिंसक आन्दोलनों की इबारत लिख गया। कश्मीर में जम्मू-कश्मीर मुक्ति मोर्चा को (जे के एल एफ़) भारत छोड पाकिस्तान तक में रहना गवारा नहीं। उधर संयुक्त असम मुक्ति मोर्चा (उल्फ़ा) के नौजवान जंगलों में इसलिए युद्धाभ्यास करने चले गए हैं ताकि असम को भारत से अलग किया जा सके।

कमलेश्वर का कितने पाकिस्तान अमृतलाल नागर का पीढियाँ में प्रान्तीय भाव की उपज के फ़लस्वरूप हमारे समाज में फ़ैल गयी दर्दनाक स्थिति का वर्णन है। कमलेवर ने विश्व इतिहास से उदाहरण लेकर इसकी भयानकता स्थापित कर दी है। उदाहरण देखिए 'श्रीलंका में प्रभाकरन ने जो दो हज़ार नागरिक जान से मारकर ज़मीन में गाड दिए थे, उनके पिंजर निकल-निकल कर कराहने लगा! '।[46]

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि मनुष्य किसी युग विशेष में,किसी समाज विशेष में रहता है, इन्हीं समाज विशेष की कथा के द्वारा समकालीन हिन्दी उपन्यास में एक एक समाज उभर कर सामने आता है। जीवन और समाज के पीछे कुछ कुछ छिपाये रहते हैं, उपन्यास में ये सब चित्रित कर उपन्यासकार हमें आश्चर्य चकित कर देता है। उपन्यास में चित्रित एक एक घटना यहाँ से वहाँ स्थानान्तरित करके वास्तविक घटनाओं का आधार बनती है। साहित्यकार का इतिहासबोध एक हद तक हमारा इतिहासबोध व्यापक बनाने का कारण बन जाता है। इतिहासबोध से समाज की असलियत तथा अहमियत समझा जा सकता है। साहित्यकार भिन्न भिन्न व्याख्याओं के साथ उन्हें उपन्यास में समेटता है। उपन्यास में चित्रित घटनाएँ सब एक रूप या अनेक रूपों में निरन्तरता का बोध यानि इतिहासबोध जगाती है। इतिहास की बातें वर्तमान की भी है,क्यों कि वे वर्तमान को परिष्कृत करती है और उनकी स्थिति भविष्य की संभावनाओं के साथ गतिशील रहती है। इतिहासबोध जो कालिक और कालातीत बोध है। यह हमारे चिंतन क्षेत्र को बढाता है। उपन्यास सब अतीत के साथ वर्तमानता भी दिखाता है,साथ साथ भविष्य की सभावनाओं की ओर इशारा करता है।

[46] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं.153

समकालीन हिन्दी उपन्यास में संस्कृति सापेक्ष इतिहासबोध

संस्कृति एक गतिशील प्रक्रिया है। मानव जीवन में संस्कृति का अपना मत्वपूर्ण स्थान है। मानव को अन्य प्राणियों से श्रेष्ठ और उच्चता प्रदान करने में सहायक सिद्ध करने वाली प्रक्रिया है संस्कृति। सामाजिक परंपरा से प्राप्त व्यवहार का नाम है संस्कृति, वह सीखे हुए व्यवहार भी है। संस्कृति जो है, वह मानव जीवन और व्यक्तित्व को समृद्ध बनाने वाली है। संस्कृति ज़िन्दगी का रास्ता है। डा.रामधारीसिंह दिनकर ने अपनी सुविख्यात कृति 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखा है-सस्कृति ज़िन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है,जिसमें हम जन्म लेते हैं'।[1] हम जिस सामाजिक वातावरण में जन्म लेते हैं वहाँ सदियों से छायी रही ऎसी प्रक्रिया है उसमें चरम रखकर,उसी प्रक्रिया के साथ हम ज़िन्दगी जी रहे हैं। मानव जीवन की संपूर्ण गतिविधियों का संचालन से मनुष्य बनने की दिशा जिस अन्तःवृत्तियों में अग्रसर होता है उसे संस्कृति कहते हैं। संस्कृति का शाब्दिक अर्थ है संशोधन करना, सुधारना, उत्तम बनाना अथवा परिष्कृत करना। मनुष्य ने अपने जीवन के समस्त क्षेत्रों में उन्नति प्राप्त करने केलिए जिन चेष्टाओं की ज़रूरत महज़ूस करता है वे संस्कृति हैं। मनुष्य के लौकिक पारलौकिक अभ्युन्नति के अनुकूल आचार विचार भी संस्कृति है। संस्कृति का समाजशास्त्र नामक लेख में मैनेजर पाण्डेय ने संस्कृति शब्द के बारे में कुछ कठिनाइयों की ओर ध्यान आकर्षित किया था। उन्होने लिखा 'संस्कृति भारतीय परंपरा का शब्द नहीं है । यह संस्कृत के कोशों में नही मिलता। यह न मोनियर विलियम के कोश में है न

[1] रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय,पृ.सं. 653

वी.एस. आप्टे के। लेकिन 'सभ्यता संस्कृत के कोशों में है और उसके अर्थों में संस्कृत के अर्थ का समावेश है। संस्कृति शब्द अंग्रेज़ी के कल्चर का अनुवाद है'।[2] संकृति समाज का अभिन्न अंग है। प्रत्येक समाज अपनी संस्कृति से परिभाषित होता है, चाहे वह छोटा हो, विशाल हो, आधुनिक हो, वर्तमान का हो, प्रागैतिहासिक हो। उसकी स्वतंत्र पहचान उसी से बनती है। मनुष्य संस्कृति के अनुरूप अपने को ढालता है। संस्कृति उसकी भाषा, उसकी वेश-भूषा, उसका भोजन और उसकी भावनाएँ एवं मूल्य निर्धारित करती है। 'इतिहासकारों ने संस्कृति को किसी समूह या देश के विशेष कलात्मक अथवा बौद्धिक विकास के रूप में ग्रहण किया है'।[3]

समाज में जीवनयापन के विशिष्ट स्वरूप हमेशा विद्यमान है,यह ऐतिहासिक विकास में विकसित हो जाते है इस का नाम भी संस्कृति है।ऐतिहासिक विकास के साथ साथ विकसित होते हुए स्वरूप को समाज की मानव सामूहिक संस्कृति के रूप में अपना लेते है। मानव ही संस्कृति की सृष्टि करता है। इसकी सृष्टि एक व्यक्ति द्वारा संभव नहीं है यह ध्यान देने की बात है। सदस्यों द्वारा निरन्तर समृद्ध होती रही संस्कृति की अपनी एक गतिमयता है। यह पीढी से दूसरी पीढी को हस्तान्तरित होती समाज की विशिष्ट पहचान है। मानव की सक्षमता के फ़लस्वरूप यह ऐतिहासिक निरन्तरता के रूप पा सकता है। एक पीढी से दूसरी पीढी तक चला आने वाला क्रम को परंपरा की संज्ञा भी दे सकता है, लेकिन इसमें कुछ नया शामिल हो जाता है, कुछ समाज से अर्जित और कुछ दूसरे समाज से आयातित रूप, इससे संस्कृति नयी बन जाती

---

[2] संस्कृति का समाजशास्त्र, मैनेजर पाण्डे, माध्यम जुलाई-सितंबर 2006, पृ. सं. 19

[3] संस्कृति और सास्कृतिक विविधता ,डा. दिनेश मणि, मधुमति नवंबर 2005, पृ. सं. 44

है। इसके लिए एक कसौटी ज़रूर है, नये रूप से स्वीकार या अस्वीकार करने की मनुष्य की क्षमता में यह निर्भर है। यह क्षमता तो मानव को प्रकृति से मिलती है। संस्कृति निर्माण की अपनी प्राकृतिक क्षमता के उपयोग से मानव ने अपने जीवन यापन की प्रणाली को अन्य जीवन धारियों की जीवन प्रणाली से भिन्न रूप में विकसित किया है। जीव जगत में केवल मानव को ही संस्कृति निर्माता होने का गौरव प्राप्त है। मानव का सबसे प्रमुख बल उनके मस्तिष्क है, उसके बल पर संस्कृति निर्माण का क्षेत्र अनुपम हो जाता है।

मानव में सास्कृतिक विविधता तो हम देख सकते हैं, यह उनकी विवशता तो नहीं है, यह तो एक प्रकार उनकी विशेषता है। शिक्षण प्रशिक्षण की हमारी आधुनिक विधियाँ हमें संस्कृति के भौतिक रूपों को भी एक विशेष व्याकरणिक व्यवस्था में ग्रहण करना सिखाती हैं। स्वभावतः संस्कृति एक व्यापक अवधारणा है। संस्कृति स्वत्व का पर्याय भी है। यह तो समाज के एक एक युग के ढाँचे को अभिव्यक्त करती है। इसका आधार मनुष्य के सामाजिक संबन्धों में है। 'संस्कृति में जीवन और व्यवहार की सच्चाई का ज्ञान, अभाव की चेतना और आदर्श की कल्पना, तर्क-वितर्क और विश्वास, इन सभी पक्षों की अवस्थिति है। इसलिए वह केवल मनुष्य की स्थिति की द्योतक नहीं,बल्कि उसकी प्रेरणा और दिशा की नियामक भी है'।[4]

मानव जीवन के विविध आयामों की परिवर्तित-परिवद्धित अवस्था का नाम संस्कृति है और इससे सामाजिक संरचना की प्रतिकृति भी संभव है। यह तो समाज के कल्याणकारी आदर्शों की समष्टि है और इसका लक्ष्य समाज की हित साधना ही है।

---

[4] कथन अप्रैल-जून 2005 पृ. सं. 74

संस्कृति के अन्तर्गत अनेक तत्व समाहित हैं। मानव के जीवन को सुन्दरतम बनाने के लिए मानव द्वारा किए जाने वाले सारे प्रयत्न ही संस्कृति है। यह मानव की क्रियाशीलता का प्रेरणा स्त्रोत है। संस्कृति उन्नयन की साधना को सिद्ध करती है और यह मानव के सभी प्रकार के आन्तरिक जीवन, बौद्धिक, नैतिक धार्मिकता को व्यक्त करती है। 'संस्कृति मानव को मनुजत्व देने वाले विशिष्टतम तत्वों में अन्यतम है'।[5] स्पष्ट है कि संस्कृति में मानव के दोषों को दूर करने के तत्व निहित होते हैं। इसलिए यह कहना समीचीन है कि संस्कृति के द्वारा वास्तव में शुद्धीकरण संभव है।

'संस्कृति मनुष्य की दिव्य साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है'।[6] संस्कृति से व्यष्टि और समष्टि की अस्मिता की पहचान होती है। इसलिए वह अपने अतीत की रक्षा करना चाहता है, जो वर्तमान के निर्माण में योग देता है। संस्कृति किसी देश की संपूर्ण मानसिक वैकारिक स्थिति को सूचित करती है। स्वयं विकासशील है। मानव अपनी बुद्धि से विचार और कर्मों के क्षेत्र में जो सृजन करता है, वही संस्कृति है। संस्कृति समाज का उद्धार करने वाली बेजोड शक्ति है। परम्पर से प्राप्त आदतें, मूल्य, कला-कौशल, यन्त्रिक क्रियाएँ, ज्ञान आदि सब संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। इसके माध्यम से हम उत्तम के साथ संबंध स्थापित कर सकते हैं और यही संस्कृति उच्च कोटि की मानवता का मेरुदण्ड है। यह समस्त उच्च आदर्शों के समूह का नाम है साथ ही यह किसी भी देश या समाज के कलात्मक, बौद्धिक, मानसिक विकास का द्योतक है। संस्कृति मानव जीवन के भौतिक और अभौतिक पक्षों के विभिन्न स्तरों को स्पर्श करती है। व्यक्ति के अन्तर में श्रेष्ठतम विचारों, आदर्शों द्वारा परिवर्तन करके स्वस्थ सामजिक जीवन के निर्माण में उसका महत्वपूर्ण हाथ रहता है। सच्चे आर्थों में संस्कृति समाज

---

[5] भारतीय संस्कृति, डा. प्रीति प्रभा गोयल, पृ. सं. 1

[6] अशोक के फ़ूल, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. सं. 64

को उन्नति की ओर ले जाने वाली संचालिका शक्ति है। संस्कृति यों तो अखंड है और हममें से कोई उसके अधिकार से बच नहीं सकता। जो हमें नीचे पशुता में गिरने से रोकती है और मानवता में ऊपर उठाती है, वही मानव - संस्कृति होनी चाहिए।

संस्कृति और साहित्य का अत्यन्त घनिष्ठ संबन्ध है। दोनों का अंतःसूत्र सर्वविदित है। दोनों समाज का ही अंग है। संस्कृति जो साहित्य सृष्टा के अन्तरमन में निवसित है- जितना कुछ अनुभव और ज्ञान मनुष्य प्राप्त करता है वह साहित्य सर्जना का रूप ले लेता है। साहित्य में अंकित जीवन और जीवन के मूल्य ही उस समाज की संस्कृति है। संस्कृति का जो भाव सहित्य में अन्तर्निहित है। साहित्य संस्कृति का लेखा जोखा है। साहित्य सृष्टि के आधार के मूल रूप संस्कृति है। साहित्य जो है सामजिक जन जीवन की अन्तर्बाह्य प्रतिछवियों का प्रकाशन करता है। इसलिए जिस संस्कृति से वह समाज ओत प्रोत है वही साहित्य के विषय में प्रकट होता है। साहित्यकार धर्म, दर्शन, आध्यात्म और ज्ञान- विज्ञान सब कुछ बाह्य रूप से ग्रहण करता है, इन के परे जो अन्तर्मूलक विराट चेतना संकल्पना के रूप में विकसित होती हुई साहित्य में प्रतिफ़लित होता है। समाज में निहित नाना प्रकार के उत्थान पतन साहित्य में प्रकट होता है, यही कारण है कि साहित्य किसी देश या काल की संस्कृति का प्रामाणिक आधार के रूप में सामने आता है। साहित्य और संस्कृति सदा परस्पर सापेक्ष रहे हैं और लम्बी यात्रा के मध्य कभी-कभी सहयोग अथवा संघर्ष के मार्ग से भी गुज़रे है।

साहित्य का संबन्ध चूँकि हमारे भाव-जगत, हमारे संस्कारों, हमारी समूची चेतना-सत्ता से होता है, अतः संस्कृति से उसका गहरा, अटूट रिश्ता है।जीवन जगत के सभी आसंग समाहित है, अतः उसका क्षेत्र बहुत व्यापक है।'साहित्य के बारे में यह जो कहा

जाता है कि उसमें हमारा सारा अतीत और वर्तमान झाँकता है और भविष्य के संकेत भी मिलते है तो इसका अर्थ यही है कि उसमें हमारा सारा इतिवृत्त, सारा यथार्थ और हमारी कल्पना-परिकल्पनाएँ, हमारे सपने अपना पूरा- पूरा स्थान पाते हैं और इस तरह हमारा एक भावगत एवं चेतनागत लेखा-जोखा साहित्य के रूप में निरन्तर तैयार होता रहता है जिसके निर्माता हालाँकि हम स्वयं है'।[7] साहित्य यानी अच्छा साहित्य मूलतः और अनिवार्यतः एक सस्कृति की उपज होता है और उस संस्कृति का स्वर उस साहित्य में सुनाई पडना चाहिए। जो साहित्य किसी एक संस्कृति का प्रतिबिंबन करता है उसका अपना व्यक्तित्व, अपनी एक अस्मिता होती है, और जब वह व्यक्तित्व उसके क्षेत्र के बाहर पहचाना जाता है तभी दूसरे संस्कृति समाजों में उसे महत्व दिया जाता है और उसके ग्रहण और मूल्यांकन की प्रवृत्ति होती है। समकालीन हिन्दी उपन्यास में संस्कृति से संबन्धित अनेक जानकारियाँ मिलती है। अनेक उपन्यासों में एक कालविशेष को उजागर करके संस्कृति सापेक्षता का महत्वपूर्ण हिस्सा हमारे सम्मुख रखने में साहित्यकार सब सफ़ल हुए हैं। संस्कृति में मानवीय मूल्य का सबसे ज़्यादा महत्व है।

मानवीय मूल्य

उपनिषद्कालीन भारतीय संस्कृति की गरिमा दिखाने वाला उपन्यास है आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का अनाम दास का पोथा। हमारी संस्कृति अनेक श्रेष्ठ मूल्यों पर ज़ोर देती है। मानव

---

[7] साक्षात्कार जुलाई 98 सास्कृतिक प्रक्रिया में साहित्य, शंभु गुप्त पृ. सं.45

को जीने की प्रेरणा देना , प्रेम करना, सेवा करना, मानवीयता की उद्घोषणा करना, परस्पर विश्वास करना, आदि मानवीय मूल्यों को उजागर करके अनामदास का पोथा पाठकों को इसकी ओर विशेष ध्यान आकर्षित करता है। इस उपन्यास ने एक काल विशेष को इसमें समाहित कर अनेक सास्कृतिक भावों का उल्लेख करके हमारे सम्मुख विशेष संदेश रखे हैं। संदेश यह है कि मानव को अपने आप में ये सब समेटना हैं, क्यों कि मनुष्य का लक्ष्य सचमुच दूसरों की हित साधना ही है। भारत में सचमुच कुछ प्रतिशत लोगों के मन इस तरह के सास्कृतिक भावों से युक्त हैं। लोगों को सास्कृतिक निरन्तरता का ज्ञान देने के लिए यह उपन्यास सक्षम है। काले कोस, करवट, पीढियाँ, विश्रामपुर का सन्त, निन्यानवे, कितने पाकिस्तान, कलिकथा वाया बाइपास, शेषकादंबरी, आखिरी कलाम, उपन्यास में भी इस तरह के सास्कृतिक मूल्यों को लेखक उजागर करते हैं।

अनामदास का पोथा में सेवा के महत्व को अनेक स्थलों में चित्रित किया गया है। राजा जानश्रुति के यहाँ, उपमन्यु के वंशज प्राचीनशाल, पुलुष का वंशज सत्ययज्ञ, भल्लव का वंशज इन्द्रद्युम्न, शर्कराक्ष्य क वंशज जन, अश्वत्राश्व का वंशज बोडिल ये पाँचों बडी बडी शालाओं के स्वामी थे, इकट्ठे हुए और आत्मा क्या है? ब्रह्म क्या है? आदि पर विचार करने लगे। एक एक वंशज ने अलग अलग उत्तर दिया गया। विचार करने के बाद राजा रैक्व की ओर देखा। उन्होंने उत्तर दिया कि समूचा विश्व एक पुरुषोत्तम का रूप है। सेवा संबन्ध में उन्होंने कहा कि ‘तुम भी प्राण भी, आकाश भी, सूर्य भी, चद्र भी। जो ऐसा समझकर सेवा में प्रवृत्त होता है उसमें अहंकार नहीं होता। अहंकार सेवा की महिमा को ही कम नहीं करता, वह सेवा को सेवा ही नहीं रहने देता ’।[8] अहंकार से युक्त

---

[8] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.सं. 78

सेवा का कोई महत्व नहीं है। अहंकार मानव को नाश से विनाश की ओर ले जाता है। इस प्रसंग के द्वारा यह उजागर होता है कि सेवा की महत्ता अहंकार निषेध के द्वारा संभव होती है। एक अन्य प्रसंग देखिए, रैक्व ऋषि दीन दुखियों की सेवा के लिए गाडी खींचकर उन तक खाद्यान्न पहूँचाते हैं और कहते हैं 'माँ जो दीन दुखियों की सेवा नहीं कर सकता वह क्या बुद्धि की परीक्षा करेगा।'[9] सेवा के लिए सहयोग की ज़रूरत है। इसी संदर्भ में जाबाला से माँ ऋतंबरा कहती हैं कि दीन-दुखियों के लिए कुछ करने के लिए उसका सहयोग आवश्यक है। रैक्व भी कुछ करने के लिए तैयार है। सेवा अच्छा आत्म ज्ञान भी है।' रैक्व गाडी पर सात-पात लाद कर गाँव के दीन दुखियों की सेवा करना चाहता है, कहता है सच्चा आत्मज्ञान यही है।'[10] माँ ऋतंबरा ने रैक्व को दिन रात सेवा कार्य करने का उपदेश दिया गया। वह दूर दूर से आए रोगियों की सेवा करते और घर में न आये रोगियों की सेवा उनके घर जाते करता है। शाम को लौटते वक्त कभी कभी रात हो जाय तब ऋजुका उनकी सहायता करती है। सेवा भाव के अनेक प्रसंग का उल्लेख करके हमें उसकी ओर जाने की प्रेरणा दी जाती हैं। इस उपन्यास के अधिकांश पात्र सेवा को तत्परता के साथ अपना लेते हैं। अपने आप को भूलकर सब सेवा में लीन होते हैं

काले कोस उपन्यास का पैशोरा सिंह का बेटा सूरत सिंह प्रतिभाशाली अवश्य था, उसकी गहरी दिलचस्पियाँ बंबई ऐसे शहर से संबन्धित थीं। लाहौर में मेडिकल कालेज की एक छात्रा महेन्द्र कौर के कारण उसमें क्रान्ति की भावना आ गयी। एक दिन महेन्द्र कौर सूरत सिंह का चारगाँव में आती है। उसने चारगाँव की जनता की सेवा के लिए वहाँ एक क्लिनिक खोली। रोगियों की शुश्रूषा करने लगी। सूरत सिंह भी बडी आशाएँ लेकर आता है।

---

[9] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.सं. 90

[10] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.सं. 102

वह ग्रामीणों की समस्याओं पर अपने पढे लिखे मित्रों के साथ विचार विनिमय करता है। चार्गांव में वह देखता है कि साधारण किसान पिछडे हुए होते हैं, आर्थिक संकटों से घिरे हुए होते हैं। उन्की यह स्थिति देखकर वह बहुत चिंतित हो गया। उनके बीच जाकर उनकी स्थिति के बारे में उन्हें परिचित कराने के लिए वह निकल पड्ता है। इस उपन्यास का एक पात्र विरसा सिंह सबसे पहले डाकू का काम करता था, हिन्दु मुस्लिम दंगे को देखकर वह बाद में बदल गया। उस समय रिश्तों के बारे में वह चिंतित होने लगा, घायलों की सेवा करने लगा, इस तरह सच्चे मानवीय बनकर विरसा सिंह जीवन बिताता है। महेन्द्र कौर पहले से ही सुसंस्कृत नारी की तरह जीवन बिताती थी। विरसा सिंह पहले संस्कारवान नहीं था बाद में वह सुसंस्कृत बन गया।इससे यह पता चल सकता है कि एक मनुष्य को सुसंस्कृत बनाने के लिए उसका वातावरण मुख्य था। इस उपन्यास के द्वारा सेवा भाव और मानवीयता का अच्छा पक्ष हमारे सामने आता है।

मानवता एक श्रेष्ठ मूल्य है इस मूल्य भावना को द्विवेदी जी मानवता वादी दृष्टि से प्रकट करते हैं। लेखक की संस्कृति ज़रूर उनकी कृतियों में प्रतिफ़लित होती हैं। एक दिन जाबाला का रथ आँधी में काट गया, रथ का गाडीवान की मृत्यु हो गयी, उसकी पत्नि और बच्चे अनाथ हो गये, कुछ समय बाद राजा जानश्रुति और जाबाला ने इस कथा सुनी, इससे जानश्रुति को मानसिक कष्ट का अनुभव हुआ, तब जाबाला ने कहा उस स्त्री और बच्चे को खोजने के लिए मै तैयार हूँ। यहाँ जाबाला मानवता का सच्चा प्रतिनिधि बनकर आती है। ‘मै आवेश में नहीं कह रहा हूँ तात, यह बुद्धि से कह रहा हूँ। आप स्वयं देख आए हैं कि लोग कितने दुखी हैं। फ़िर मेरा घर में बैठे रहना क्या उचित होगा। मेरा-अंतरतर आज चिल्ला कर कह रहा है कि शरीर, मन, प्राण सभी वैश्वानर साधन तभी सार्थक होंगे जब इन्हें दुखियों का दुख दूर करने में

लगा दिया जाएगा।'[11] मानवता की देखभाल करने वालों को देवता से भी ऊँचा दर्जा दिया जाता हैं। अनेक प्रसंगों के द्वारा आचार्य जी की मानवतावादी दृष्टि दृष्टिगोचर होती है। रोग और शोक से व्याकुल, पीडाओं से दाजी हुई मनुष्यता। इस मनुष्यता को वाणी देने के लिए वे प्राचीनता का आश्रय लेते हैं। आज के मानव दीन दुखियों के बारे में सोचते भी नहीं हैं। द्विवेदी जी मानवता का अच्छा पक्ष हमारे सम्मुख रख कर आज की संस्कृति में इसके समावेश करने की ज़रूरत प्रकट करते हैं। नवीन और पुरातन दोनों पूरक हैं। प्राचीनता के बीच वर्तमान का आरोपण कुशल कलात्मकता का परिणाम है।

कर्म की पवित्रता और सेवा को ईश्वर आस्था के समान मानने वाले सच्चे कर्मशील मनुष्य ही प्रत्येक युग में प्रेरक एवं मानवता का सच्चे सेवक बन सकते। उपन्यास में इस प्रकार का पात्र ज़रूर आता है। वे सब ज़रूर एक प्रेरक के रूप में पाठकों को प्रभावित करते हैं। करवट उपन्यास के बंसीधर उसकी पत्नी चंपकलता उसका बेटा देश्दीपक टण्डन उसकी पत्नी कौशल्या आदि पात्र 1852 से लेकर 1905 तक के समाजिक सास्कृतिक परिवेश की प्रतिनिधियाँ हैं।

मनुष्य के जीवन के लिए प्रेम आवश्यक मानते हैं और प्रेम के द्वारा सृष्टि का संचालन होता है। प्रेम भावना 'हाँ वत्स मनुष्य उस परम प्रेमी की दस्तकों की निरन्तर उपेक्षा किए जा रही है। वह परम प्रेमी तुम्हारे द्वार पर आकर खट्खटा जाता है। एक बार प्रयत्न करो तुम उसे अपने हृदय देश में बात कर बैठा सको, उसका स्वागत कर सको, उसके चरणों में अपने आप को न्यौछावर कर सको।'[12] द्विवेदी जी प्रेम के लिए आत्मदान को

---

[11] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.सं. 71

[12] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.सं. 157

आवश्यक मानते हैं और प्रेमी पर स्वयं को न्यौछावर करने की बात करते हैं। वे प्रेम भावना के लिए सर्वस्व दान या स्वयं को दलित द्राक्षा की भाँति निचोड्ना आवश्यक मानते हैं। द्विवेदी जी ससार संचालन के मोह में भी प्रेम के स्वरूप को देखते हैं। पितृ ऋण से मुक्त होने के लिए कुलीन जन विवाह किया करते हैं। विवाह के माध्यम से ही पुरुष और स्त्री पूर्णता प्राप्त करते हैं, संसार का सबसे बडा लक्ष्य प्रेम को प्राप्त करते हैं।

प्रेम जो है उसके बिना मानव के संबन्ध अपूर्ण बन जायेगा। काले कोस में सूरत सिंह और महेन्द्र कौर का प्रेम अच्छे धर्म पर आधारित प्रेम है। सूरत सिह के माँ और बाप को दोनों का रिश्ता मालूम है। महेन्द्र से शादी करने के लिए सूरत सिंह तैयार है। लेकिन प्रेम की परिणति विवाह में तब्दील नहीं हुई। पैशोरा सिंह की बेटी गोबिन्दी उस गाँव के डाकू विरसा सिंह से प्रेम करती है, उसको विरसा सिंह की आदत मालूम है फ़िर भी वह उससे प्रेम करती थी। वहाँ भी एक धर्मनिष्ठ प्रेम हम देखते हैं। उससे प्रेम करने के कारण हिन्दु मुस्लिम दंगे के समय करीमू नामक आदमी ने गोबिन्दी को उठाया। अन्त में विरसा सिंह उसका प्रेम को पहचानता है, करीमू के पास जाकर गोबिन्दी को वापस उसके माँ बाप के नज़दीक लाता है।

मानव को जीने की प्रेरणा देना एक प्रकार की सच्ची वृत्ति है। जीवन रहने से अनेक संभावनाएँ मूर्त हो उठती हैं। ऋतंबरा और रैक्व के वक्तव्य देखिए ‘सृष्टि चलती रहेगी। जो लोग अलग बैठकर इसे बन्द कर देने का सपना देखते हैं वे भोले हैं। जिजीविषा है तो जीवन रहेगा, जीवन रहेगा तो अनन्त संभावनाएँ भी रहेंगी। सब चलता रहेगा यही प्रकृति है। इसे सुनियन्त्रित रूप से चलाने का प्रयास शुभ है। वही संस्कृति है। प्रकृति को

सुनियन्त्रित रूप से चलाने का नाम ही संस्कृति है।'[13] एक दिन आँधी में मर गया सारथी की पत्नी से रैक्व की मुलाकात हुई। उसको पता नहीं वह स्त्री जाबाला का गाडीवान की पत्नी है। वह स्त्री और उनके बच्चे निराहार थे। यहाँ रैक्व ऋषि उनको जीने की प्रेरणा देकर कहा मेरी माँ बहुत अच्छी है, उसके पास जाने से बहुत सहायता मिलती रहेगी। यह सुनकर स्त्री माँ ऋतंबरा के पास आती है उससे उसकी सहायता भी मिलती रही।

परस्पर विश्वास के साथ हमारी जीवन प्रक्रिया सतत गतिशील बनती जा रही है। मानव एक दूसरे पर विश्वास करके जीवन बिता रेहे हैं। लेकिन इसके बीच में विश्वास के नम पर कुछ लोगों को धोखा भी मिलती है। इस उपन्यास में रैक्व ने कभी भी एक स्त्री को न देखा , सबसे पहले जाबाला में वह स्त्री रूप देखता है, आँधी के दिन एक रथ के नज़दीक कोई लेटा हुआ दिखाई दिया गया। उससे रैक्व ने अनेक प्रश्न पूछे। उसके आगे उसके कपडे उतारकर सूखा किया। उसको पता नही वह एक स्त्री है और ये सब एक विश्वास के बल बर किए गए हैं। जाबाला के वक्तव्य को देखिए 'तुम्हें इतनी भी जानकारी होनी ही चाहिए कि इस तरह से स्त्रियों का स्पर्श करता अनुचित है, पाप है परन्तु मै तुम्हारी सरलता पर मुग्ध हूँ'[14] जाबाला को रैक्व पर विश्वास उसकी इस वक्तव्य के द्वारा पता चलता है।

काले कोस में महेन्द्र कौर सूरत सिंह पर विश्वास करके चारगाँव आती है। परस्पर विश्वास के बल पर महेद्र वहाँ की सेवा के लिए तत्परता प्रकट करती है। सूरत सिंह को भी यह विश्वास है कि महेन्द्र अपना कर्म सही ढंग से करेगी। यह प्रसंग देखिए 'महेन्द्र शाम होते ही माँगट चली जाती और फ़िर सुबह आठ- नौ

---

[13] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ.सं. 88
[14] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसद द्विवेदी, पृ.सं. 31

बजे तक लौट आती थी। यह उसका नित्य का नियम था। किन्तु ऐसा भी होता था कि जब उसका प्यार- भरा मन विवश कर देता तब वह मूँह - अँधेरे ही घर से चल खडी होती। माँगट तथा झोंपडियों के बीच तीन या चार फ़र्लांग से अधिक अन्तर नहीं था। आज भी मनके हाथों विवश हो वह वहाँ आ पहूँची थी, क्योंकि दिन के समय वे एक क्षण के लिए भी इस प्रकार का साहस नहीं कर सकते थे, और फ़िर उनका इतना कडा विरोध किया जा रहा था कि उन्हें अपने आदर्श, सिद्धान्त और परस्पर विश्वास को नये सिरे से दृढ से दृढतर बनाने की आवश्यकता का अनुभव होता रहता था'।[15] महेन्द्र उतना भावुक नहीं नहीं है, फ़िर भी अपना मन कुछ विवश हो गया तो वह अवश्य ही सूरत का घर पर आती है। नहीं तो वह इस प्रकार नही कर सकती।

करवट उपन्यास में चित्रित समय अंग्रेज़ी शासन का समय था। इसमें भारतीय और अंग्रेज़ी पात्रों का विवरण है, यह ज़रूर उनकी संस्कृति उजागर करता है। बसीधर डण्टन की मुलाकात पार्किन्सन नामक अंग्रेज़ी के साथ हुई, तब वह जंगल की ओर घुड्सवार करता था। उस समय जंगल में शेर निकलने का समाचार सुन गया, और यह भी है कि जंगल में दो ऐसी जडियाँ पास - पास लगी हैं जिनमें एक को खा लेने से मनुष्य सिंह देह धारण कर लेता है और दूसरी को खाने से फ़िर मनुष्य हो जाता है। एक जोगी ने आकर इन जडियों की पहचान कर लिया, और कुछ लोगों ने इसका उपयोग भी किया। यह सुनकर पार्किन्सन को विश्वास नहीं आया, उसने बंसीधर से कहा आप हिन्दुस्तानी लोग ऐसी कथाओं पर जल्दी विश्वास कर लेते हैं। लेकिन मै तो जंगल पार करूँगा। बसीधर को इस कथा पर विश्वास नहीं था। हमेशा हम कहते है कि वातावरण के अनुसार मनुष्य के स्वभाव में भी

---

[15] काले कोस, बलवन्त सिंह, पृ. सं. 87

नवीनता आती है। लेकिन कुछ लोगों की मानसिकता में बदलाव नहीं आया है। इस तरह के अन्धविश्वासों के पीछे जाने वाले लोग अब भी ज़िन्दा हैं। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि अंग्रेज़ लोग इस तरह की कथा पर विश्वास नहीं करते थे।

बातें बताने की वजह से पार्किन्सन को मालूम हुआ कि बंसीधर फ़ारसी का पंडित है, इसलिए उसने कहा मै तुम्हारी मुलाकात मेरा मित्र नैन्सी से कराऊँगा। फ़ारसी की चिट्ठी पढवाने के लिए बसीधर को बुला रहा है, जो नैन्सी की एक आया कैसरबाग के महलों से लायी थी। उसमें कुछ रहस्य की बात ज़रूर है। किसी बेगम ने किसी बहुत बडी दरबारी साजिश पर रेजीडेन्ट के नाम खत लिखा है। नैन्सी का पति माल्कम को पार्किन्सन का धोखा मालूम हुआ, उसने उससे कहा तुम मेरी बीवी को मेरे खिलाफ़ खडा किया, तुमने और नैन्सी ने उमराव बेगम का खत मेरी आया से मंगवाया। उसे रेजीडेंट को पेश किया। दोनों में झगडा हुआ, दोनों पिस्तौल के ट्रिगर करीब - करीब साथ - साथ दबे। पार्किन्सन का निशाना अचूक माल्कम की छाती पर लगा लेकिन माल्कम का निशाना चूक गया। रजीउद्दौला ने उसी समय दूसरी गोली दाग दी। दोनों की मृत्यु हो गयी। अंग्रेज़ी लोगों की हीन आदतों ने दोनों की जान छीन ली। एक की धोखेबाजी, दूसरा सहन न कर सका। इससे वातावरण जो है बिल्कुल बदलकर हिंसा का वातावरण बन पति की गया। नैन्सी ने पति की मृत्यु के बाद बसीधर से संबन्ध स्थापित कर दिया। कुछ समय बाद नैन्सी ने भी उसका धोखा दिया। उसने दूसरी शादी की। बंसीधर को उन पर बडा विश्वास रहा था। लेकिन बंसीधर को उसकी आदत ने बडा आघात पहूँचाया।

करवट उपन्यास का नैन्सी का प्रथम पति की मृत्यु हो गयी, उसके बाद उसने दूसरी शादी की। बंसीधर नैन्सी को अपनी

प्रेमिका समझता था बाद में वह उसकी शादी के बारे में सुनने पर उसने पिन्काट के घर पहूँचकर कहा कि अब मुझे उस बद्सूरत हथिनी से मुक्ति मिल गयी। अब तुम शादी कर लो पिन्काट, तब पिन्काट ने कहा कि 'करना तो चाहता हूँ, पर तुम जानते हो कि मेरी पसन्द क्या है। मै किसी सीधी साधी ऐसी गरीब लडकी से विवाह करना चाहता हूँ जो भारतीय नारियों की तरह मेरी देखभाल कर सके'।[16] पिन्काट के इस वक्तव्य भारतीय नारी की पतिव्रता संस्कृति की ओर इशारा करता है।

धर्म - आध्यात्मिकता

धर्म के लिए एक शाश्वत अर्थ देना मुश्किल है। साधारण तौर पर इस शब्द का अर्थ है कर्म, कर्तव्य, सदाचार, आदत आदि। यह ज़िन्दगी का नीवादार तत्व है। इस दुनिया के सभी जगहों को एक साथ पिरोने का कार्य धार्मिक नियमों के अन्तर्गत आता है। इसका पौराणिक मत यह है कि धार्मिक बुद्धि के साथ कार्य किये गए मानव बाद में मोह और लोभों के वश में पडकर नीचे स्तर की ओर जा रहा था तब ब्रह्मा ने पुरुषार्थ की व्यवस्था का निर्णय किया। अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि साधारण धार्मिक नियम हैं। यह भारतीय संस्कृति का प्राण है। धर्म और संस्कृति का अत्यन्त घनिष्ठ सबन्ध है। संस्कृति समाज को सन्मार्ग द्वारा उन्नति की ओर अग्रसर करती है। मानव हृदय को पावन और मृदुल बनाने की क्षमता धर्म में है।

---

[16] करवट, अमृतलाल नागर, पृ.सं. 95

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'अनामदास का पोथा' में धर्म के लिए परिभाषाएँ मिलती हैं। यह परिभाषा देखिए ' सज्जनों का संग, सद्ग्रन्थों का अध्ययन, सत्य पर दृढ आस्था और दुखी जनों की सेवा परम धर्म है। द्विवेदी जी कहते है 'जानी हुई बात को ठीक ठीक आचरण में ले आना वस्तविक धर्म है। वैदिक अध्ययन उस समय चलते थे। विवेदी जी अध्यात्म को जनवादी पृष्ठभूमी देकर जनकल्याण साकार किया है। वैश्वानर उपासना में भी यही जनवादी ध्वनी है। माता ऋतंबरा रैक्व को वैश्वानर उपासना के बारे में कहती है ' तुम्हें पूर्ण रूप से शास्त्रज्ञ बनना है, उसके बाद सभी बातों की शास्त्रीय विधी से परीक्षा करने के बाद तुम्हारे अन्तर्यामी और वैश्वानर जैसा कहे वैसा हि करो। यह कभी मत भूलना कि ऐसा तप वस्तविक तप नहीं है जिसमें समस्त प्राणियों के सुख दुख से अलग रहकर केवल अपने आप की मुक्ति का ही सपना देख जाता है। सारा चराचर जगत उसी परम वैश्वानर का प्रत्यक्ष विग्रह है जिसका एक अंश तुम्हरे अन्तर में प्रकाशित हो रहा है। सत्य से च्युत न होना, धर्म से च्युत न होना, निखिल चराचर रूप परम वैश्वानर को न भूलना'।[17] यहाँ धर्म से च्युत न होने की स्थिति के बारे में बताया गया है। यह वाक्य इसकी ओर इशारा करता है कि आज भी हमें धर्म के अनुसार काम करना है। धर्म से जो च्युत हो जाता है वह सबसे बड पापी मान लेना उचित होगा। उपन्यास की कथा छान्दोग्य उपनिषद से लेने के कारण इसके विषयों के अन्तर्गत ही ब्रह्मचर्य, ब्रह्म से लेकर आत्मा, सृष्टी के मूल कारण, ब्रह्माण्ड के मूल तत्व आदि रहे हैं, इसलिए इस उपन्यास में आध्यात्मिकता नामक सास्कृतिक तत्व अपने आप ही समविष्ट है। उपन्यास औपनिषदिक अध्यात्म चर्चा के रूप में प्रस्तुत हुआ है। दूसरों के सुख दुख के लिए अपने अपको दलित द्राक्षा की भाँति निचोड कर दे देना सबसे बडी

---

[17] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. सं.152

तपस्या है। आत्मा और परमात्मा के चिन्तन अध्यात्म कहलाता है। लेखक ने इस अध्यात्म को ही जनसेवा का रूप देकर एक आदर्श की स्थापना की है। माता ऋतंबरा रैक्व से कहती है ' यह शरीर नाशवान है प्राण विनश्वर साधन मात्र है, मन भी नष्ट हो जाने वाला साधन है, अनश्वर है केवल आत्मा। पिंड में जो अत्मा है वही ब्रह्माण्ड व्यापी ब्रह्म है। यहाँ आत्मा और परमात्मा के बारे में बातें हो कर अध्यत्मिक चिन्ता की गरिमा को बढाया गया है। अश्वालायन रैक्व को मधुविद्या का सार कहते हुए आत्मा की परिभाषा बताता है ' आत्मा ही अमृत है आत्मा ही ब्रह्म है, आत्मा ही सब कुछ है। मानुष भाव में तेजोमय अमृतमय पुरुष है। वह समष्टि रूप में ब्रह्मांड की आत्मा है, भिन्न भिन्न व्यक्तियों में जो तेजोमय पुरुष है वह व्यष्टि पिण्ड की आत्मा है'।[18] आध्यत्मिकता को और महान बताते द्विवेदी जी कहते हैं 'दुखियों का दुख दूर करना ही सच्ची आध्यात्मिक साधना है, यही तप है, यही मोक्ष है'।[19] अध्यात्मिकता को बल देने वाला यह वाक्य लेखक की अपनी संस्कृति पर प्रकाश डालता है। क्यों कि लेखन में साहित्यकार की अपनी संस्कृति आने की संभावना है। यहाँ अध्यात्मिक साधना का अर्थ ठीक रूप से उन्होंने दिया है। दीन दुखियों की सेवा करना उनके दुख को दूर करना सचमुच ही अध्यत्मिक साधना है। यह छान्दोग्य उपनिषद से संबन्धित कथा होने के कारण उस समय की परिस्थिति में इस प्रकार की साधनाओं को अधिक बल दिया जाता है। हमारी संस्कृति की एक अच्छा पक्ष है यह। आज की जनता में कुछ लोग इस प्रकार के कर्म करते दिखाई देते हैं। इस उपन्यास में रैक्व को मामा के द्वारा दीन दुखियों की सेवा का पथ रैक्व और ऋतंबरा को मिल गया था। मामा दीन दुखियों की सेवा करने के लिए दिन रात अपने आपको न्योछावर कर दिया गया है। माता ऋतंबरा और रैक्व मामा

---

[18] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. सं. 147

[19] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. सं. 88

से मिलने के बाद जनता की सेवा के लिए निकलते है। रैक्व ने रोगियों का इलाज उसके घर में जाकर करता था। राजा जानश्रुति को सबसे पहले अपने प्रजा की दुख स्थिति के बारे में ज्ञान नही था। एक साधु सन्यासी से यह जानकारी मिल गयी कि उसके देश की प्रजा सब दुख स्थिति में है। यह जानने के बाद वह दीन दुखियों की सेवा के लिए निरत हो गया। अपना आचार्य औदुंबरायण की सहायता से वह जनता की सेवा करने लगा। इस प्रकार आध्यात्मिक साधना का पालन करने वाले पात्रों की सृष्टि करके लेखक अपनी अध्यात्मिक साधना का चित्रण किया गया।

करवट उपन्यास में आध्यत्मिकता के पालन करने वाले पात्र है बंसीधर, देशदीपक, उसकी पत्नी कौशल्या, उसकी माँ चंपकलता आदि। अपनी बिरादरी से बाहर की लड्की से शादी करने के कारण देशदीपक के परिवार को अपनी बिरादरी से बाहर कर दिया गया था। देश्दीपक डाक्टर बनने के बाद उन लोगों का इलाज उसके घर में जाकर किया गया था। इस तरह अपने धर्म का पालन वह ठीक प्रकार किया गया था। इस उपन्यास में प्लेग महामारी का चित्रण है। प्लेग के अवसर पर बंसीधर टंडन ने अपनी काकी की सेवा की थी। इसकेलिए उसको अपना प्राण देना पडा। वह अन्त में प्लेग की महामारी से मर गया था। इस प्रकार की कथा गिरिराज किशोर का उपन्यास पहला गिरमिटिया में है। दक्षिण आफ्रिका की कोयला खदानों के मज़दूरों में प्लेग फ़ैलने पर एक अंग्रेज़ नर्स द्वारा भरतीयों की देखभाल किया गया और अन्त में प्लेग से ही उसकी मृत्यु हो गयी। करवट उपन्यास में एक साधु सन्यासी जैसे आदमी ने प्लेग से मरे हुए आदमियों की लाश अपने कन्धे पर उठाकर जलाने के स्थान पर डाल दिया था। उसने अपने धर्म मानवीय ढंग से कर लिया। इसमे नवजागरण काल की कथा कही गयी है। स्वामी दयानन्द सरस्वती आर्य समाज की स्थापना करके मानव की सेवा के लिए निकल गया। उसी प्रकार

राजा राम मोहन राय ब्रह्म समाज की स्थापना करके समाज की सेवा के लिए निरत हो गया। उन्होंने सती प्रथा को तोड दिया था। समाज में बदलाव लाने के लिए उन्होंने अनवरत प्रयन्त किया था। इस प्रकार करवट उपन्यास में प्रत्यक्ष रूप से नहीं परोक्ष रूप से धर्म आध्यात्मिकता का आरोप लगाया जा सकता है।

विश्रामपुर का सन्त उपन्यास में नायिका सुन्दरी समाज की सेवा के लिए कार्य करती दिखाई देती है। धर्म आध्यत्मिकता का पालन करने वाली सुन्दरी इस उपन्यास का अत्यन्त सशक्त पात्र है। वह समाज सेवा को अपना चरम लक्ष्य मानती है। अलका सरावगी का शेष कादंबरी में रूबी गुप्ता ने सत्तर साल की आयु में समाज की शोषित स्त्रियों की अभिवृद्धी के लिए परामर्श नामक संस्था खोल दी।

पहला गिरमिटिया उपन्यास में गाधी जी दक्षिण आफ्रिका की जनता की उन्नति के लिए उनकी सेवा के लिए निरत हो गये। इस उपन्यास में वह मोहनदास करम चन्द गाधी जी है। वह गिरमिटिया होकर जब वहाँ जाते तब गोरे लोगों का शासन चल रहा था। गोरों के शासन से वहाँ के लोग पीडित थे। इसलिए उन्होंने वहाँ की जनता को उनके हकों के बारे में समझाया। सत्य पर आस्था रखकर उन्होंने अपने धर्म का पालन किया। वह सत्य से च्युत नही होता। उनके हकों को मिलने के लिए उन्होंने सत्र्याग्रह किया। इस उपन्यास में मात्र गाँधीजी जी ही नहीं उनके परिवार सब समाज सेवा के लिए निरत दिखाई देते हैं। कस्तूरबा बीमार होते हुए भी जेल जाती है। उनका पुत्र सत्याग्रह करता है।

इसप्रकार धर्म और आध्यात्मिकता का पालन करने वाले पात्रों का चित्रण करके प्रत्यक्ष रूप से नहीं परोक्ष रूप से इन उपन्यासों में धर्म और आध्यत्मिकता का आरोप लगया जा सकता

है। अनामदास का पोथा का वातावरण उपनिषद काल का है। इसलिए उस समय का समाज इन उपन्यासों से बिल्कुल अलग है। अनामदास का पोथा में प्रत्यक्ष रूप से धर्म और आध्यात्मिकता का विवरण है। लेकिन शेष उपन्यास के समाज अलग होने के कारण उनमें केवल आरोप ही लगाया जा सकता है। यह भी कहना समीचीन होगा कि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में धर्म और आध्यत्मिकता का पुट समकलीन उपन्यास में विद्यमान है। धर्म और आध्यात्मिकता की निरन्तरता हम इन उपन्यासो में दर्शाते हैं।

नव उपनिवेशवादी संस्कृति

भारत के इतिहास की प्रमुख घटना है उपनिवेशवाद। ब्रिटीश हमारे भारत को उसके बल पर उपनिवेश बनाकर रख देता था। तब से यह पिछडेपन के दबाव का कारण बन गया। बाद में उपनिवेशवादी संस्कृति हमारे समाज में फ़ैलने लगी। यह आधुनिकता से पूर्व का संक्रमण काल था। बाद में उसका आधुनिक रूप हमारे समाज में देखने को मिलता था। आज यह नवउपनिवेशवाद के नाम से जाना जाता है।

बाज़ार हमें मुक्त करने का सबसे बडा औज़ार तंत्र है। बाज़ार हमें बहुत ही चीज़ों से मुक्त करता है। वह हमें चुनाव की सुविधा देता है। वह भौगोलिक सीमाओं के बन्धन को नहीं मानता। दुनिया की सभी संस्कृतियाँ, भाषाएँ आपसी मिलावट से ही उत्पन्न हुईं। लेकिन बाज़ार की अपनी एक संस्कृति होती है। वह अपने उत्पाद बेचने के लिए दूर दूर तक जाता है। इस के लिए सभी प्रतिरोध को तोडता है। यानी प्रतिरोध हीन व्यक्ति ही बज़ार का

उपभोक्ता है। उसे ऐसे उपभोक्ता चाहिए जो अपना कोई विचार या प्रतिरोध दर्ज न करा सके। उपभोक्ताओं की मानसिकता, ज़रूरतें अपने अनुकूल बनाने के लिए आवश्यक है कि बज़ार के अनुरूप एक सरकार हो। वह सरकारों, अफ़सरों, नेताओं को भी खरीदता है। बाज़ार सिर्फ़ खरीदने बेचने की जगह न होकर संस्कृति साम्राज्य, राष्ट्र बनाने की व्यवस्था भी है, जो व्यक्ति को मात्र उपभोक्ता में बदल कर रख देता है। बाज़ार की एक पूरी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था है। बाज़ार भूमण्डलीकरण, उदारीकरण, निजीकरण के माध्यम से दुनिया भर में स्वयं को संगठित कर रहा है।

भूमडलीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया पिछले दो तीन दशकों से दुनिया के तमाम विकासशील देशों मे अलग अलग पैमानों पर कार्यान्वित की जा रही है। भूमण्डलीकरण पूँजीवादी व्यवस्था का अत्यन्त आधुनिक एवं विस्तृत रूप है। इस व्यवस्था की नीतियाँ सिर्फ़ आर्थिक क्षेत्र में सीमित नहीं है बल्कि सामाजिक एवं सास्कृतिक क्षेत्रों पर भी गहरा प्रभाव डालते हुए उन्हें गलत दिशा की ओर ले जा रही है। दरअसल यह व्यवस्था अमेरिका के नेतृत्व में विकसित देशों को विकासशील एवं गरीब देशों को लूटने का कारगर ज़रिए है। ये अर्थिक उदारीकरण प्रक्रिया को लागू करने के लिए गरीब देशों की सरकारों पर दबाव डाल रहे हैं। विश्व बैंक, डब्ल्यू. टी. ओ और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हितों की रक्षा करने वाले कई अन्य अमेरिकी तंत्र इन आर्थिक सुधारों के प्रमुख पैरवीकार है। उदारीकरण के इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत सीमा शुल्कों को क्रमशः घटाने, आर्थिक विकास के लिए दी जाने वाली काटौतियाँ या 'सब्सीडीस' को रद्द करने एवं सरकारी क्षेत्र के संस्थानों को निजी क्षेत्र के मालिकों के नाम स्थानान्तरित करने के व्यापक प्रावधान है। विश्व बैंक, अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष एवं विश्व व्यपार संगठन साम्राज्यवादी देशों के हिकमतों

के साझेदार हैं और इनकी नीतियाँ व शर्तें उनके अनुकूल है। ये सिर्फ़ गरीब देशों पर दबाव ही नहीं डालते हैं बल्कि उनकी नीतियाँ और क्रियाओं पर पाबन्दी भी लगा देते है। मसलन जब भारत ने पोखरन में अणु विस्फ़ोट किया था तब अमेरिका ने आर्थिक प्रतिबंध लगा दिया था। वैश्वीकरण या कि विश्व का व्यपारीकरण एक हद तक इस दुनिया की विपन्न एवं विकासशील जनसंख्या को बहुराष्ट्रीय व्यापारिक शक्तियों का मोहताज बनाता जा रहा है। यह भेलि अवधरणा भी अब गलत साबित हो रही है कि भूमण्डलीकरण का सरोकार सिर्फ़ साधन संपंन्नशहरी तबके तक सीमित है, और ग्रामीण इलाकों के लोग इसके असर से अछूते रह जायेंगे। वैश्वीकरण का सबसे अधिक प्रभाव पडनेवाला विकासशील देशों में लोग आज भी दो जून रोटी के लिए दुर्दान्त संघर्ष करने के लिए मजबूर है।

भारत एक किसानी देश है,। किसानी क्षेत्र ज़्यादात्तर गाँव में है। गाँव के लोग अनपढ है। उन लोगों का शोषण करना आसान कार्य है। शहर के लोगों और गाँव के लोगों की तुलना करते समय यह देखा जा सकता है कि गाँव के लोग प्रतिक्रिया विहीन है। उदाहरण के लिए केरल में पालकाड जिले के प्लाचीमेडा गाँव में कोकोकोला कंपनी की स्थापना हुई। अमेरिका ने अपने 'वेस्ट' चीज़ को बिकने के लिए एक देश को चुन लिया, वह है केरल का प्लाचीमेडा। विकसित देश भारत को ही नहीं समस्त गरीब देशों को अपने वश में लाने के लिए तैयार है। अमेरिका भाड के खाल में भेडिया के रूप में हमारे सामने मौजूद है। आम जनता भूमण्डलीकरण का शिकार बनती आ रही है। हमारे कुछ नेता लोग इन लोगों के वश में हैं। वे लोग स्वार्थता के नाम कुछ कर रहे हैं। इसी वजह से भूमण्डलीकरण का सबसे बडा असर गाँव में पडता है। लोग स्वार्थता के नाम कुछ भी करने के लिए तैयार है, उसकी परिणति के बारे में वे लोग सोचते भी

नहीं हैं। मेधा पडकर जैसे लोग इसके विरुद्ध आवाज़ उठाती थी। कोकोकोला कंपनी की स्थापना के बाद वहाँ के कुओं में पानी नहीं है। पानि के अभाव से गाँव की जनता पीडित हो गये। भूगर्भ के पानी सब कोकोकोला बनाने के लिए इस्तेमाल किया गया। इसलिए पानी के बिना पेड पौधे सब नष्ट होते जा रहे हैं। कोकोकोला में ज़्यादात्तर ज़हर है। कोकोकोला पीने के बाद बीस गिलास पानी की ज़रूरत है। इसमें निहित रासांश को डैल्यूट करने के लिए बीस गिलास पानी पीना चाहिए। भारत के लोग कोकोकोला पीने के बाद बीमार हो जाते हैं। लेकिन अमेरिका जैसे राष्ट्रों में यह पीने के बाद की बीमारी का इलाज करने के लिए हैटेक सुविधा है। लेकिन भारत जैसे गरीब देशों में इसकेलिए कोई सुविधा नहीं है। लोग मर जाते है इसके अलावा कोई चारा तो नहीं है।

भूमण्डलीकरण प्रक्रिया का अनिवार्य एवं अभिन्न हिस्सा है मुक्त व्यापार व्यवस्था। मुक्त व्यापार व्यवस्था में, माँग के अनुसार उत्पादों का पुराना बाज़ार तंत्र बुनियादी तौर पर बदल गया है। अब निर्माता विज्ञापन के सभी नवीन माध्यमों के ज़रिए समाज में ऐसी मनसिकता पैदा कर देते है कि लोग ज़रूरी चीज़ें माँगने के बजाय ऐसी चीज़ें खरीदने के लिए मज़बूर हो जाते हैं और जिनका हसिल होने पर खरीदार को लगता है कि उसकी शान शौकत बढ गयी है। मसलन हमारे पैरों को सुरक्षित रखने के लिए सौ या दो सौ की कीमत का जूता चाहिए। लेकिन हम जूतों के लिए अधिक पैसा खर्च करते हैं। शान, शौकत, हैसीकत व रौब का आधार कीमती चीज़ें हैं। यह छोटे बडे की भिन्नता का कारण बन जाता है। सचमुच आदमी की पहचान इन चीज़ों से होती है। अमेरिका जैसे देशों की आख यह देखता है कि अपनी चीज़ों को बिकने के लिए एक मार्केट या बाज़ार। भारत जैसे गरीब देश इसका शिकार बन गया है। विकसित देश अपनी चीज़ों को, जो सस्ते दाम का

होगा, बिकने के लिए उपयुक्त बनता है। इस तरह के सस्ते दाम की वस्तुओं खरीदने के लिए हमारे देश में कई लोग है। बज़ारीकरण का बरायनाम ज्ञान ही लोगों को है। इस तरह इन्सान को अनेक स्तर का शिकार बनना पडेगा। इन्सनियत का मूल्य आज मिटता जा रहा है। यदि मानवीय मूल्य है तो अमेरिका व्यापार आँख लेकर हमारे नज़दीक नहीं पहूँचेगा।

1600 के बाद ब्रिटीश राज्य भारत में अपना अधिकार स्थापित किया। वाणिज्य के नाम पर वे लोग यहाँ आए थे। उनका लक्ष्य भारत को लूटना था। उस समय कई प्रकार का शोषण होता रहा था। उसका पहला आगमन व्यापार के नाम पर है। बाद मे आक्रमण करके अपना राज स्थापित किया था। आज अमरीका का आगमन मित्रता के नाम पर है। लेकिन यह देखकर ऐसा लगता है कि इस मित्रता के पीछे गूढ लक्ष्य है। यह कहना जायज़ है कि उनका आगमन के पीछे बाज़ारी आँख है। पुराने ज़माने में ब्रिटीश शासकों का लक्ष्य भारत पर आक्रमण करके उन्हें अपने अधीन लाना है और आज उसका विकसित रूप हम देख सकते है।

आज हमरा घर चीज़ों से भर गया है, आदमी का मूल्य घट गया है। चीज़ें बढ गयी है। एक दिन घर चीज़ों में तब्दील हो जाएगा। जब चीज़ें सब चीज़ें से मिलेगी तब आदमी नदारद हो जायेगा शायद भारत सरकार को मानव की इस अवनति का दिग्दर्शन पहले ही था। इसलिए ही सन 1994 में गाट समझौते में हस्ताक्षर लगाने के एक दशक के पहले ही शिक्षा एवं संस्कृति के मंत्रालय का नाम बदलकर मानव ससाधन मत्रालय कर दिया गया था। नाम का यह परिवर्तन बडी निरीह घटना लगता है, लेकिन एकएक आदमी कि हैसियत घट गयी थी। बाज़ारवाद के मूल में पूँजीवादी साम्राज्यवादियों की संगठित साजिश है यानी बज़ारवाद

पूँजीवाद का ही फ़लितार्थ है। उपनिवेशवादी गुलामी की ओर ले जाने की मुहिम है।

यह कहना समीचीन होगा कि आजकल भूमण्डलीकरण के नाम पर पूँजीवादी साम्राज्यवादी जडे जमायी रही है। कमलेश्वर कितने पाकिस्तान में पूँजीवादी सस्कृति के स्वरूप को इस प्रकार व्यक्त करते है 'कोई भी संस्कृति पाकिस्तानों के निर्माण के लिए जगह नहीं देती। संस्कृति अनुदार नही, उदार होती है वह मरण का उत्सव नहीं मनाती, वह जीवन के उत्सव की अनवरत श्रृंखला है..... इसी सामासिक सास्कृतिक की ज़रूरत हमें है क्यों कि वह जीवन का सम्मान करती है'।[20] यहाँ हमारी संस्कृति की गरिमा व्यक्त है। उसमें पूँजीवाद का मिलन होने पर वह कला संस्कृति हो गया। सच्ची संस्कृति उदार है अनुदार नहीं। ब्रिटीशों के शासन के बाद हमारी संस्कृति तो विकृत हो गया।

'कितने पाकिस्तान' में भूमण्डलीकरण के प्रसग को एक ओर अर्थवान बना देनेवाला वाक्य है 'हमारी नागरिकता अब अन्तर्राष्ट्रीय हो गई है ये देश अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोश और विश्व बैंक से भीख माँगते है'।[21] आज दुनिया के अनेक देश ऋण की जंजीरों में पडकर बुरी साँस ले रहा है। यहाँ पूँजीवाद का पुट स्पष्ट है। भूमण्डलीकरण की भयानक स्थिति देखकर यह कहना समीचीन होगा कि यह एक लगातार प्रक्रिया होगी। आज नवउपनिवेशवाद से पूरी दुनिया का लूट हो रहा है। बहुसंख्यक लोगों को भीखमंगे बनाने वाली पूँजीवादी संस्कृति पर वार करते हुए कमलेश्वर कबीर के ज़रिए माउटबेटन से कहते है 'हम भीखमंगों की नस्ल तुम लुटेरों ने पैदा किया है। हम जैसे भिखारियों की नस्ल तुम्हारे इंडस्ट्रियल रेवल्यूशन से पहले दुनिया

[20] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ.सं. 289
[21] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ.सं. 280

के किसी देश में मौजूद नहीं थी। अमीर और गरीब पहले भी थे भिखारियों का जन्म उपनिवेशी बन्दोबस्त के साथ हुआ...... जब आर्थिक और जीवनगत न्याय के मूल्यों का अन्त और मुनाफ़ा केन्द्रित अन्ध शोषण और स्पर्धा का जन्म हुआ...... नहीं तो इससे पहले गरीब तो थे पर भिखारी नहीं थे। विश्व का न्ययगत आर्थिक सतुलन तुम साम्राज्यवादियों, उपनिवेशवादियोंने खंडित किया है...... नहीं तो मुझे जैसे लाचार आदमी भारत और पाकिस्तान में भीख माँगने के लिए मज़बूर नही होता, जो एक दूसरे के खिलाफ़ हुआ माँगते हैं। तुम उपनिवेशवादियों ने हमारी दुआएँ भी दोगली बना दी ‘।[22] ब्रिटिश शासन के समय वे लोग हमारी अखंडता पर प्रश्न चिह्न लगाया अर्थात एकता के साथ रहने वाले लोगों के बीच स्पर्धा को बढावा दी गयी। इस प्रकार सम्स्कृति को उन्होने विकृत कर दिया।

बडी सभ्यताओं को निस्तेज करने का सबसे आसान तरीका है उसे अपनी संस्कृति से उखाडना। लू शुन के ज़रिए वर्तमान चीन में भूमण्डलीकरण के उपरान्त की सास्कृतिक तस्वीर खींचते हुए कमलेश्वर लिखते है ‘हमारी जाति को अकर्मण्य बनाकर वे परछाइयाँ इन लुटेरों ने छीन ली है...... हमें इन्होने संस्कृति विहीन करना चाहा है, संस्कृति ही पूर्वजों की जीवित परछाइयों का संसार है। उनकी उपस्थिति हमेशा परछाई की तरह मनुष्य के साथ रहती है.... बडी सभ्यताओं को निस्तेज करने का यही तरीका इन विदेशी लुटेरों ने निकाला है..... यह पहले की पूर्वजों की परछाइयाँ छिनते है। इस वाक्य से यह विदित होता है कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद ने हमारे हकों को छीन लिया है। हमारे पूर्वजों की परछाइयाँ सब छीन लिया था। इससे हमारी परपरा का हनन उन लोगों ने की। लेकिन सबसे बडी त्रासदी यह है कि इस

---

[22] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ.सं. 283

अपसंस्कृति को फ़ैलाने वाले घोषणा करता है कि वे दुनिया को सभ्य बना रहे है। अधिकांश लोग इस संस्कृति को सही सस्कृति मानते हैं। लूशुन कहते है सारी उपनिवेशवादी साम्राज्यवादी सत्ताएँ खोखले नगाडों पर इन्सानी खाल के पल्ले मढ कर नगाडचियों की तरह घोषणा कर रही है कि उन्होने असभ्य दुनिया को सभ्य बनाया है।

अदीबे आलिया अर्दली महमूद से इस प्रकार कहते है ' सौदागरों की जिस जमात ने अपना साम्राज्य स्थापित करके हिन्दुस्तान को जकड लिया है। वे ही उपनिवेशवादी फ़िरगी अब चीन में बाज़ार बनने के रास्ते तलाश रहे हैं...... बाज़ारों के लिए ही बनते है साम्राज्य। सम्राज्यों की नाभी बाज़ार से जुडी है। सम्राज्यों के रूप बदल सकते है - वे प्रजातांत्रिक आर्थिक साम्राज्य के रूप ले सकते है परन्तु इन पूँजीवादी प्रजातंत्रों के जीने के लिए मुनाफ़े के बाज़ारों की ज़रूरत है। बज़ार ! बाज़ार ! बाज़ार !!! यही है औद्योगिक क्रान्ति का सक्त जीवित रहने की मज़बूरी भर सिद्धान्त। यही है पूँजीवाद इसी का दूसरा नाम है साम्राज्यवाद , तीसरा नाम है उपनिवेशवाद। और आज दस्तक देती नई सदी में इसका कोई अन्य नाम भी हो सकता है'।[23] समकालीन इतिहासबोध की स्पष्ट झलक इस वाक्य के द्वारा मिलती है। कमलेश्वर ने यद्यपि यहाँ नवउपनिवेशवाद शब्द का प्रयोग नहीं किया फ़िर भी हमें किसी भी नाम से उसे पुकारने की पूरी छूट देते है।

बाज़ारवादी संस्कृति की अमानवीयता को हमारी वर्तमान लहुलुहान वास्तविकताओं के सामने रखकर कमलेश्वर इस तरह प्रकट करते हैं कि 'यातना, विषमता और अवसाद के बीच यह देते

---

[23] कितने पकिस्तान, कमलेश्वर, पृ.सं. 291

है कृत्रिम उत्सव और उल्लास। सडती लाशों के अंबर में छिडकते है क्रिश्चियन डियोर, शैनल और अमुआगे क्रिस्टल के इत्र। कटी हुई लहुलुहान गर्दनों में ये पहनते है लानविन की नेकटाइयाँ और मेजोरिका ने नेकलेस। टूटी हुई कलाइयों में ये बाँधते है राडो और रेमण्ड्वील की घडियाँ और चकनाचूर उँगलियों को ये पकडाते है मोंटब्लैंक और वाटमैंन के कलम'।[24] यह अपसंस्कृति हमसे अपनी अस्मिता और स्वत्व को छीन लेती है। इसलिए हमें क्या खाना है, क्या पीना है, क्या पहनना है, कब सोना है आदि बातों का निर्णय हम नहीं कर पाते हैं। हम उनके इशारे पर नाचनेवाली कठपुतली बन जाते है।

काशीनाथ सिंह का 'काशी का अस्सी ' उपन्यास बनारस का शोक गीत है। बनारस में बाज़ारवाद का चेहरा बहुत पहले से ही मौजूद है। इस उपन्यास का एक प्रसग देखिए 'अब यही देखो ! आप लंका से हर शाम आते हो, भाँग खाते हो, चाय पीते हो, गपाष्टक करते हो और लौट जाते हो। मगन रहते हो कि वाह रे हम ! लिंग पर ग्लोब उठाकर तान दिया हमने और दुनिया देखती रह गई ! कभी जानने की कोशिश की कि क्या हो रहा है यहाँ? पता है आपको कि मुहल्ले में कितने मकान खरीदे है इन्होंने लोकल आदमियों के नाम से? मकान लोकल आदमी के नाम और रह ये रहे हैं ! कितने ऎसे मकान हैं जिनकी मरम्म्त के लिए इन्होंने पैसे लगाए हैं खुद रहने के लिए। फ़र्जी शादियाँ की हैं वीज़ा के एक्स्टेंशन के लिए। बीसों सइबर केफ़े खुलवाए हैं घरों में अपने जनसंपर्क और सुविधाओं के लिए। इसे ही समझते है' ग्लोबलाइज़ेशन। उन्हें जितनी बार आना - जाना हो - आएँ - जाएँ, जब तक रहना हो, तब तक रहें, लेकिन हम? है हमारी हैसियत एक बार भी अमरीका जाने की? हमारा घर उनका घर है

---

[24] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ.सं. 291

लेकिन उनका घर उन्हीं का घर है, हमारा - तुम्हारा नहीं..... अभी क्या देख रहे हो, थोडे दिन बाद ही ये बोलेंगे - अस्सी जर्जर हो रहा है, ढह रहा है, मर रहा है, हमें दे दो तो नया कर दे - एकदम चमाचम ! कल बनारस को चमकाएँगे, परसों दिल्ली को ठीक करेंगे, नरसों पूरे देश को ही गोद ले लेंगे और झुलाएँगे - खेलाएँगे अपनी गोदी में ! यह बाद में पता चलेगा कि हम किसकी गोद में है - जसोदा मइया की कि पूतना की?' ।[25] यहाँ भविष्य के प्रति आशंका विद्यमान है। सचमुच हम पूतना के गोद में है। मिथक का संकेत इसलिए दिया गया कि अतीत में इसका संकेत व्यक्त करने के लिए है। एक और प्रसंग बाज़ार संस्कृति की ओर इशारा करता है 'हम कहे के लिए है? इस पूरे मामले का संबन्ध बज़ार से है। तुम्हारा काम है सरकार देखना, हमारा काम है बाज़ार देखना। हम अपना काम देखते हैं, आप अपना काम देखो। हम तो बाज़ार की एक ही मतलब जानते हैं सरकार, बाज़ार वह है जो तुम्हारे दरवाजे पर है, पोर्टिको मे है, ड्राइंगरूम में है, बेडरूम में है, अलमारी में है, किचन में है, टायलट में है और यही क्यों तुम्हारे बदन पर है, सिर के बालों से लेकर पैरों के नखून तक है' ।[26] आज मानव के बीच विभाजित संस्कृति विद्यमान है। सारी चीज़ एक एक को बाँटा हुआ है। यह उच्च नीच के भेदभाव का कारण बन जाता है। एक के घर में दूसरे के घर की तरह चीज़ नहीं है तो वह भेदभाव का कारण बन जाता है। पहले वालों को दुसरे वालों की चीज़ मिलते वक्त तक नीन्द नही आ जायेगा, उसके खाना उसे अच्छा नहीं लगेगा।

बाज़ार चीज़ों से भरा पडा है। काशी का अस्सी का यह प्रसंग देखिए ' हलो ! हाय ! वाव ! मेरी बेटियो, जियो, और लाखों बरस जियो। अगर पढते पढते ऊब गई हो, स्टेनो, प्राइवेट

---

[25] काशी का अस्सी , काशीनाथ सिंह, पृ.सं. 113

[26] काशी का अस्सी, कशीनाथ सिंह, पृ.सं. 142

सेक्रेटरी, रिसेप्शनिस्ट, प्रोबेशन अफ़सर नहीं बनना चाहती, डाक्टर, इंजीनियर, एयर होस्टेस बनना अपने वश में नहीं है तो निराश न हो , शहनाज़ हुसैन से संपर्क करो और अपने नगर में - मुहल्ले में ब्यूटी पार्लर खोल लो। या खुद को ज़रा गौर स्व देखो - बंबई, दिल्ली, बग्लौर, हैदराबाद में पैदा नहीं हुई है तो क्या हुआ? किस ऐश्वर्या राय, सुष्मिता सेन या लारा दत्ता से कम हो तुम ? न माडलिंग की दुनिया कही गई है, न फ़ैशन शो की कोई कमी है, न सीरियलों का टोटा है, न म्यूज़िकल आल्बम की किल्लत है। टी.वी. के चैनलों पच्चासों है - अगर वीजे नहीं है तो सबको खूबसूरत 'फ़िगर 'और 'क्यूट 'चेहरे चाहिए। गौर से देखो अपनी फ़िगर। किससे कम स्मार्ट और क्यूट हो? कोई कमी रह गई है तो उसे पूरा करने के सारे सामान भरे पडे है बाज़ार में। आज कुछ भी बनने को सावधानी की ज़रूरत नहीं है,। बज़ार से चीज़ें खरीदकर उसके बल से कृत्रिम सौन्दर्य को अपनाकर लोग विजय हासिल करते हैं। इसकेलिए सारी चीज़ें बाज़ार में उपलब्ध हैं। ज़्यादात्तर खर्च करके उन चीज़ों को लेना आज का कार्य हो गया है।

एक और वाक्य को देखिए 'यह भी वक्त है जब बीवियाँ झुँझलाए और मुर्दा चेहरों के साथ किचेन में घुसती है चाय तैयार करने के लिए और अपनी किस्मत का रोना शुरू करती है। चाय और चूल्हा, बिस्तर और बच्चे - क्या ज़िन्दगी है अपनी भी ? इनके सिवा कुछ नहीं है क्या? है क्यों नहीं - बोलो उनसे, ज़रा बाहर तो नज़र डालो। 'फ़ास्ट फ़ुड' क्यों बिक रहे है? रेस्त्राँ और होटल किसलिए है? किनके लिए है? किचेन की ही मोनोटनी को तोडने के लिए न? जायका ही बदलने के लिए न? मँगा लो जो चाहो। कहीं जाने की भी झझंट नहीं। और यह भी बताओ कि होंठ, दाँत, नाक, कान, आँख, बरौनी, भौं, माथा, चमडी, बाल - इन सबके लिए एक नहीं, बीस तरह की - बीस रंग की - बीस

साइज की, सस्ती - से - सस्ती - महँगी से - महँगी चीज़ों से पाट दिया है बाज़ार'।[27] यह हो गयी है हमारी संस्कृति। बिलकुल नीचे स्तर की ओर। बाज़ार में सब चीज़ें उपलब्ध हैं। यहाँ इसप्रकार अपसंस्कृति का निर्माण हो रहा है।

आखिरी कलाम उपन्यास में आचार्य तत्सत पाण्डे का पोता परंपरागत ढाँचे को तोडकर बाज़ार की ओर जाने लगा। उसका दादा आचार्य है, उसका पिता माधवानन्द भी अध्यापक है लेकिन उन्होने उनका रास्ता न अपना लिया था। तत्सत पाण्डे जीवित रहते ही उसका परिवार बाज़ार में तब्दील हो गया। उनका पोता रविकान्त ने पढना छोडकर दूकान खोल दिया। घर के भीतर समृद्ध पुस्तकालय है लेकिन छज्जे पर स्पेयर पार्टस मोबिल और टायर। उसका विद्या व्यसनी परिवार एक आदमी के कारण बाज़ारू बन गया।

' कलिकथा वाया बाइपास के अन्त में किशोर बाबू के बेटे ने उसको एक फ़ोर्ड गाडी खरीदकर दे दी। उस समय भारत स्वतत्रता की पच्चासवीं वर्षगांठ मना रहा था। इस प्रसंग को देखिए 'किशोर बाबू ने देखा कि मकान के अहाते में एक चमकती हुई हरे रंग की फ़ोर्ड गाडी खडी है। उनका सिर घूम गया। उन्होने पिछले महीने अखबार में पढा था कि फ़ोर्ड कंपनी अज़ादी की पच्चासवीं वर्षगाठ पर झंडे के तीन रंगों में चार सौ गाडियाँ बेचेगी। उनमें तरह - तरह की नई फ़िटिंग्स होगी। और दामों में भरी रियायत होगी। तभी उन्होंने सोचा था कि लगता है - फ़ोर्ड कंपनी की गाडी मार्केट में बिक नहीं रही है। बहुत कम्पिटीशन है तरह - तरह की गडियों के बीच इसलिए ये सब तरकीबें हैं'।[28] तत्कालीन संस्कृति मानव को इस प्रकार का कार्य करने के लिए

---

[27] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ.सं. 144

[28] कलिकथा वाया बाइपास, अलका सरावगी, पृ.सं. 197

प्रेरित करती है। बाज़ार तंत्र की आँख सब कहीं है। यह मानव को ऋण की जंजीरों में डाल देता है। किशोर बाबू के बेटे के पास कार खरीदने के लिए पैसा नही है। यह तो किशोर बाबू को मालूम है। बेटा सौ प्रतिशत फ़ाइनेन्स में गाडी खरीदता था। बस किस्तों में रकम चुका देना है। इस प्रकार बाज़ार मानव को आकर्षित करने के लिए किसी भी कार्य करने के लिए तैयार है। दूसरी गाडियों के अलावा अपनी गाडी ज़्यादात्तर बिकना उनका लक्ष्य है। बज़ार तंत्र के हाथ में फ़ँसनेवाले है हमारे समाज के ज़्यादात्तर लोग। स्वार्थता की पूर्ती करते समय लोगों को दूसरी ओर से पैसा ज़्यादा देना पडेगा।

'निन्यानवे 'उपन्यास में मुखर्जी फ़ार्मस्यूटिकल्स की अंग्रेज़ी कंपनी बुल एंड बेल के सहयोग की बात चल रही थी। बुल एंड बेल का भारत में कोई ठोस विपणन - प्रबन्ध नहीं था। सहयोग का शुभारंभ बुल एंड बेल की दवाइयों का मुखर्जी फ़र्मस्यूटिकल्स द्वारा विक्रय से होता था। अतः दोनों कपनियों को भारत में एक हो जाना था और मिस्टर ए. मुखर्जी को उस भारतीय कंपनी को सर्वेसर्वा अध्यक्ष होना था। इस अभियान का आरम्भ बुन्देलखंड में बुल एंड बेल की मलेरिया की दोनों दवाइओं का इन गर्मियों में व्यापक विक्रय से होना निश्चित हुआ था। बलराम दयाल इस सिलसिले में झांसी भेजा गया था। उसे शहर में नाना प्रकार के स्त्रोतों से पता लगा था कि आगामी ग्रीष्म ऋतु में झाँसी में पानी की उपलब्धता की क्या स्थिति होगी और मलेरिया के प्रकोप का क्या अकार्त होगा जो बुल एंड बेल की अधिकतम दवाओं को खपा सके। बल्लो के अब तक का अनुभव से जान गया था कि कोई दवा अचूक नही होती। फ़िर ये दवाएँ बुन्देलखण्ड की जलवायु की परीक्षा के आधार पर नहीं बनी थी। इनमें घपले की गुंजाइश थी। यह एक संभवना थी कि लोग इस बार दवा खाकर भी उसी तरह मरते जैसे पिछली बार बिना दवा के मरे थे। मिस्टर मुखर्जी का

मूल उद्देश्य अंग्रेज़ी दवाएँ बेचकर पैसे कमानें थे। झाँसी के लोग जिए या मरे उसको उससे कोई मतलब नहीं था। यहाँ मुखर्जी अमानवीयता की प्रतिनिधि है। लोग मरे या जिये इससे उसको कोई चिन्ता नहीं। अपनी स्वार्थता की पूर्ती के लिए वह कुछ भी करने के लिए तैयार है।

एक दिन बल्लो बाबा की साईकिल लेकर मानिक चौक में गया। 'मानिक चौक में दोनों ओर जाते ताँगे थे, साईकिलें थीं और खुलते दूकानें थीं। खुलते बाज़ार में लोग खिलौनों की तरह लग रहे थे। एक ओर दूकानों में धूप थी, दूसरी ओर छाया थी। सूर्य कहीं आकाश में ज़रूर था। बाज़ार में नज़र नहीं आता था।' आज सूरज के अलावा सब चीज़ें बज़ार में उपलब्ध हैं। इसकी ओर यह वाक्य इशारा करता है।

एक दिन बल्लो ने एक सपना देखा। सपने में एक किला था। पहले किले का रंग काला था बाद में वह गुलाबी रंग हो गया। बल्लो की समझ में यह नहीं आया कि क्यों किले का रंग गुलाब का रंग हो गया। उसने हरि से पूछा, हरि ने हँसकर कहा 'दादा जब कोई चीज़ बेचते हैं तो उसे धो - पोंछ देते हैं, चमका देते हैं, उस पर रंग - रोगन कर देते हैं ताकि दाम अच्छे मिलें। बल्लो चौंका और कहा क्या उस किला बेचने चाहते हो? यह किला हमारी आत्मा है, यह शहर रानी लक्ष्मी बाई के किले के बिना नहीं जी सकता। यह किला यहाँ से चला जायेगा। हरि ने उत्तर दिया कि खरीदने वालों की मर्जी के अनुसार यह तय होगा। हरि ने कहा ये कोग दम नहीं दे पाएँगे। तो बल्लो ने खुश हो कर कहा, तो किला नहीं बेचोगे न ? हरि मुस्कराया, 'नहीं, दादा, अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में सौदा पट जायेगा। पश्चिम के कुछ तोप दौलतिए इस व्यवसाय में माहिर हैं। उनके पास अकूत पैसा है और अनहोनी बुद्धि। वे नेपोलियन की कमीज़ और हिटलर की पैंट

लाखों में खरीदकर करोडों में बेच सकते हैं। वे सौदे को पकाना जानते हैं जैसे किला स्कोच ह्विस्की की बोतल हो'।[29] लोग आज बाज़ार तंत्र से परिचित हो कर लाभ मिलने के लिए निन्दनीय कार्य करने के लिए तैयार हैं। यहाँ किले को तोड मरोडकर लाभ मिलने का साधन के रूप में परिवर्तित किया जाता है। यहाँ धोखे का स्वर सुनाई पडता है।

नासिरा शर्मा के 'ज़िन्दा मुहावरे' का निज़ाम जो है,भारत पाक विभाजन के बाद भारत छोडकर पाकिस्तान चला गया। पहले वह भूख से पीडित हो कर मज़दूरी करने लगी, बाद में वह कपडों की दूकानों का मालिक बन गया। परिवार के लोगों से बात करने के लिए उसको समय नहीं है। बिसिनस के तहत अमेरिका जाना था। अमेरिका से आते वक्त वह उसके मित्रों से फ़ोन पर बिज़िनस के बारे में बातें करते रहते हैं, और इससे थक होकर रात में बिस्तर पर लेटते वक्त सो जाता है। पत्नी सबीहा को परिवार की परेशानियाँ और खुशियों के बारे में कहने का अवसर वह नहीं देता है। तब सबीहा के विचार को देखिए 'अब निज़ाम अकेला उसका और उसके बच्चों का नहीं रह गया है, बल्कि बाज़ार, ग्राहक के बीच क्रय और विक्रय में फ़ंसा सामान तौलता, पैसे गिनता बहुत बडा धन्ना सेठ बन गया था'।[30] निज़ाम जो है वह दिन रात भागता भागता रहता है। इस तरह बाज़ार के पीछे भागने वाले लोग उनके परिवार से अलग होकर पैसे के लालच से त्रस्त होते रहते हैं। स्वभावतः इस तरह के लोग सास्कृतिक मूल्यों से दूर रहकर पारिवारिक टूटन का एक कडी के रूप में रह जाता है। हमारी सामाजिक व्यवस्था इसके लिए एक हद तक कारण बन जाती है। आज बाज़ार जो है मानव को जीने के लिए मूल्यों के अतिरिक्त सिर्फ़ साधन ही साधन देता रहता है।

---

[29] निन्यानवे, रवीन्द्र वर्मा, पृ. सं. 149

[30] ज़िन्दामुहावरे, नासिरा शर्मा, पृ. सं. 79

बाज़ार तंत्रों से मुक्ति कभी भी संभव नहीं है। आज अमरीका जैसे राष्ट्र अपनी चीज़ों को बिकने के लिए सभी देशों को अपने वश में लाकर रख देते हैं। हमें उसकी बाज़ारी आखों की पहचान करने की ज़रूरत है, नहीं तो अतीत के समान नव उपनिवेशी राष्ट्रों के हाथ में हम पड जायेगे।

विज्ञापन

आज वैश्वीकरण का मुख्य औज़ार है विज्ञापन। उसने उपभोग को उपभोगवाद मे बदल डाला है। आज जनता सब विज्ञापन में विश्वास रखकर माया लोक मे पडी हुई हैं। जीवन पूर्णतया विज्ञापन द्वारा निर्मित मापदण्ड के आधार पर चलता है। टी.वी. अखबार आदि माध्यमों के द्वारा विज्ञापन जनता के समक्ष अपनी माया प्रकाशित करता है। आज टी. वी. में कार्यक्रमों से आधिक विज्ञापन ही दिखाई देता है। लोगों को अपने वश में लाने के लिए फ़िल्म स्टार और क्रिकेटर को इकट्टा करके विज्ञापन प्रकाशित करता है। लोग इस के पीछे का बाज़ार तंत्र के बारे में चिन्तित नहीं है। जनता के मौलिक चिन्तन आज नष्ट होते जा रहे है। सब कहीं फ़ैशन ही फ़ैशन है।

'कलिकथा वाया बाइपास' में विज्ञापन की विकृति का प्रसंग है। स्वतत्रता के स्वर्ण जयन्ती समारोह के अवसर का प्रसंग देखिए 'राष्ट्रीय ध्वज, चक्र तथा वन्देमातरम ने अखबारों और दूरदर्शन के विज्ञापनों में बिक कर स्वतंत्रता को करोडों रुपए का कारोबार बन दिया है। जूतों मोजों, टी शर्टों से लेकर गाडी बनाने वाली कंपनी

तक ने आज़ादी की पच्चासवीं वर्षगांठ के झंडे के तीन उडते रंगों के बीच पचास लिखे हुए नमूने को हर जगह छप दिया है। यहाँ तक कि सारी मल्टीनाशनल कपनियाँ भारत की आज़ादी की वर्षगांठ को इस तरह मनाने पर तुली है कि मानो उनकी आज़ादी का ही जश्न हो' ।[31] किशोर बाबू के परिवार सब इस सस्कृति के पीछे हैं। इस प्रकार की संस्कृति में पलने वाले व्यक्ति में राष्ट्र की चिन्ता, आज़ादी की गरिमा आदि के प्रति सजगता नही होती है। किशोर बाबू को परिवार के प्रति चिन्ता है , और वे सोचने लगे कि कितनी सीमित दुनिया है इन लोगों की।

इस उपन्यास का एक और प्रसंग को देखिए ' विज्ञापनों के युग ने सबकी मति हर ली है - जैसे - तैसे शब्दों का इस्तेमाल वही एक करिश्मा पैदा करने का तरीका है, जैसे सुनील गवास्कर से कमेंटेटर पूछता है - ' आपके पास लिखने का 'फ़्लेयर' (सहज प्रवृत्ति) कहाँ से आया?' सुनील गवास्कर जेब से 'फ़्लेयर' कंपनी का पेन निकालकर कहता है - ' क्यों कि मै फ़्लेयर पैन से लिखता हूँ' ।[32] विज्ञापनों में क्रिकेटर और फ़िल्म स्टार का चेहरा है तो उस विज्ञापनों को देखने वालों की संख्या बढ जाती है। एक बार कोकोकोला के विज्ञापन में अमीर खान आया था तब उसके विरुद्ध जनता ने आवाज़ उठाई। लेकिन वह अपनी करतूत के बारे में कुछ नहीं सोचता था। वह ज़रूर पैसा मिलने के लिए विज्ञापन में माडल बना था। मानव की भलाई के बारे में बह सोचता भी नहीं।

'काशी का अस्सी' का एक प्रसंग देखिए 'एक दिन गुरू ने चौराहे पर एक बहुत बडा होर्डिंग देखा - गंगा नहाकर आते समय राम - नाम के पहरे में। हार्डिंग क्राउन टेलिविजन का था और पर्दे

---

[31] कलिकथा वाया बाइपास, अलका सरावगी, पृ. सं. 138

[32] कलिकथा वाया बाइपास, अलका सरावगी , पृ. सं. 197

पर एक खूबसूरत हँसती हुई हीरोइन थी। जुल्फ़ें माथे और गालों पर और चमकते हुए सफ़ेद दाँत। धीरे - धीरे नगर के सारे चौराहे, सडकें, गलियाँ, नुक्कड और दूकानें ही नहीं, अखबार भी उनके विज्ञापनों और पोस्टरों से रंगे दिखाई पडने लगे'।[33] यह एक नयी लहर है, नया जुनून है। देशी विदेशी कम्पनियों के ऎसे हार्डिंग, पोस्टर और विज्ञापन को आकर्षित बननेवाले चेहरे और उनकी भाषा सुनकर हम उस चीज़ को खरीदने के लिए तडप उठते हैं। उसको बिकने के लिए नए नए एजेंड हैं नयी नयी दूकानें हैं और उनके आगे पागल जनता है। इस प्रकार के विज्ञापनों का लक्ष्य मनुष्य ही है, इस तरह हम बाज़ार संस्कृति के अंग बनते जा रहे हैं।

एक और प्रसंग देखिए 'अरे सुनिए तो। जस्ते के भगौने में दाल भी नहीं चुरती और भात या तो मड्गिल्ला रह जाता है या कच्चा। 'प्रेस्टीज कुकर' क्यों नहीं ले आते, सस्ता भी होता है और अच्छा भी।

(जो बीवी से करे प्यार, वह प्रेस्टीज से कैसे करे इन्कार?)
-अब के ज़माने में राख और अबसन कौन इस्तेमाल करता है जी? 'वाशिंग पाउडर निरमा' क्यों नहीं लाते ?
- बहरे हो क्या, सुनते नहीं हो ललिताजी क्या कहती है ?
- 'सर्फ़' ले आओ। सर्फ़ खरीदने में ही समझदारी है।
- यह कौन सी साबुन ले आए ? यह भी कोई लगता है आज ?

बद्री साव की दूकान पर दोनों साबुन देखे थे - हेममालिनी वाला भी और रेखावाला भी। जाओ, इसे वापस कर आओ'।[34] दुनिया आज बिल्कुल बदल रही है। आज जो चीज़ हम खरीदते हैं उसी

---

[33] काशी का अस्सी , काशीनाथ सिह, पृ. सं. 149

[34] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ. सं. 151

पर केन्द्रित है हमारी समझदारी। बाज़ार की उन्नत कंपनियों की चीज़ खरीदे तो हम बनेंगे समझदार नही तो मूढ। यही हालत की जिम्मेदारी हमारे बीच से ही गुज़र रहा है। आज चीज़ों की इसी भरमार से लोगों को तंग आ गया है। यही भिन्नता का मांनदण्ड बन गया है। सब के मन में यह हविश होती भी है कि किसी भी कीमत पर चीज़ों को खरीदकर अपने घर भर दिया जाय। टाइपिस्ट लडकी अपनी मालिक की बेटी जो चीज़ खरीदती है वही चीज़ खरीदे तो ज़रूर भिन्नता आ जायेंगी । इससे यह भी कहा जा सकता है कि समाजवाद की स्थापना हुई है। लेकिन आज टाइपिस्ट, मज़दूर बज़ार के मालिक यानी बहुराष्ट्रीय कंपनियों की समृद्धि बरकरार रखने के लिए भरपूर भूमिका निभा रहे हैं। विज्ञापनों की करिश्मा से आज बाज़ार की रंगीली दुनिया के प्रति समाज का हर व्यक्ति आकृष्ट है।

फ़ैशन प्रतियोगिता

विभिन्न सांस्कृतिक विविधताओं के आधार पर प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री सौदर्य विद्यमान है, परन्तु वह किसी समाज में अपसंस्कृति का प्रसार नहीं करता, वरन किसी संस्कृति विशेष का संवर्धन व हस्तान्तरण करता है। प्रत्येक जाति, समुदाय में किसी भी सामाजिक आयोजन, महोत्सव, विवाह, नामकरंण, जन्मदिवस, त्योहार, मेलों आदि के अवसरों पर महिलाएँ विशेष रूप के परिधान तथा आभूषण धारण कर भाँति - भाँति के सौदर्य प्रसाधनों से सुसज्जित होती हैं। उक्त विशेष अवसरों पर भी सौंदर्य की प्रशंसा होती है व सौदर्य वृद्धी हेतु विभिन्न प्रसाधनों का उपयोग किया जाता है। सांस्कृतिक धरोहर को संजोने के लिए कई

विद्वानों ने तो नारी को संस्कृति की प्रणेता भी माना है। उल्लेखनीय है कि विभिन्न सांस्कृतिक व धार्मिक विरासतों में कलाकारों, साहित्यकारों तथा शिल्पियों ने नारी को समाज के सम्मुख एक अप्रतिम शोभा की वस्तु भी माना हैं। स्वर्ग लोक में इन्द्र व अन्य देवताओं के भोग - विलास के लिए अप्सराओं का उल्लेख मिलता है। सामन्ती युग के प्रारंभ में सुल्तानों व राजाओं का एक से अधिक स्त्रियों से विवाह करना सिद्ध करता है कि उन्होंने कभी स्त्री को वस्तु से ज़्यादा महत्व नहीं दिया। प्राचीन काल में महिलाओं के लिए कुछ थोपी गयी वर्जनाएँ एवं मर्यादाएँ तय थीं। उसी प्रकार वर्तमान में भी सौंदर्य प्रतियोगिता एक प्रथा जैसी हो गयी है जो लुभावना तो लगता है परन्तु एक अभिशाप के रूप में पल - बढ रहा है। जिसका संरक्षण तथाकथित बुद्धिजीवी महिला - पुरुषों व साम्राज्यवादी , पागल समुदायों द्वारा अपने हित के लिए किया जाता है। स्त्री सौदर्य की प्रामाणिकता के लिए सौदर्य प्रतियोगिताओं का संगठन करना अच्छी बात नहीं है, यह तो एक भ्रम जैसी है।

देखना यह है कि क्या वर्तमान पूँजीवादी व सम्राज्यवादी व्यवस्था में स्त्रियों की दशा प्राचीन काल से कुछ भिन्न है। बाहरी रूप से भिन्न अवश्य प्रतीत होती है पर मूल रूप से उसमें ज़्यादा अन्तर नहीं आया है। वर्तमान में यौवन जनित सौदर्य कुछ विशिष्ट युवतियों के लिए व्यवसाय हेतु एक उत्पादन जैसा ही हो गया है। जिसकी जब चाहे, जहाँ चाहे बोली लगा ले। विश्व सुन्दरी का खिताब पाने के लिए सुन्दर काया कंपनियों द्वारा निर्धारित शारीरिक ढाँचा होना अनिवार्य है। यहाँ तन की सुन्दरता से ही मानवीय मूल्यों व गुणों का मूल्यांकन होता है।

नारी सौदर्य का एक रूप माँ के वात्सल्य में भी है परन्तु मीडिया व इन प्रतियोगिताओं ने ऐसी सम्वेदनाओं को कभी महत्व

नहीं दिया, आज रिश्ते नाते तो बाज़ार में बिकते उत्पाद हो गये है। तन की सुन्दरता को ही प्रधानता से प्रस्तुत कर रिश्तों के मौलिक स्वरूप को खत्म किया जा रहा है। हिन्दुस्तान की युवतियों ने भी कई बार अपनी अर्ध नग्न काया की नुमाइश कर विश्वसुन्दरी का ताज बडे स्वाभिमान से पहनती है। समाज को सकारात्मक लाभ तो दूर की बात , ये सुन्दरियाँ अपने लिए गये आश्वासनों को भी चमक - दमक की दुनिया मे भूल ही गयीं। प्रतियोगिता के दौरान कोई सुन्दरी महिला विकास के लिए कार्य करना चाहती थी तो कोई अनाथालय खोल गरीबों की सेवा करना चाहती थीं। समस्त आश्वासन एक प्रायोजित लफ़्फ़जी ही सिद्ध हुए।

सौदर्य प्रदर्शन से स्त्रियाँ दौलत कमा रही हैं और इसका आयोजक उन्हें अपने हित के लिए इस्तेमाल कर रहा है। इससे स्त्रीत्व का आहत हो रहा है। सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में स्त्री को वस्तु बनाया जाय या नहीं , अथवा वह वस्तु बनने को तैयार हो या नहीं इस पर गंभीरता से विचार करके निर्णय लेना संपूर्ण समाज की सामूहिक जिम्मेदारी है। एक तरफ़ है अमेरिका जैसे संपन्न समाज का यह नंगा नाच व दूसरी तरफ़ है हिन्दुस्तानी युवतियाँ, जो इसी नंगेपन के उद्योग अमेरिका जैसे देशों द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में अपनी सुन्दरता का प्रमाण लेने पहूँचती है। अमेरिकी पोप संस्कृति और सास्कृतिक उद्योग में सौन्दर्य व कला के नाम पर ऐसे अभद्र व अमर्यादित खेल कोई आश्चर्य पैदा नहीं करते। परन्तु हिन्दुस्तान के लिए इसका अनुकरण घातक सिद्ध हो रहा है।

असल में अब सौन्दर्य प्रतियोगिता केवल सौन्दर्य प्रतियोगिता तक सीमित नहीं रही। इसे यदि देह दर्शन प्रतियोगिता कहने से अतिश्योक्ति नही होगी अन्यथा प्रतियोगी सुन्दरियाँ बिकनी

व पारदर्शी वेशभूषा पहनने के बजाय अपनी सास्कृतिक वेशभूषा पहनकर प्रतियोगिता में सम्मिलित होती है। यह भी एक फ़ैशन बन गया है आज। यह हमारी संस्कृति को विकृत करने योग्य है। मजबूर है क्यों कि इन प्रतियोगिताओं के प्रश्न पत्र में अनिवार्य व अधिक नंबर वाला प्रश्न ही यही होता है कि आप अपने तन को कितना उघाड सकती है तथा सौन्दर्य प्रतियोगिता के नाम पर तन के कितने कपडे सरका नग्न व भौंडा प्रदर्शन कर सकती है।

सौन्दर्य प्रतियोगिता में सम्मिलित होना अथवा दूसरों के लिए अधिक से अधिक सुन्दर दिखना कुछ विशेष तबकों की युवतियों का मक्सद बन गया है। सुन्दर दिखना सँजना सँवारना अपराध नहीं है परन्तु इनका देह प्रदर्शन निज स्वार्थों के लिए है, इससे आने वाली पीढी दिग्भ्रमित हो जायेगी और यह अपसंस्कृति का प्रचार भी हो जायेगा। यह भी कहना जायज़ है कि इसमें राजनैतिक, सास्कृतिक अथवा आर्थिक साजिश को साफ़ तौर से देखा जा सकता है। यह तो नवउपनिवेशवाद का साजिश भी है। कितने पाकिस्तान में दिल्ली में हुए मोडल जेसिका लाल की हत्या के बारे में संकेत है। इससे सबन्धित कमलेश्वर की राय को देखिए 'यह हमारी नाचती गाती संस्कृति का पहली शहीद है पैदा होने के फ़ौरन बाद में इसने माँ का दूध ज़रूर पिया था। फ़िर नहीं पिया। यह लगातार लिकर या बियर पीती रही, क्यों कि दूध से ज़्यादा प्रोटीन है बीयर में। सेब के रस से कम कैलोरीज़ है बीयर में..... यही जेसीका लाल के दिलकश और खूबसूरत होने का राज था। वह तूफ़ानी खूबसूरती, जिसे देखकर मनु शर्मा पगल हो गया था.....'।[35] इससे उसकी हत्या को नवउपनिवेशवादी संस्कृति की पृष्ठभूमि में आँकने की अनिवार्यता के बारे में सूचना है। इस अपसंस्कृति के पास अपना एक सॅन्दर्यशास्त्र है। सौन्दर्य के नये

[35] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 291

मानदण्ड और नई कसौटियाँ वे ही बनते हैं। मनुष्य की सौन्दर्य चेतना पर हमला करते हुए उनके बाज़ार की उपलब्ध वस्तुओं से बनाए गए एक कृत्रिम सौन्दर्य को ही सही सौन्दर्य होने का भ्रम फ़ैलाया जाता है। इस में नारी ही ज़्यादा फ़ँस गयी है। कहना न होगा कि पुरुष भी फ़ँस गये है। विश्वभर की पूँजीवादी संस्थाओं के तत्वधान में लगातार चलती सौन्दर्य प्रतियोगिताओं और उसमें जीत जाने वाली का नाम जेसीका हो या और कोई, वे तुरन्त ही मोडल में तब्दील होती हैं। इस अर्जित सौन्दर्य को नैतिक विकरालता को दर्शाने के लिए ही कमलेश्वर ने जेसीका द्वारा माँ का दूध के बजाय बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बीयर पीने की बात पर ज़ोर दिया है। दरअसल इस सांस्कृतिक घुसपैठ के दो लक्ष्य होते हैं। एक है बाज़ार संस्कृति को फ़ैलाकर पूँजीवादी उपभोगवादी संस्कृति को बढावा देना और दूसरा है सास्कृतिक एकता को नष्ट करके नवउपनिवेशवाद के विरुद्ध जनता के एकजुट प्रतिरोध को तोडना।

सौन्दर्य प्रतोयोगिता के बीच अमेरिका जैसे विकसित देश अपनी सौदर्य वर्द्धक चीज़ों को बिकने के लिए सौन्दर्य प्रतियोगिता में प्रथम स्थान भारत जैसा विकासशील देशों को देता है। इसमें प्रथम आने वाली स्त्री एक तो मोडल बन जाती है नहीं तो फ़िल्म स्टार। इसका मतलब यह नहीं है कि दोनों फ़ील्ड बुरा है। टाइट जीन्स या पेन्ट पहनकर, एक टुकडे का कपडा पहनकर अपने शरीर को एक्स्पोस करके वे बुरी तरह दर्शको के सामने आती हैं। इस वजह से उसकी संस्कृति की स्पष्ट झलक आँखों के सामने आती है। हमारी संस्कृति नाचती गाती हो गयी है। जेसीका की जैसी अनेक युवतियाँ हमारे समाज में मौजूद हैं। वे शहीद भी हुए हैं।

आज स्त्री को एक उपभोग चीज़ के रूप में देखने की संस्कृति समाज में फ़ैल रही है। स्त्री शोषण से उनकी कोई मुक्ति

नहीं है। इससे पनाह की आकाँक्षा उसके मन में है, लेकिन आज की सामजिक व्यवस्था बुरी हालत में है। इस समजिक व्यवस्था को मिटाना ज़रूरी है। क्यों कि पुरुष मेधा समाज में स्त्री का स्थान पशु से भी बदत्तर है। वर्तमान काल स्त्री के लिए सबसे भीषण नृशंस एवं अमानवीय रहा है।

मीडिया का अतिप्रसरण

प्रत्येक मीडिया समाज की विकास अवस्था का प्रतिनिधि होता। समाज और उसके विकास का दौर जितना सहज व सरल होगा उसके संचार माध्यम भी वैसे ही होंगे। वे समाज से सीधे जुडे हुए होंगे। 'मनुष्य माध्यमों की गतिविधियों के केन्द्र में रहेगा। मनुष्य और संचार माध्यमों के बीच अलगावबोध के लिए जगह नहीं है। आज विशाल पूँजी और टेक्नोलजी ने माध्यमों और मनुष्य के बीच ज़बरदस्त विलगाव पैदा कर दिया है। दोनों परस्पर अपरिचित होते हैं। लेकिन दोनों के बीच संबन्धों का इल्यूजन ज़रूर बना रहता है क्यों कि पूँजी और टेक्नोलजी नियन्त्रक अपनी प्राथमिकताओं व लाभ हानी को ध्यान में रखकर इस इल्यूजन के रूप व आकार का निर्धारण करते रहते हैं'।[36] आज का समाज औद्योगिक समाज है। जिसमें पूँजी टेक्नोलाजी और गति हमारी जीवन शैलियों और संबन्धों का निर्णय या अनुकूल कर रहे है। अत्यन्त विकसित संचार अवस्था का प्रतिनिधित्व करने वाला माध्यम है टेलीविज़न। यह कहना गलत नहीं होगा कि इलक्ट्रोनिक मीडिया सभी बुराइयों की जड है। आज जितना अपसंस्कृतीकरण

---

[36] हंस जनवरी 2007, चालाक और हमलावर मीडिया, पृ. सं. 130

हो रहा है इसकेलिए टेलीविज़न जिम्मेदार है। अतः सभी प्रकार की सास्कृतिक विकृतियों और नैतिक मूल्यों के पतन का जनक यह माध्यम है। क्यों कि यह जीवन के सभी आयामों का स्पर्श करता है। यह अवश्य मनोरंजन का माध्यम है और समाचार विचार को अपने ग्राहकों के समक्ष प्रस्तुत करता है। इसकी भूमिका एक आयामी न होकर बहुआयामी है। अनेक नई नई चैनलों से टेलिविज़न भर गया है। मीडिया मे अखबार एक अलग भूमिका निभा रहा है। टॅलिविज़न के चैनल सब खबरों के पीछे दौडकर अपने को अव्वल दर्जे में करने के लिए निरत है।

अखबार और टी. वी. चैनलों की यह अक्रान्त स्थिति को उपन्यासों में चित्रित करके उपन्यासकार मीडिया की विकृत स्थिति का पता देते हैं। कलि-कथा वाया बाइपास मे आज़ादी की पच्चासवीं वर्षगांठ के अवसर का चित्रण है। किशोर बाबू को इसकी सूचना अखबार से मिल गयी। डेढ महीने पहले से इसकी खबर अखबार में छाप रही है। वे सबसे पहले लोगों को आकर्षित करने के लिए ढेढ महीने पहले से ही खबर को छाप रहा है। यह प्रसंग देखिए 'आलम यह है कि सारे अखबार इस आसन्न उत्सव पर इतिहास और वर्तमान को सही परिप्रेक्ष्य में देख सकने की अपनी काबिलियत को एक दूसरे से बढ - चढकर साबित करने में या ज़्यादा से ज़्यादा चटपटा बनाकर पेश करने की होड में एडी - चोटी को ज़ोर लगा रहे हैं। टी. वी. के सब चैनलों पर आज़ादीवाले कार्यक्रमों के बिकाउपन को पहले से भाप कर उसकी तैयारी करनेवालों की चांदी कट रही है'।[37] आज़ादी मिलते पच्चास वर्ष होते वक्त जनता बाज़ार संस्कृति का शिकार बन गयी। यह ज़रूर अपसंस्कृति का परिचय देने वाला वाक्य है। आज जनता के बीच होने वाली प्रतियोगिता आदत के पीछे इस प्रकार

[37] कलि-कथा वाया बाइपास, अलका सरावगी, पृ. सं. 138

की अपसंस्कृति का हाथ ज़रूर है। इसलिए अखबार हो टी.वी. चैनलें हो अव्वल नंबर पर आने के लिए मर मिटते हैं। आज माध्यमों की यह स्थिति देखकर यह कहना समीचीन होगा कि इस प्रकार की करतूतों के पीछे ज़रूर राजनीज्ञों की आँख है।

'काशी का अस्सी' उपन्यास का एक प्रसंग देखिए ''तलवार मुकाबिल हो तो अखबार निकालो ' वालों की। ये मालिकों को गरियते हैं लेकिन छापते वही है जो वह चाहता है ! ये धर्मनिरपेक्ष हैं लेकिन खबरें धर्मोन्माद की छापते हैं ! दंगा, हत्या, लूट - पाट, चोरी - डकैती, बलात्कार के शनदार अवसरों पर इनके चेहरे की चमक देखते बनती है'।[38] अखबारों का अपना एक एथिक्स है। लेकिन आज उस एथिक्स का पालन करने वाले विरले ही मिलते हैं। ज़्यादात्तर अखबार चलाने वाले लोगों को अपना एक राजनीति होती है, वे लोग उससे संबधित समाचारों को बल देता है। आज धर्म के नाम पर समाज में कोलाहल हो रहा है। अखबार इस प्रकार की स्थिति में उसे और अधिक बढावा देकर आग में घी डालने का कार्य करता है। इसलिए यह कहना समीचीन होगा कि हाथ में एक कलम है उसके बल पर अखबार में कुछ भी लिखने के लिए लोग तैयार हैं। एक और प्रसंग को देखिए 'तो भइया, भगवान भला करे हीरालाल बुडऊ का। उन्होंने उसे जाने क्या - से क्या बना दिया - सौदागर। लेकिन यह पक्का कि सौदा हुआ जिसकी खबर अखबारों में नहीं थी। अखबारों में खबर थी बिहारी लाल की पार्टी के ' अधिवेशन' की जो कुछ महीने बाद मुम्बई में हुआ था। उसी दरम्यान एक 'डिनर पार्टी' भी हुई थी उसी पंचसितारा होटल में और उसकी भी चर्चा नहीं थी किसी अखबार मे। तो पार्टी हुई उन्हीं सेठों की ओर से और उसमें

---

[38] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ. सं. 18

शामिल हुआ सरकार का नुमाइन्दा - खजाने का वजीर। और वजीर ने एक भाषण दिया - बडाधाँसू'।[39] ,

टी. वी. कार्यक्रम की वास्तविकता के संबम्न्ध में ब्रह्मानन्द गुरू से कहने वाला व्यंग भरा वाक्य को देखिए 'आप टी. वी. तो देखते है न ? कुछ सीरियल ऎसे आते हैं जैसे 'लाइव शो' हों। और कुछ गायक भी हैं - गज़ल गानेवाले, वे गाते रहते हैं और श्रोताओं या दर्शकों की ओर से 'वाह - वाह' होता रहता है। वे दिखाई पडे या नहीं, उनकी हंसी और ठहाके सुनाई पडते हैं'।[40] आज टी. वी. चैनलों में अधिकत्तर सीरियल है। लोग इसके सामने बैठकर समय वृथा खो देते हैं। इससे क्या मिल रहे हैं इसके संबन्ध में लोग सोचते भी नहीं हैं। बच्चे सब इस प्रकार के कार्यक्रमों को देखकर उसी प्रकार का कार्य कर रहे हैं। अर्थात उसमें अत्महत्या का प्रस्तुतीकरण है तो बच्चे उसका अन्धा अनुकरण करते हैं। टी. वी. चैनलों के कार्यक्रमों की अधिकता से संबन्धित इस वाक्य को देखिए 'टी. वी. के पच्चास चैनल लेकिन किसी पर 'रामकथा' हो रही थी, किसी पर 'सन्त प्रवचन' किसी पर 'भजनों' का कार्यक्रम चल रहा था तो किसी पर 'लग्न' और 'राशी' और 'ग्रहों' की चर्चा, किसी पर मथुरा की 'रासलीला' दिखाई जा रही थी तो किसी पर 'वैष्णो देवी', फ़िल्म। कुछ पर फ़िल्में थी और कुछ पर कहकहोंवाले सीरियल। एक - दो चैनल समाचारवाले भी थे लेकिन एक छोटे से नगर की एक छोटी सी कालोनी ऎसी कोई खास तो नहीं कि उसका जिक्र हो। उम्मीद थी 'सिटी चैनल' से लेकिन उस पर 'कमल' विषय पर फ़िल्मी अन्त्याक्षरी चल रही थी'।[41] आज चैनल के द्वारा ज्योतिषियों से बात हो सकता है। इससे संबन्धित वाक्य को देखिए 'देश के सभी

---

[39] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ. सं. 140
[40] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिह, पृ. सं. 78
[41] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ. सं. 158

ज्योतिषी किसी न- किसी टी. वी. चैनल पर चौबीस घंडे भाख रहे थे कि बुधवा इस समय किस दिशा में है? पूरब कि पच्छिम कि उत्तर कि दक्खिन ? कब तक पकड में आ जायेगा ? उसकी हँसी देश के लिए शुभ है या अशुभ? देश की ग्रहदशा कैसी चल रही है? सढेसाती का क्या हाल है ? जिन ज्योतिषियों को कभी कोई पूछता नहीं था, उनकी तूती बोल रही थी चैनलों पर'।[42]

पहला गिरमिटिया उपन्यास में नेटाल की जनता के मताधिकार से संबधित प्रसंग है। नेटाल के लोगों को मताधिकार करने को इनकार कर दिया जाता था। गाँधीजी ने मताधिकार के बारे में महारानी को पत्र भेजा था। आखिर महारानी की सरकार की भेजी सूचना भी एक दिन मोहनदास के पास आयी। सूचना में लिखा था 'सम्राज्ञी की सरकार चुनाव में रंगभेद करने के पक्ष में नहीं है अतः मताधिकार संशोधन विधेयक अस्वीकार करते हुए साम्राज्ञी प्रसन्नता का अनुभव करती है। इसके बाद अखबार में गाँधी के बारे में इस प्रकार लिखा है कि 'गाँधी - ब्लैक मजीशियन'। बाद में गाँधी जी का विचार देखिए 'अखबार चिनगारी को हवा देने का काम कर रहे है। अगर यह चिनगारी आग में बदल गयी तो सबसे ज़्यादा शिकार गिरमिटिया होंगे। व्यवसायी तो फ़िर भी बच निकलेंगे'।[43]

निन्यानवे उपन्यास में गाँव में कुछ राजनीतिज्ञों द्वारा प्रेस कोनफ़ेरन्स करने के बारे में बताया गया है। इससे संबन्धित खबर अखबार में इस प्रकार आयी थी कि 'अगली सुबह स्थानीय अखबारों में उपर्युक्त प्रेस कोन्फ्रेन्स की जो खबर छपी वह सिगरेट बुझाने के दृष्टान्त से शुरू हुई। हर समाचार - पत्र में खबर ऊपर या बीच में बलबीर सिंह की ऐश - ट्रे में सिगरेत बुझाते हुए तस्वीर

---

[42] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ. सं. 162

[43] पहला गिरमिटिया, गिरिराज किशोर, पृ. सं. 308

थी। झाँसी जनपद के समाचार पत्र वाचकों में कोई ऎसा नहीं था जिसने उस सुबह बलबीर सिंह की तस्वीर न देखी हो और उस तस्वीर के आस - पास पंचसूत्री क्रांति की खबर न पढी हो'।[44] इस प्रकार की स्थिति हमेशा हमारे अखबारों में देखने को मिलती है। वे प्रमुख समाचारों को उतनी प्रधानता नही देते हैं, कोई राजनीतिज्ञों के बारे में खबर है तो उसको छापने के लिए अधिक लगाव दिखा रहे हैं।

आखिरी कलाम उपन्यास में मीडिया के बारे में बताया गया है। अखबार जो लोकतंत्र के प्रहरी माने जाते रहे है, यह उपभोक्ता संस्कृति का वाहक है। सरकारी उपक्रम के 'सचल पुस्तकालय' के उद्‌घाटन के अवसर पर आचार्य तत्सत पाण्डे को भाषण देने के लिए बुलाया था। उसमें उनको दिए व्याख्यान का ज़िक्र है। उसकी खबर दूसरे दिन कई अखबारों में छपती है। दूधनाथ सिंह जी ने कम से कम उसके नौ नमूने दिये हैं, जिनके शीर्षकों से ही अखबारों की मानसिकता का पता चलता है। ये शीर्षक इस प्रकार है -

1 अयोध्या : कार सेवकों का सामूहिक शौचालय
2 जनता और किताबों के बीच में तुलसीदास
3 एक पूर्व कम्युनिस्ट द्वारा गोस्वामी तुलसीदास का अपमान
4 अपाहिज धर्मग्रन्थों से बचो
5 राम की नगरी में पुस्तक - दहन
6 किताबें शक पैदा करती है
7 कम्युनिस्टों और कारसेवकों में भिडन्त
8 अयोध्या में एक विदेशी जासूस और
9 कठमुल्ला फ़िर आया।

---

[44] निन्यानवे, रवीन्द्र वर्मा, पृ. सं. 128

ये रिपोर्ट अधिकांश में निराधार और उत्तेजक है। पीत पत्रकारिता के कारनामे। आज अखबार साप्रदायिक शक्तियों के हाथ में खिलौना है। अपनी जिम्मेदारी को भुलाकर वे अर्थोत्पादन की मशीन बन गये है। उन्हें लाभ कमाना है। बाज़ार उन पर हावी है। मीडिया में आज व्यवसायीकरण हो रहा है।

सचमुच आज मीडिया की स्थिति कुछ हद तक नीचे स्तर की ओर जा रहा है। मीडिया एक हद तक जनता के लिए उपयोगी है। आदिवासी समाजों और अत्महत्या के लिए विवश किसानों की दर्दभरी गाथाओं से हम चैनल के द्वारा परिचित होते रहते हैं। मीडिया की उद्देश्यपरक भूमिका को नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। आज की अपसंस्कृति का प्रभाव मीडिया पर भी विद्यमान है। मीडिया की अक्रामक स्थिति को नियन्त्रित रखना आवश्यक है।

सास्कृतिक संकट

मानव संबन्धों को लेकर संस्कृति बनती है। उन संबन्धों में जब हिंसा आती है तभी विकृति आती है और संस्कृति के लिए संकट उपस्थित होता है। आज हमारी अस्मिता को खतरे में डालने का कार्य करने वाली राष्ट्रीयता हमें संकट दे रही है। राष्ट्रीय संकट गहरा होता जा रहा है। इससे समाज की मर्यादाएँ सब टूट रही हैं। स्वाधीनता के बाद इस प्रकार की स्थिति अधिक देखने को मिली है। यह दो प्रकार की होती है। आज़ादी की लडाई होते वक्त हमारे समाज में नवजागरण की स्थिति उत्पन्न हुई, इसने हममें राष्ट्रीयता जगाने का कार्य किया। यह एक प्रकार

की राष्ट्रीय भावना है। दूसरा प्रकार जो है वह धर्म पर आधारित राष्ट्रीयता है। इसने हमारी जनता को सकट की स्थिति में डाल दिया। धर्म के नाम पर लोगों के बीच झगडा हो गया। इससे सास्कृतिक संकट भी पैदा हुआ। इसने हमारे सामाजिक विवेक को अस्थिर कर दिया। इस अस्थिरता ने अराजकता को बढावा दिया। इसने साप्रदायिकता को जन्म दिया। इसके विकराल रूप का वर्णन उपन्यास में हुआ है। 'ज़िन्दा मुहावरे', 'काले कोस', 'कितने पकिस्तान', 'निन्यानवे', 'आखिरी कलाम', 'काशी का अस्सी' आदि उपन्यास में इससे उत्पन्न स्थिति का विस्तार से वर्णन है। 'कितने पाकिस्तान' में सास्कृतिक मूल्यों के ह्रास का वर्णन है। मानव के बीच प्रेम, मित्रता, भाईचारा, समन्वयशीलता, शान्ति, अहिंसा, मानवीयता, उदारता, सहिष्णुता जैसे सास्कृतिक मूल्य सब मिटते जा रहे हैं। मानव संकीर्णता, घृणा, अहंकार, जाति, धर्म, नस्ल, वर्ग, वर्ण के आधार पर बँटकर विनाश की ओर जा रहे हैं। मानव मूल्यों के ह्रास होने पर भारत और पाकिस्तान का विभाजन हुआ। यह केवल रजनीतिक और भौगोलिक नहीं था, बल्कि इसने दो दो सांस्कृतिक बँटवारा की स्थिति पैदा कर दी। विभाजन के पहले और विभाजन के बाद में हिन्दू मुस्लिम दंगे होते गये। उसमें लूटमार, बलात्कार, हत्याएँ आदि होती रही। ये सब घटनाएँ मानवीय मूल्यों के ह्रास का कारण ही होती रही। उपन्यास से उदाहरण देखिए 'हाहाकार तो पूरी दुनिया में मानवाधिकारों का हनन हो रहा है, हिंसा, हत्या, कष्ट, उत्पीडन, यातना, बेईमानी, बदकारी के सैलाब उमड रहा है, जो घटित हो रहा है, पर घटित होता हुआ दिखाई नहीं दे रहा है, जो सुनाई पडता है, पर सुनता हुआ प्रतीत नहीं होता...... यही हमारे समय की त्रासदी है, क्योंकि हम मूल्यबोध के बावजूद मूल्यहीनता की चपेट में है'।[45]

---

[45] कितने पकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 201

आदि काल से लेकर स्त्री को पूजनीय स्थान दिया जाता था। लेकिन वैदिक काल की संस्कृति की महाविलासिता का चित्रण इस उपन्यास के द्वारा उपन्यासकार ने हमारे सामने रख दिया। उस काल में भी स्त्री को एक उपभोगी चीज़ के रूप में देख लिया गया। इसने सास्कृतिक संकट उपस्थित कर दिया । मध्यकालीन संस्कृति की संवेदन शून्यता का चित्रण औरंगज़ेब के द्वारा हमारे सम्मुख उपन्यासकार ने रख दिया। औरंगज़ेब ने अपने भाई दाराशिकोह की हत्या करके उस समय के सास्कृतिक मूल्य ह्रास की स्थापना कर दी।

पूरे देश में हो रहे अलगाव की समस्या सास्कृतिक सकट पैदा करती है। इसका वर्णन कितने पाकिस्तान में है। यह सिर्फ़ भारत की ही नहीं विश्व की समस्या है। इसका सबसे बडा उदाहरण 1947 में भारत पाकिस्तान का अलगाव है। इसी तरह के अनेक उदाहरण उपन्यास में यूगोस्लाविया, कोसोवो, सर्विया, आदि के दिये गए हैं। उदाहरण देखिए 'अब ऎसे पागल लोग इस दुनिया में नहीं मिलते है..... अगर मिले होते तो सोवियत यूनियन नहीं टूटता, यूगोस्लाविया में बोस्निया के मुसलमानों का कत्ले आम न होता, सोमालिया में बच्चे और लोग तडप - तडप कर अकाल से न मरते और चार सौ फ़िलिस्तीनी इसराइल की सरहद पर भूख और ठण्ड में पडे मौत का इन्तजाम न करते और इसराइली उन्हें इस तरह मौत के मूँह में न खदेडते।'[46] इस प्रकार के अनेक उदाहरण उपन्यास में हैं। हाल ही में श्रीलंका में होती रही घटना इसका उत्तम उदाहरण है।

'भारतीय संस्कृति अब नष्ट होती जा रही है यह चिन्ता अमेरिका और जापान को सताने लगी है। अनुदान और संस्थाओं

---

[46] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 107

द्वारा, योजनाओं और परियोजनाओं द्वारा उन्होने संस्कृति को मनचाहा मोड देकर एक सास्कृतिक प्रदूषण पैदा किया है। नशे की संस्कृति , कैबरे और डिस्को की संस्कृति, हिप्पी संस्कृति जैसे बीमारियाँ इसी प्रदूषण का परिणाम हैं। यह सौगात हमें उनसे मिली है, जिनकी कोई संस्कृति भी नहीं है'।[47]

आज भारत जनसख्या की दृष्टि से विश्व में दूसरा स्थान पर है। इस बढती जनसंख्या के लिए रोटी, कपडा और मकान उपलब्ध कराने के लिए जंगलों को काटने की प्रक्रिया निरन्तर जारी है, जिसका प्रभाव प्रकृति के साथ साथ मनुष्य के जीवन पर भी पड रहा है। महानगरों में तो स्थिति और भी ज़्यादा भयावह हो गई है। सब कही इमारते ही इमारतें हैं। मनुष्य आज अपने जीवित रहने के लिए आवश्यक स्वच्छ वायु के लिए तरस रहा है। महानगरों में कंक्रीट और लोहे सीमेंट का जंगल ही सास्कृतिक संकट का रूप बन गया है। कमलेश्वर ने कितने पाकिस्तान में दो तीन जगह इस समस्या की ओर ध्यान आकृष्ट किया है। उपन्यास में अश्रुवैद्य अदीब के न्यायालय में कहता है 'सदियों से मैं यही कर रहा हूँ और देख रहा हूँ...... सदियों मनुष्य प्रकृति का शोशण करता रहा। प्रकृति बाँझ हो गई तो मनुष्य का शोषण करने लगा'।[48] इसके अतिरिक्त उपन्यास में जब अदीब अस्पताल में भर्ती होता है तो वह सोचता है 'पडे - पडे वह सोचने लगा - पहले घर छोटे हुआ करते थे। पेड बडे .... घरों पर पेडों की छाया हुआ करती थी। अब इमारतें बडी और पेड बहुत छोटे। अब इमारतों की छाया में पेडों ने रहना सीख लिया है'।[49] इन उदाहरणों के द्वारा कमलेश्वर ने मानव को समझाने की कोशिश की है कि अपने स्वार्थ व सुविधाओं के लिए वह जो प्रकृति का लगातार शोषण कर रहा

---

[47] इतिहास और संस्कृति, वीरेन्द्र मोहन, पृ. सं. 17
[48] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 23
[49] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 354

है, उसके भयंकर दुष्परिणाम अब दृष्टिगोचर होने लगे हैं। प्रकृति की संतुलित स्थिति बिगडने से वातावरण में कई प्रकार की जटिलताएँ पैदा हो रही हैं, जो मानव जीवन के लिए अत्यधिक घातक है।

सांस्कृतिक संकट की धुरी के एक सिरे पर उपभोक्तावाद का पूँजीवादी व्यापार तंत्र है जो अन्तर्राष्ट्रीय और आर्थिक साम्राज्यवाद से अविभाज्य रूप से जुडा है। मीडिया के महत्व को इस व्यापार तंत्र ने सबसे अच्छी तरह से पहचाना है। दूरदर्शन, रेडियो तथा तमाम सरकारी, गैर सरकारी रंगीन पत्र पत्रिकाओं ने इसमें व्यापक पहल की है। दूरदर्शन के विज्ञापन तथा प्रदर्शन ने हमारे नैतिक, समाजिक और परिवारिक मूल्यों पर सबसे अधिक चोट की है। मर्यादा और सामाजिक नैतिकता का हनन ही व्यापार की नई दुनिया के प्रति एक नए उपभोक्ता वर्ग को आकर्षित कर सकता है। इस प्रकार जहाँ समाज का अपराधीकरण हुआ, नशा, हिंसा और सैक्स का बाज़ार पनपा, वहीं औद्योगिक सभ्यता के विकास ने पारंपरिक उद्योग धंधों तथा उनसे संबधित संस्कृति को नष्ट किया। फ़लतः संस्कृति के क्षेत्र में भी उपभोक्तावाद की पकड मज़बूत हुई। अपसंस्कृति के नए नायक उत्पन्न हुए। दूरदर्शन ने अपनी उपस्थिति से भरतीय समज को कमरों में बन्द कर दिया था। भारतीय समाज दूरदर्शन के प्रसंग एवं सन्दर्भों को यथार्थ जीवन में घटित करने लगा। इस प्रकर जीवन दृष्टि के परिवर्तन में मीडिया समाज के मूल्यों को ध्वंस करने का कार्य करता है। मीडिया के अतिप्रसरण से संबन्धित वर्णन 'काशी का अस्सी', 'निन्यानवे', 'आखिरी कलाम', 'पहला गिरमिटिया', और 'कलिकथा वाया बाइपास' आदि उपन्यास में हैं। एक नया वर्ण और संप्रदायवाद मीडिया की भी देन है। इससे अपसंस्कृति पैदा हुई। दूरदर्शन ने संस्कृति के संकट को संस्कृति का वरदान बताकर जनता को मुग्ध किया तथा परंपरिक सास्कृतिक मूल्यों के प्रति वैर

भाव का विष बोया। उपभोक्तावाद की चपेट में आने से पारंपरिक संस्कृति को बचाने का प्रयास नहीं किया गया।

आज भारतीय समाज खतरनाक स्थिति में है। एक ओर भूमंडलीकरण, निजीकरण, उदारीकरण आदि के नाम पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का जाल मज़बूत होता जा रहा है तो दूसरी ओर आतंकवादी, विघटनकारी, साप्रदायिक और नस्लवादी शक्तियाँ लगातार भारतीय समाज को तोड रही हैं। इससे पनाह संभव है या नहीं यह विचार करने योग्य बात है।

दार्शनिक विचारधराएँ

'दर्शन ईश्वर के बारे में धार्मिक चिन्तन से हमेशा कुछ अधिक है। वह न कोई पूर्ण चिन्तन व्यवस्था है, न महज वैचारिक छलावा। सामाजिक विकास का बौद्धिक प्रत्युत्तर होने के कारण, वह अपने समय के वैचारिक फ़लक पर मनुष्य और सृष्टि तथा मनुष्य और मनुष्य के रिश्तों से जुडी सच्चाइयों का तार्किक उद्‌घाटन है। दर्शन में तर्क की स्वतंत्रता बुनियादी चीज़ है। तार्किकता की प्रवृत्ति के कारण धर्म से उसकी प्रकृति भिन्न है। धर्म आस्था का मामला है, जबकि दर्शन तर्क का'।[50] उपन्यासकार अपने उपन्यासों के द्वारा अपना जीवन दर्शन का प्रतिपादन करते हैं। जीवन दर्शन से तात्पर्य साहित्यकार के जीवन संबन्धी दृष्टिकोण से भी है। जीवन के गहरे सागर में गोते लगाकर वह

---

[50] धर्म का दुखान्त,पृ. सं. 44

जो अनुभव रूपी रत्न और मणियाँ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करता है वही उनकी जीवन दृष्टि या जीवन दर्शन होता है।

हज़ारीप्रसाद द्विवेदी कृत 'अनामदास का पोथा' उपन्यास में प्रमुख रूप से सांख्य दर्शन, अद्वैत दर्शन ,और गाँधी दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है। सांख्य दर्शन के अनुसार यज्ञादि धर्मानुष्ठान से हम थोडे समय के लिए पाप दूर कर सकते हैं, उससे हमेशा के लिए छुटकारा नहीं पा सकते। इस दर्शन का प्रयोग उपन्यास में देखने को मिलता है, क्यों कि एक साधु सन्यासी के द्वारा समाज में हो रहे दुख का कारण पता चलता है। राजा यज्ञ, तर्क आदि करने में दिलचस्प रहते हैं। प्रजा के बारे में उसे चिन्ता नहीं है। साधु ने ठीक रूप से प्रजा के दुख का कारण बताया और समाज की सेवा करने की आवश्यकता को समझाया। बाद में राजा प्रजा की अभिवृद्धि के लिए काम करने लगा। इसमें अद्वैत दर्शन का भी प्रभाव है। इसमें आध्यत्मिकता के बारे में ठीक रूप से बताया गया है। आत्मा और परमात्मा का चिन्तन अध्यात्म है। 'दूसरों के सुख के लिए अपने आपको दलित द्राक्षा की तरह निचोडकर दे देना। इससे बडा तप मुझे मालूम नहीं है'।[51] इस प्रकार का उदाहरण अद्वैत दर्शन का समर्थन करता है। यह उपन्यास उपनिषदकालीन समाज का होने के कारण अद्वैत दर्शन की प्रमुखता पर बल देता है। अहिंसा, सहिष्णुता आदि पर बल देने के कारण गाँधीदर्शन का प्रभाव देखने को मिला है।

कमलेश्वर का उपन्यास कितने पकिस्तान अनेक दर्शनों के प्रभाव से किया हुआ उपन्यास है। इनमें प्रमुख है पुनर्जन्म में आस्था, वैशेषिक दर्शन, गीता दर्शन, बौद्ध दर्शन, गाँधी दर्शन, माक्स्वादी दर्शन, कबीर दर्शन आदि। पुनर्जन्म का सिद्धान्त हमें

[51] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. सं. 152

विभिन्न सभ्यताओं के धार्मिक ग्रन्थों व दर्शनों में मिलता है, वैदिक धर्म में इसके दर्शन हमें उत्तर वैदिक काल से मिलते है। वैदिक धर्म में पुनर्जन्म को प्रमुख स्थान दिया गया है। इसके अतिरिक्त गीता ग्रन्थ, जैन धर्म में भी पुनर्जन्म में विश्वास किया गया है। मिश्र की सभ्यता ने भी पुनर्जन्म को माना है। वर्तमान में भी पत्र पत्रिकाओं में अनेक बार पुनर्जन्म के किस्से को पढने को मिलता है। कमलेश्वर ने इस उपन्यास में अनेक स्थानों पर पुनर्जन्म में आस्था प्रकट की है। उपन्यास में अदीब ने महमूद से पूछा तुम कहाँ था तब उसका उत्तर देखिए 'कहाँ थे तुम?

'हुज़ूर मै पिछली सदियों में चला गया था'
'पिछली सदियों में क्यों?'
'मै अपनी पूर्वजों से मिलने गया था''।[52]

इसी प्रकार का अन्य उदाहरण अदीब और सलमा के प्रसंग में आया है जब यह दोनों धर्म परिवर्तन की बात करते है, तब अदीब सलमा के बीच का संवाद देखिए

'लेकिन तुम तो अब हिन्दू हो क्या पुनर्जन्म में विश्वास कर सकती हो?'
'विश्वास करू या न करू विश्वास करना अच्छा लगता है'।[53] '

वैशेषिक दर्शन के आदि प्रवर्तक कणाद थे। उन्होने वैशेषिक दर्शन नामक ग्रन्थ की रचना की। इस दर्शन में परमाणुवाद को विशेष महत्व दिया गया है। उदाहरण देखिए 'सुनो पराशक्ति मौन है वह विखंडित होते परमाणु का मौन रूप है। वही ब्रह्माण्ड की मूल मौन शक्ति है, ब्रह्माण्ड इसी की ऊर्जा से बनता है, इसी में

---

[52] कितने पकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 18
[53] कितने पकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 132

टिका रहता है और इसी में विलीन हो जाता है, वह आदि अन्त से परे है। अपरिमित और अपरिमेय है, अज्ञात और अज्ञेय है, अद्वितीय है, परा अपरा है, नित्य है। शाश्वत और सनातन है। तेज पुंज है ब्रह्माण्ड के सहस्त्रों सूर्यों से अधिक तेजस्वी। पदार्थ इसी में जन्मता और विलीन हो जाता है, जो कुछ भूलोक, द्यूलोक और अन्तरिक्ष लोक में अवस्थित है, वह सब वही है, इससे परे कुछ भी नहीं है। यही है चेतना, ऊर्जा या आदि परमाणु की पराशक्ति। हमने हमारी सभ्यता ने इसे ब्रह्म पुकारा है। ब्रह्म है यह निश्चित है, परन्तु वह क्या है, यह अनिश्चित है...... यह रूपाकार से परे है, वह व्याख्याहीन, अद्वितीय और अद्वैद है। वह प्रश्नों में, उपराम है‘ ।[54]

गीत में भगवान कृष्ण द्वारा अर्जुन को दिया गया उपदेश है, उपदेश का मुख्य विषय है - मृत्यु कोई अपूर्व वस्तु नहीं। कोई मरता नहीं है, आत्मा अजर और अमर है। गीता दर्शन का प्रभाव इन उदाहरण में दृष्टव्य है। ‘उसे मृत्यु मार नहीं सकती थी। वायु उडा नहीं सकती थी। शास्त्र उसे काट नहीं सकता था। सागर उसे डुबो नहीं सकता था‘ ।[55] गीता का दूसरा प्रतिपाद्य विषय है कर्म , इस संबन्ध में गीता की मान्यता है कर्म किए बिना जीवन रक्षा या शरीर निर्वाह भी नहीं हो सकता। दूसरे यदि सब कर्म करना छोड दे तो सृष्टि चक्र का चलना बन्द हो जायेगा। उदाहरण देखिए ‘ धरती पुत्र जब तक तेरा एक अंग भी सक्रिय रहेगा, तब तक इन विषधरों और वृश्चिकों का विष प्रभावहीन होता जायेगा।

हम सब जानते थे कि बौद्ध धर्म की स्थापना महात्मा बुद्ध के द्वारा हुई। इस उपन्यास में कमलेश्वर ने बौद्ध धर्म की प्रशंसा

---

[54] कितने पकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 26
[55] कितने पकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 26

करते हुए कहते है 'यूरोप के पास धर्म नहीं धर्म का मुखौटा था। आत्मा की मुक्ति का तुम्हारा अभियान एक पाखण्ड था। तुम्हारी भौतिक हवस ने पुरातन सभ्यताओं का ध्वस्त किया था'।'[56] इसके विपरीत एशिया ने सारे धर्म और सभ्यताएँ पैदा कीं। आखिर बौद्ध धर्म भी भारत से निकल कर समस्त एशिया में फ़ैला था, लेकिन कहीं किसी भी देश में रक्त की एक बूँद तक नहीं गिरी थी। बौद्ध साधु घोडों पर चढकर बारूदी आक्रमण करने वाले योद्धा नहीं थे, उनके पास था शान्ति, अहिंसा और करुणा का सन्देश और उनके हाथों में था बोधिवृक्ष। तब बडे से बडे पर्वत धर्म के पैरों में झुक जाया करते थे। इसमें एक स्थान पर ढाई हज़ार साल पुराने बूढे बोधिवृक्ष के साथ उन्हीं की बिरदरी के बोधिवृक्ष नारा लग रहे थे। उनके ये नारे वर्णवाद के खिलाफ़ थे-

'वैदिक स्भ्यता
'मूर्दाबाद'
'अत्याचारी वर्णवाद'
'मूर्दाबाद,! मूर्दाबाद'
'वैदिक ब्राह्मणवाद'
'मूर्दाबाद,! मूर्दाबाद'
'दुख का काराण !''
'वर्णवाद ! वर्णवाद'।[57]

इस प्रकार बौद्ध धर्म वर्णव्यवस्था व वैदिक धर्म की प्रतिक्रिया स्वरूप आया था इसलिए बोध गया से गौतम बुद्ध की आवाज़ें आती हुई सुनाई देती हैं -' तोडो ! तोडो ! वैदिक आर्यों के वर्णवाद को तोडो.....दासता के परिसूचक तक उदाहरण देखा जा सकता है'।[58] 'आखिरी कलाम' उपन्यास में बौद्ध दर्शन का प्रभाव

---

[56] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 295
[57] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 257
[58] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 257

दिखाई देता है। उदाहरण देखिए 'मै कहता हूँ, यह बुद्ध वचन है। और जहाँ असत नही होगा, वहीं अहिंसा होगी'।[59]

कबीर निर्गुण सन्त थे। जिन्होंने अपने काल में विभिन्न धर्मों के पाखंडताओं पर प्रहार किया था। इस उपन्यास में कबीर दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से झलकता है। कमलेश्वर ने कबीर में बुद्ध, गाँधी, नानक, सूर की समन्वित शक्ति, बुद्ध की करुणा और महावीर की अहिंसा को देखा है। उसके हाथ में सफ़ेद छडी है जो शान्ती का सन्देश देता है। वह शान्ति के लिए सरहद पार करना चाहता है।

कार्ल मार्क्स को वैज्ञानिक समाजवाद का जनक माना जाता है। मार्क्सवाद एक भौतिक दर्शन है। यह दर्शन ईश्वर में आस्था नहीं रखता है। इस उपन्यास में मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। धर्म के बहाने अलगाव और हिंसा पैदा होती है। इसलिए कमलेश्वर ने संसार के तीनों प्रमुख धर्मों हिन्दू, इस्लाम, ईसाई धर्मों पर प्रहार किया। मार्क्सवाद का आश्रय लेकर जनता को भ्रमित करने नेताओं से अदीब ने इस प्रकार कहा कि 'तुम मार्क्सवादी उस मज़हबी नफ़रत को तब तक धार्मिक - सांप्रदायिक ज़रूरत मानकर मुल्क के बँटवारे का समर्थन कर रहे थे। तुम धर्म को अवाम की अफ़ीम मानते हुए भी धार्मिक और भाषावादी नस्लवाद को तर्जीह दे रहे थे'।[60] ईश्वर के अस्तित्व पर प्रश्नचिह्न लगाकर हज़ारी प्रसाद द्विवेदी कहते है ' यह मनुष्य गाथाएँ, ये मिथक, ये पुरा कथाएँ पौराणिक इतिहास में बदल गयी..... इन्हीं से धर्म कथाएँ निकली धारणाएँ स्थापित हुई और इन्हीं से संकीर्ण धर्मों ने जन्म लिया। हाँ! नहीं तो ईश्वर कहाँ था? अपने - अपने धर्मों को तो संकीर्ण धर्मों ने पैदा किया। निनेवह में

---

[59] आखिरी कलाम, दूधनाथ सिंह, पृ. सं. 315

[60] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 93

असीरियन सम्राट असुर बानीपाल के संग्रहालय - पुस्तकालय में मित्ती के फ़लकों पर मौजूद पुराकथाएँ बताती है कि ईश्वर, अजन्मा नित्य और अमर नहीं था। उसे इराकी बेबीलोनियन सभ्यता ने पैदा किया'।[61]

इस प्रकार 'कलिकथा वाया बाइपास' में मार्क्स जीवन दर्शन का प्रभाव दिखाई देता है किशोर बाबू के भैया ललित की मृत्यु के अवसर का यह उदाहरण देखिए 'जब किशोर मुखाग्नि देने के लिए जलता हुआ डंडा पकडाया गया तो वह 'ठिठक गया था। वह पूछना चाहता था किसी ईश्वर से कि यह कैसा न्याय है?'।[62] एक और उदाहरण देखिए 'यह जलन, पिण्डदान, तिलाजंलि, गंगा - स्नान, सुख - शय्या। सब करना है। सब कर्तव्य है।' उसने देखा एक छोटे बच्चे की लाश आई थी। न्याय? क्या ईश्वर की इस सृष्टि में कहीं न्याय नहीं है? इस बच्चे को मरना था तो यह पैदा क्यों हुआ? क्या मृत्यु ही जीवन का सबसे बडा और अन्तिम सत्य है?'।[63] 'आखिरी कलाम' उपन्यास में भी मार्क्स जीवन दर्शन का प्रभाव देखने को मिलता है। काले कोस उपन्यास में सूरत सिंह जो है क्रान्तिकारी बनता है। इसलिए इसमें मार्क्स जीवन दर्शन का प्रभाव है।

महात्मा गाँधी दार्शनिक से अधिक व्यावहारिक व्यक्ति है। सत्य, अहिंसा गाँधी दर्शन का मूल है। इस उपन्यास में गाँधी दर्शन का प्रभाव देखने को मिलता है । सबसे पहले उन्होंने अदीब की अदालत में प्रत्येक गवाह से सत्य बोलने का आग्रह किया है। दूसरा आग्रह उनका हिंसा का विरोध व अहिंसा के समर्थन की बात करना है। कमलेश्वर ने गाँधी को जन आन्दोलनों का जनक

---

[61] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 95

[62] कलिकथा वाया बाइपास, अलकासरावगी, पृ. सं. 17

[63] कलिकथा वाया बाइपास, अलका सरावगी, पृ. सं. 17

माना है। उदाहरण देखिए 'गाँधी के साथ दुनिया में पहली बार जन आन्दोलन शुरू हुए है, उन्होंने सत्ता के केन्द्र को बदल दिया। गाँधी ने पहली बार सत्ता के धारण करने के औचित्य की अवधारणा को राजवंशों से छीनकर जनता को सौंप दिया'।[64]

इस प्रकार पहला गिरमिटिया उपन्यास में गाँधी दर्शन का प्रभाव है क्यों कि यह उपन्यास गाँधी जी के चरित्र से संबन्धित उपन्यास है। 'निन्यानवे' उपन्यास में गाँधी दर्शन का प्रभाव है। उदाहरण देखिए 'यद्यपि रमदयाल अब मिल के कपडे पहनने लगे थे, मगर उस शाम उन्होंने आन्दोलन के दिनों क खादी का धोती कुर्ता निकाला था और गाँधी टोपी सिर पर लगाकर दीवार पर तिरछे टँगे आईने में अपनी शक्ल देखी थी : पहले वे मुस्कराए थे,फ़िर उदास हो गए थे उदासी का एक कारण तो लिबस ही था, जिसे उन्होंने अरसे बाद पूरी तरह धारण किया था - विशेषकर गाँधी टोपी। टोपी का उत्साह आज़ादी के दो - तीन बरस में बिला गया था। वे अक्सर कहते सुने गए कि गाँधीजी का मत सही था कि कांग्रेस पार्टी को भंग कर देना चाहिए और उसकी जगह एक सेवा दल बनना चाहिए। इसके पीछे शहर में उनके सहयोगियों की रोज़ उजागर होती लोभ - लिप्सा और छीना झपटी थी। कुछ लोग कहते कि रामदयाल ऐसा इसलिए कहते हैं क्यों कि उन्हें कुछ मिला नहीं और वे कुछ ले नहीं पाते'।[65] 'कलिकथा वाया बाइपास' में इस दर्शन का प्रभाव है क्यों कि किशोर बाबू का मित्र अमोलक गाँधी भक्त था। 'करवट', 'पीढियाँ', 'काले कोस' आदि उपन्यासों में भी गाँधी दर्शन का प्रभाव दिखाई देता है।

संस्कृति न तो केवल बुर्जुआ है, न प्रगति - विरोधी है, वह समाज को स्थायित्व देती है तो इसका यह अर्थ नहीं है कि वह

---

[64] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 53

[65] निन्यानवे, रवीन्द्र वर्मा, पृ. सं. 12

उसे स्थितिशील बनाती है। संस्कृति एक ज़मीन है जिस पर टेके बिना प्रगति हो ही नहीं सकती। बल्कि जो अगर नहीं है तो उस पर खडा होने वाला जन ही नहीं हैं, केवल एक छाया है। सस्कृति पूरे समाज की चीज़ है, जीवनदायिनी है और गौरव की वस्तु है तो वर्तमान स्थिति में भी अवश्य कुछ हो सकता है। भारतीय समाज बीसियों शतियों से श्रुति - परंपरा में पला है, साहित्य को सांस्कृतिक संवेदना को वह सुन कर ही ग्रहण करता आया है और इसलिए आज भी यह स्थिति है कि निरक्षरों में बहुत से लोग ऐसे मिल जायेंगे जो संस्कारवान भी हैं और साहित्य - विवेक कर सकने वाले भी, जब कि दूसरी ओर साक्षरों में ऐसे लोग कम नहीं हैं जिन में सांस्कारिता का अभाव है। संस्कृति का एक ऐतिहासिक संदर्भ होता है जिस की उपेक्षा नहीं हो सकती, उसी तरह यह भी सच है कि इतिहास का भी एक सांस्कृतिक संदर्भ है जिस की उपेक्षा नहीं हो सकती। ऐतिहासिक संदर्भ खोकर संस्कृति मरुस्थल में भटकने लगती है, उसे दिशा ज्ञान नहीं रहता। लेकिन सांस्कृतिक संदर्भ खो कर इतिहास तत्काल मर जाता है क्यों कि उस का सवेदन ही नष्ट नहीं हो जाता है। इसलिए यह कहना जायज़ है कि संस्कृति और इतिहास का अनन्य संबन्ध है। संस्कृति की सापेक्षता से समकालीन हिन्दी उपन्यास जीवत एवं कालातीत बनने में कामयाब बनता है।

समकालीन हिन्दी उपन्यास में राजनीति सापेक्ष इतिहासबोध

इतिहास और राजनीति में पृथक पृथक अन्तर तो दिखाई देता है। दोनों की सीमा पृथक है। दोनों के मध्य गौर से देखने पर विभाजक रेखा दृष्टिगोचर होती है। लेकिन इतिहास की धारा राजनीति के समानान्तर रूप से प्रवाहित होती है। राजनीति के बिना इतिहास का अस्तित्व संभव ही नहीं है। राजनीति राज करने की नीति है। साहित्य और राजनीति का अनन्य साधारण संबन्ध है। आज राजनीति और साहित्य एक दूसरे के प्रेरक बन गये हैं। दोनों एक दूसरे से प्रभावित करते हैं। राजनीति समाज की दिशा निर्धारित करती है, तो समाज राजनीति की। साहित्य पर समाज का गहरा प्रभाव पडता है। राजनीति, साहित्य और समाज एक दूसरे का प्रेरक है। समाज को समझने की कुंज उसकी राजनीति में निहित है।

'राजनीति कई तरह की होती है। एक राजनीतिक प्रक्रिया वह होती है जिसके ज़रिये परिवर्तन लाया जाता है, जिसके ज़रिये विचारों का सृजन होता है, जिसके ज़रिये अव्यवहारिक लगनेवाले स्वप्नदर्शी विचारों को धरती पर उतारा जाता है, जिसके ज़रिये क्रांतियों का आयोजन किया जाता है। ऎसी प्रक्रिया जब चलती है तो उसके पीछे की राजनीति में एक नैतिक तत्व होता है, एक मूल्य प्रणाली होती है जो सारी दुनिया के लोगों पर अपना असर डालती है।'[1]

---

[1] भारत में राजनीति, कल और आज, रजनी कोठारी, पृ. सं. 25

भारत की प्राचीन शासन व्यवस्था

हमारी प्राचीन शासन व्यवस्था जो राजाओं के हाथ में थी। कुछ पौराणिक उदाहरणों से संकेत मिलता है कि राजा प्रायः विष्णु के अंश से पृथ्वी पर उत्पन्न होता है। यह भी ज्ञात होता है कि विष्णु चक्र का चिह्न समस्त चक्रवर्ती राजाओं के हाथ में होता है। राजा में देवत्व भावना के बीज ऋग्वेद में भी मिलते हैं। यहाँ हम एक राजा को वैदिक देवमण्डल में से दो प्रधान देवताओं के साथ अपना परिचय देते हुए पाते हैं। अथर्ववेद में, राजा में देवत्व की भावना का समावेश साधारण रूप से हुआ है। किन्तु यजुर्वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों में बडे बडे राजकीय पत्रों के अंशभागी रूप में राजा को विवृत किया गया है। ऐसे अवसरों पर विशेषतः देवेन्द्र राजा के प्रतिनिधि के रूप में अवतीर्ण हुए हैं, किन्तु ये वर्णन केवल गौण अथवा लाक्षणिक मात्र हैं, क्योंकि इन्द्र के अतिरिक्त अन्य देवताओं को भी राजप्रतिनिधि के रूप में देखा जाता है।

पुराण में राजनीति के चार उपाय निर्दिष्ट हुए हैं और वे हैं, साम, दान, दण्ड और भेद। यह भी कथन है कि कृष्ण भी अपने विपक्षियों के साथ संघर्ष के अवसर पर इन उपायों का अवलंबन करते थे, वे कहीं साम, कही दान, कहीं भेदनीति और कहीं दण्डनीति का प्रयोग करते थे। राजा को धर्म, अर्थ और काम का पालन करना आवश्यक था। कमलेश्वर का 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में वैदिक कालीन इन्द्र का प्रतिपादन है। वह स्वर्ग का अधिपति है। कमलेश्वर कृत कितने पाकिस्तान उपन्यास में उसकी महाविलासिता का चित्रण अधिक है। एक राजा या सम्राट को ज़रूर अपना धर्म का पालन करना है, लेकिन यहाँ इन्द्र ने अहल्या को धोखा दिया। इस प्रकार उसने धर्म का निराकरण किया। उसी प्रकार सूर्य और चन्द्र ने भी अपने धर्म को तोडकर अपराध किया। चन्द्र आर्य सभ्यता में वह ब्राह्मणों, औषदियों और तारागणों का

सम्राट है। हित्ती सभ्यता का सम्राट है गिलगमेश, वह सबसे पहले महाविलासी था बाद में एकिन्दु के साथ मित्रता की भावना पनपने लगी। उसके बाद वह मानव को मृत्यु से बचाने के लिए औषधि की खोज के लिए निकलता है। इसमें ग्रीक सभ्यता के प्रोमिथ्यूस, सीयज़ आदि का वर्णन है।

त्रेता युग का राम आदर्श पुरुष है। आदर्श राजा भी है। एक बार उसके साम्राज्य में ब्राह्मण पुत्रों की मृत्यु होती रही। इसका कारण पूछने पर उसके पिता द्वारा कहने लगी कि यह शंबूक की तपस्या के कारण होती थी। अपने धर्म का पालन करने के लिए और ब्राह्मण पुत्रों की रक्षा के लिए राम ने शंबूक की हत्या की थी। इस प्रकार पौराणिक काल के राजा और सम्राट अपने धर्म का पालन, और धर्म का निराकरण करते दिखाई देते हैं।

'अनामदास का पोथा' उपन्यास में प्रस्तुत राजा की कथा उपनिषदों की प्रामाणिक कथा नहीं है। यह लेखक का मौलिक विचार है। इसमें राजनीति की शिथिलता का चित्रण है। राजा जानश्रुति जब अपने कर्तव्य को भूला तब प्रजा सब भूख तथा प्यास से पीडित हो गये। उसको अपने प्रजा के बारे में चिन्ता नहीं थी। वह हमेशा अपनी पुत्री के प्रति लगाव दिखा रहा था। इसमें सिद्ध आचार्य ने औदुंबरायण से बताया कि 'प्रजा शब्द का अर्थ ही सन्तान है। राजा के लिए प्रजा की सारी बेटियाँ उसकी अपनी बेटी है। सबका समान ध्यान रखना चाहिए।'[2] इससे राजनीतिक शिथिलता का पता चलता है। राजनीतिक कार्यकर्ताओं के निरुद्देश अथवा अव्यवस्थित कर्म के करण प्रजा को दुख स्थिति आ जाती है। इसमें प्रजा सब अकाल से पीडित होने लगे। जानश्रुति उस समय राजतत्व और कर्म को भूलकर ब्रह्म तत्व को जानने के लिए

[2] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. सं. 123

व्याकुल था। राजा ने गाडीवान की पत्नी ऋजुका के प्रति अपराध किया। जब जिस राज्य के बच्चे और स्त्रियाँ भूख प्यास से पीडित होते हैं उस राज्य का राजा तब नरक का अधिकारी बन जाता है। वह सब कार्य राजकर्मचारियों पर सौंप देता है, यह उचित नहीं है। लेकिन यह सब जानने के बाद उसने प्रजा की उन्नति के लिए कुछ कार्य किया।

हमारे समाज में एक बार मुगल साम्राज्य ने अपने शासन की नींव डाली थी। उस समय यहाँ अनेक प्रकार के अत्याचार एवं आक्रमण होते रहे। मुगलों के सम्राटों के चरित्र धर्म प्रचारक और फ़ौजी किस्म का था। उसके शासन से कुछ प्रशासनिक सुधार तो हुआ, लेकिन महान मुगल साम्राट भी सारे भारत को एक राजनीतिक केन्द्र के तहत नहीं ला पाया। वह भारतीय समाज पर कोई बुनियादि असर नहीं डाल पाया। कमलेश्वर का उपन्यास कितने पाकिस्तान में मुगल शासन के समय का वर्णन है। उस समय की शासन व्यवस्था की खामियों पर उन्होंने प्रकाश डाला था। मुगलों के आक्रमण के पूर्व यहाँ की शासन व्यवस्था अव्यवस्थित स्थिति में थी। इसका भरपूर फ़ायदा को मालूम कर उसने यहाँ अपनी राज कायम कर दी थी। करवट उपन्यास में सुल्तान सिराजुद्दौला के पतन का चित्रण है। इसका वर्णन विस्तार के रूप में नहीं था, लेकिन इससे उस समय की शासन व्यवस्था हमारे सम्मुख आ जाती है।

'अनामदास का पोथा', 'कितने पाकिस्तान', 'करवट' आदि उपन्यासों से हमारे समाज में मौजूद प्राचीन शासन व्यवस्था के बारे में जानकारी मिलती है। ये सब उस समय की फ़ासिसिस्ट व्यवस्था की जानकारी देने में पर्याप्त है। हमारे समाज में मौजूद पुरांण कथाएँ सब मौखिक परंपरा का उदाहरण हैं। इन कथाओं पर विश्वास करे या न करे यह लोगों की मानसिकता पर निर्भर

है। वैदिक काल और उपनिषद काल के द्वारा राजा, या सम्राटों की शासन की जानकारी मिलती है। मुगल काल में तानाशाही राज चला गया था। वैदिक काल में देवताओं का जीवन पूर्णतया भोग विलास से युक्त था। स्त्री उसके लिए भोग वस्तु थी। इससे पता चलता है कि उस समय की शासन व्यवस्था में स्त्री के लिए कोई स्थान नहीं था। देवदासी रूना का यह वाक्य द्वेखिए 'तुम्हारे पास केवल वासना है, प्रेम नहीं। केवल वैयक्तिक श्रेष्ठता का द्वेष है'।[3] इस वाक्य से यह जाना जाता है कि उस समय का राजा, या सम्राट सब भोगविलासी हैं, उसको अपने आपकी वृद्धि के लिए चिन्ता है। इससे यह मालूम हो जाता है कि दूसरों को दबाकर अपने को ऊँचा दिखाने की कोशिश कुछ राजा या सम्राटों में होती है। दूसरों को दबाव रखने का कार्य प्राचीन शासन व्यवस्था में दिखाई देता है। कुल मिलाकर इन उपन्यासों में चित्रित राजा या सम्राटों में फ़ासिस्ट विचार का आरोप लगाना समीचीन होगा।

राजनीति का अतीत, वर्तमान, और भविष्य

समकालीन उपन्यासों के पठन के बाद यह विदित होता है कि कुछ उपन्यासों में राजनीति का अतीत , कुछ उपन्यासों में वर्तमान की राजनीति और कुछ में भाविष्य की राजनीति का जिक्र किया गया है। 'अनामदास का पोथा', 'करवट', 'कितने पाकिस्तान' आदि उपन्यास में अतीत की राजनीति का ज़िक्र है। अनामदास का पोथा में राजा शसन कर्ता था। करवट में नवाबी शासन काल का चित्रण है। साथ ही साथ अंग्रेज़ों का शासन काल

---

[3] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 29

का चित्रण है। 'कितने पाकिस्तान' में अतीत की राजनीति है और वर्तमान और भविष्य की राजनीति भी है। उसी प्रकार 'कलिकथा वाया बाइपास' में अतीत कालीन नवाबी शसन और वर्तमान एवं भविष्य की राजनीति का जिक्र है। 'कितने पकिस्तान' में चित्रित मुगलों की राजनीति अव्यवस्थित थी। वास्तविकता यह है कि आरंभ में मुसलमानों ने भारत की अकूत धन दौलत को देखकर यहाँ पर आक्रमण किया था, लेकिन धीरे धीरे यहाँ की राजनीतिक अराजक स्थिति को समझने के बाद यहाँ स्थायी रूप से रहने का निश्चय किया गया। धीरे धीरे वे यहाँ रहने लगे। वे इस्लाम के प्राचार के तहत यहाँ आये। भारत के मुसलमान शसकों से ही नहीं भिड जाते, उन्हीं को पराजित नहीं करते। इसलिए यह कहना जायज़ है कि वे अपने लिए किसी वतन की खोज में निकले थे, जहाँ उनका शासन हो, हुकूमत करने के लिए प्रजा हो। इसी मुगल राजनीतिक परंपरा में अकबर जैसा महान सम्राट हुआ। उसकी परंपरा की रक्षा के लिए दाराशिकोह आ गया। लेकिन सत्ता की लालच ने उसको स्थान नहीं दिया। औरंगज़ेब के अधिकार मोह ने उसके प्राण को हडप लिया। उस समय का बाबर भी अधिकार मोह से लिप्त सम्राट था। उसने अदीब की अदालत में आते ही बैठने के लिए शाही तख्त पूछा। कोई शख्स तलवार के बल पर अपने दौर की नियति नहीं लिख सकता। यही कारण है कि शक्तिशाली औरंगज़ेब का जीवन संतोषपूर्ण नहीं था। इससे यह विदित होता है कि कोई भी सत्ता शक्ति के बल पर बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकता। वह जीवन भर युद्धों और विद्रोह में उलझा रहा। उस समय भी रजनीति के खेमे में धर्म उपस्थित था। क्यों की वे लोग यहाँ मज़हब की स्थापना को मुख्य स्थान दिया गया था। इस वाक्य को देखिए ' अदीबे आला ! वक्त न हिन्दू है न मुसलमान..... इतिहास गवाह है कि रजवाडों और सल्तनतों के लोग हिन्दू या मुसलमान तो थे लेकिन इनके स्वार्थों और महत्वाकांक्षाओं ने ही इन लोगों को और ज़्यादा में ज़्यादा हिन्दू या

मुसलमान बनाया था। जब - जब ये अपनी ताकत से अपनी महत्वाकांक्षओं को हसिल नहीं कर सके हैं, तब - तब ही इन्होंने धर्म का दामन थामा है...... नहीं तो मुझे बताइए कि कितने राणा - महाराणा और सूबेदार शहंशाह है, जिन्होंने धर्म की खातिर अपनी आन्तरिक मज़हबी ज़रूरतों के लिए अपनी सल्तनत नहीं छोडी ! नहीं तो क्या वजह थी..... वक्त चीख रहा था - कि औरंगज़ेब, जो पाक कुरान की आयतें लिखता रहा और टोपियाँ सिल - सिलकर अपने गुज़ारे का इंतजाम करता रहा, अगर वह सचमुच दिल से मज़हबपरस्त था, तो वह दिए गए आश्वासन के तहत मुराद को हिन्दोस्तान का शहंशाह बनाकर खुद हज पर क्यों नहीं चला गया और उसने अपनी बाकि ज़िन्दगी मक्का और मदीना में एक हाजी - दरवेश की तरह क्यों नहीं गुज़ारी?..... मै फ़िर अपनी वही बात दोहराऊँगा कि अपने स्वार्थों के लिए सब मज़हब को मानते हैं, लेकिन मज़हब की बात कोई नहीं मानता।'[4] सभी मज़हबों में ठीक प्रकार के कार्य बताये गये है। लेकिन लोग अपनी ताकत के बल पर मज़हब को माध्यम बनाकर कुछ कार्य करते जाते हैं। एक और वाक्य को देखिए'' अकबर और दाराशिकोह हिन्दुस्तान में मौजूद धर्म और आध्यात्मिकता में इस्लाम की आध्यात्मिक सोच और परंपराओं को ढाल देना चाहते थे। यह सभ्यता और संस्कृति के समीकरण का एक बहुत बडा अवसर था पर औरंगज़ेब ने उस अवसर को अपने शहंशाही अहम और भाइयों - भतीजों की हत्या की कुंठा के तहत नामंजूर किया और एक इस्लामी इलाके की परिकल्पना की, जो इस्लामी मोहब्बत पर नहीं नफ़रत पर आधरित था।'[5] औरंगज़ेब की इस प्रकार की मानसिकता से भारतीय राजनीति में अनाचार पैदा हुआ।

---

[4] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ.सं. 218

[5] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 234

1840 में भारत में नवाबों का शासन चल रहा था। इसका जिक्र 'करवट', और 'कलिकथा वाया बाइपास' उपन्यासों में हैं। परिवर्तन के क्रम में राजनैतिक परिवर्तन सबसे अधिक महत्वपूर्ण और प्रभावी होता है। 'करवट' उपन्यास में नवाबी महलों में होने वाले षडयन्त्रों, कंपनी व नवाब के मध्य तनाव की स्थिति का वर्णन है। इससे मुगलशासन की नींव हिल गयी। इसमें पंडितजी का कथन राजनैतिक परिवर्तन को बडी ही शजता से इंगित करता है 'नवाबी राज तो अब गया समुझो, अब तो कंपनी बहादुरै का राज होई।'[6] इससे पता चलता है कि जनता को एक के बिना दूसरे के शासन को सहन करना हैं।

'कलिकथा वाया बाइपास' में सिराजुदौला के प्लासी युद्ध संबधी एक प्रसंग है। इससे पता चलता है कि उस समय ज़्यदात्तर नवाब दूसरों पर हमला करते रहते थे। इससे संबन्धित प्रसंग को देखिए जब किशोर बाबू ने सिराजुद्दौला के बारे में पूछा तब लाइब्रेरियन सत्यपालजी इधर उधर से उतारी गयी बातों को गढ रहे थे ' 28 मई, 1756। सिराजुद्दौला ने आरमेनियन एजेंट 'खोजा वाजिद' को लिखा - मैं अल्लाह और पैगंबरों की कसम खाता हूँ कि यदि अंग्रेज़ों ने कलकत्ते के सी और फ़िरंगी इलाकों को घेरनेवाली 'मराठा खाई' को नहीं भरा और अपने किले को नहीं तोडा, तो मै उन्हें इस देश की चौहद्दी से निकाल बाहर करूँगा।' 'सिराजुद्दौला के सेनापति मीर जाफ़र ने एड्मिरल कर्नल क्लाइव के साथ समझौता किया कि नवाब बनने के बाद वह कल्कत्ते पर आक्रमण से हुए नुकसान और सेना के खर्च के एवज में इतने रुपए देगा।

[6] करवट, अमृतलाल नागर, पृ. सं.18

ईस्ट इंडिया कंपनी	-	एक लाख रुपए
अंग्रेज़ नागरिक	-	पच्चास लाख रुपए
मुसलमान नागरिक	-	बीस काख रुपए
अरमेनियन नागरिक	-	सात लाख रुपए'[7]

यहाँ कलकत्ते पर आक्रमण से हुए नुकसान और सेना के खर्च के लिए दिये गये रुपयों का हिसाब प्रामाणिकता से अंकित है। उस समय भी राजनीति को कायम रखने के लिए युद्ध चलाया जाता था। उससे कई प्रकार के नुकसान भी होते थे। उस समय अंग्रेज़ लोगों का शासन यहाँ चल रहा था। वे 1600 मे यहाँ आए थे।

वर्तमान काल की राजनीति बाज़ार तंत्र के पीछे पडकर अपनी बुरी साँस ले रही है। 'कलिकथा वाया बाइपास', 'काशी का अस्सी', 'निन्यानबे' आदि उपन्यासों में इसका जिक्र हैं। धर्म के पीछे पडकर आज की राजनीति ब्राह्मण वाद को प्रोत्साहन दे रहा है। 'आखिरीकलाम' उपन्यास में इस प्रकार की राजनीति का चित्रण है। साथ ही साथ विश्व विद्यालय की राजनीति का ब्यौरा प्रस्तुत करता है। 'काशी का अस्सी' उपन्यास में समकालीन भ्रष्ट राजनीति का चित्रण है। 'ऎसी हालत में सबकी नज़र वामपन्थी पार्टियों की तरफ़ थी। देखो, वे क्या करते है? रामवचन पांडे ने घोषणा की कि कम्युनिस्ट पार्टियों और डोम में कोई फ़र्क नहीं है ! जिस तरह डोम घाट पर लकडी वगैरह जुटाकर मुर्दे का इन्तज़ार करता रहता है, उसी तरह ये पार्टियाँ भी टकटकी लगाए बैठी रहती हैं कि सरकार कब गिरे। अस्सी का एक बडा बुजुर्ग नेता है रामवचन पाण्डे। इस वाक्य से हमारे समाज के नेता लोगों की मानसिकता मालूम हो जाती है। राजनीति के क्षेत्र में हमेशा की

---

[7] कलिकथा वाया बाइपास,अलका सरावगी, पृ. सं. 22

हालत को देखिए 'एक सरकार गिरी, दूसरी सरकार बनी ! बनी तो क्या, बनती सी नज़र आई।'[8] राजनीति के क्षेत्र में हमेशा सीट के लिए माँग होती है 'और जानते हैं, सबसे बडी गलती क्या की उन्होंने ? आपने अपनी लडाई शुरू की थी खेतों से, खलिहानों से यानी उत्पादन की जमीन से जहाँ पैदा की जाती है। यह वह ज़मीन थी जहाँ कांग्रेस - भाजपा लाचार हो गई थी आपके आगे। भाजपा घिघिया रही थी, भीख माँगने की स्थिति में थी - अच्छा, पाँच सीटें दे दो ! चार ही दे दो ! कोई बात नहीं, दो ही दे दो !'[9] राजनीति में आज बाज़ार से सामान लेने के समान नेता सीट माँग रहा है।

'जब जयललिता, हर्षद मेहता, नरसिंह राव, बोफ़ोर्स, झमुमो, लालू यादव आदि - आदि घोटालों और हवालों की चर्चा करते हुए मैने उनसे कुछ बाल - सुलभ जिज्ञासाएँ कीं तो प्रसाद के रूप में खैनी की खिल्ली देते हुए बोले - 'प्रोफ़ेसर साहब! (उन्होंने तो यही कहा लेकिन मुझे सुनाई पडा - बच्चा) भ्रष्टाचार लोकतंत्र के लिए आक्सीजन है, है कोई ऐसा राष्ट्र जहाँ लोकतत्र हो और भ्रष्टाचार न हो? ज़रा नज़र दौडाइए पूरी दुनिया पर, ये छोटी - बडी राजनीतिक पार्टियाँ क्या हैं? अलग - अलग छोटे - बडे सस्थान, भ्रष्टाचार के प्रशिक्षण केन्द्र, सिद्धान्त मुखौटे हैं जिनके पीछे ट्रेनिंग दी जाती है। आप क्या समझते हैं, जो आदमी चुनाव लडने में पन्द्रह - बीस लाख खर्च करेगा वह विधायक या सांसद बनने पर ऐसे ही छोड देगा आपको ? चूतिया है क्या? 'फ़िर राजनिति का मतलब क्या हुआ आचार्य?' साथ में खडे शैलेन्द्र ने ऐसे पूछा था जैसे चन्द्रगुप्त ने चाणक्य से पूछा हो। राजनीति बेरोज़गारियों के लिए रोज़गार कार्यालय है, इम्प्लायमेंट

---

[8] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ. सं. 29

[9] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिम्ह, पृ. सं. 30

ब्यूरो। सब आइ. ए. एस. नहीं हो नहीं सकता।'[10] राजनीति का क्षेत्र सबको स्वागत करता है। उसमें शामिल होने के लिए बडी खर्च तो नहीं है। किसी भी व्यक्ति को राजनीति में नेता बनने के लिए कोई तकलीफ़ नहीं है। हमारा इतिहास नेताओं के इस कार्य व्यापार को सहन करते जा रहा है।

'पीढियाँ' उपन्यास में भ्रष्ट राजनीति का चित्रण है। इसमें युधिष्ठिर टंडन का पिता एक राजनीतिज्ञ है, वह कर्तव्य निष्ठ राजनीतिज्ञ है। लेकिन बी. पी. वर्मा नामक राजनेता की गलत आदत के कारण वह लखनउ से अयोध्या गया था। बी. पी. वर्मा अपनी रिश्तेदार कुसमा देवी की ज़मीन को अपनी पैतृक जायदाद बताता है। इससे उसके आदत हमारे सम्मुख आ जाता है। राजनीति में शत्रुता का उदय इस प्रकार के राजनेताओं के द्वारा पल्लवित हो जाता है।

'विश्रामपुर का सन्त' का नायक कुँवर जयन्ती प्रसाद का संबन्ध राजनीतिक महत्वाकाक्षाओं से है। उसका बडा भाई राजनीतिक प्राणी था जो अंग्रेज़ों के ज़माने में सत्याग्रह करके जेल चला गया था। बाद में आज़ादी मिलने पर कांग्रेस के कई बडे नेताओं के साथ समाजवादी खेमे में आ गया। ऎसा करने वाला वह अकेला नहीं था। ऎसे तअल्लुकेदारों, ज़मीन्दारों की बडी जमात थी जो अवसरवादिता के कारण खादी पहनकर जुलूसों में शामिल हो गई थी। उस पीढी के तमाम नेताओं और ओहदेदारों के अतीत के बारे में त्याग बलिदान के बहुत से किस्से लंबे समय तक मशहूर रहे। इनमें से कुछ ऎसे भी थे जो बाद में कांग्रेस के विरोध में जेल जाते आते रहे।

---

[10] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ. सं. 35

कुँवर जयन्तीप्रसाद ने बैरिस्टरी पढकर वकालत भले ही न की हो पर जीवन शैली उनका आदर्श थी। आज भी राजनीति में ऐसे परिवारों के उदाहरण मौजूद हैं जहाँ भाई-भाई, बाप-बेटे, पति-पत्नी, माँ-बेटे, के जोडों ने पक्ष विपक्ष के दोनो खेमों को संहाल रखा है। सामन्ती सस्कारों और औपनिवेशिक मानसिकता से लैस सवर्ण नेताओं के बीच अपवाद के रूप में कुछ पुराने गाँधीवादी नेता भी हैं। कुँवर जयन्तीप्रसाद साहब के पहला राज्यपाल ऐसे ही है। वह हरिजन है। पिछडे वर्गों के विकास में उनकी रुचि बेहिचक प्रकट होती थी। राजभवन के ऐश्वर्य का उनके जीवन में जैसे कोई अस्तिव नहीं था। कुँवर जयन्तीप्रसाद का सारा ध्यान राजभवन की साज सज्जा और टीम टाम पर था। उन्हें ऐसी हर चीज़ की ज़रूरत है कि जिस पर कोई चमार छूत न हो। उनका मोडल तो स्वतंत्रता के पहले का अंग्रेज़ गवर्नर था। इसलिए राजभवन का कायाकल्प लाखों रुपए खर्च कर अमेरिका से सरकारी खर्चे पर बुलाई गई उनकी अपनी इंटीरियर डेकोरेटर भतीजी केतकी की राय से किया गया। एक राज्यपाल का आदर्श मालूम होने के लिए इतना तो काफ़ी है। कुँवर जी जवहरलाल का हमउम्र सहकर्मी पीढी है। जो देशी वेशभूषा को विदेशी ठसक से पहनती है। जयन्तीप्रसाद उस वर्ग का प्रतिनिधि है जिसने बडी चालाकी से हर राजनीतिक घटना आन्दोलन में घुसपैठ कर उसका उपयोग अपने हित में कर लिया। भूदान आन्दोलन में बडे भाई के जेल प्रवास के समय उसने भूदान की घोषणा की यह इस चतुरता का प्रमाण है। उस समय बहुतों ने भूमि का दान करके भूदानी होने का यश कमाया था। इस उपन्यास में पूरी निर्ममता के साथ उन बहुत चेहरों से नकाब उतरा गया है जिन्होंने भूदान आन्दोलन में दानवीरता का परिचय देकर सर्वोदय के संगठन में और प्रतिष्ठानवादी राजनीति में बडा यश कमाया था। यह कमाई बाद में वर्षों तक उनकी राजनीतिक पूँजी का कीमती हिस्सा बना रहा।

इस उपन्यास में श्रीलाल शुक्ल ने कुँवर जी के माध्यम से सत्तारूढ राजनीतिज्ञों को अपनी आलोचना और व्यंग्य का लक्ष्य बनाया। राजनीतिक अवसरवाद के उदाहरण आरंभ में अपवाद की तरह दिखाई दिए और फ़िर सर्वग्रासी प्रवृत्ति की तरह फ़ैलते चले गये। राजनीति और नौकरशाही में अवसरवाद और भ्रष्टाचार स्वीकृत जीवन शैली का हिस्सा मान लिया गया है। राजनीतिक खेल का जो महानाटक स्वाधीनता के बाद पच्चास वर्षों तक बराबर खेला जाता रहा है, उसकी शुरुआत लोक सभा और विधानसभा के 1952 मे होने वाले पहले चुनाव से हो गई थी। इस उपन्यास में राव साहब के प्रसंग के माध्यम से इस तथ्य की ओर संकेत है। इस उपन्यास में तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति के साथ समकालीन राजनीतिक परिस्थिति भी है।

रवीन्द्र वर्मा कृत 'निन्यानबे' उपन्यास में वर्तमान राजनीति का चित्रण है। आज राजनीति में एक खास समस्या रामजन्मभूमि बाबरी मस्जिद समस्या है। इसके द्वारा राजनीतिज्ञ सब अपना लाभ उठा रहे हैं। इस उपन्यास का हरि जो राम दयाल का छोटा पुत्र है, भाजपा राजनीति के पीछे है। गेरुआ रंग उसके पसन्द का रग है। इसका चित्रण उपन्यासकार ने बडी सूक्ष्म दृष्टि से किया है। वह राजनीति के पीछे जाकर अपनी भलाई करती है। अपनी भलाई के अलावा उसे और कोई विचार नहीं है। पैसा हसिल करने के लिए वह अपने परिवार का रिश्ता भी भूल गया। इस प्रकार हरि के माध्यम से भ्रष्ट और धर्मपरक राजनीति का पर्दाफ़ाश करने में लेखक सफ़ल हुए हैं। इस प्रकार धर्मनिष्ठ राजनीति का चित्रण दूधनाथ सिंह का उपन्यास 'आखिरी कलाम' में भी मिलता है। इसमें कारसेवकों द्वारा किए गये गुंडागर्दी का चित्रण है। उदाहरण देखिए 'बसों के आगे पीछे भगवा बितान खींचकर बाँधे गए थे और लगातार नारों की गूँज उठ रही थी - कुछ इस तरह जैसे अन्दर 'जैश्रीराम ब्रैंड' का बारूद हो, जो अभी अचानक बसों की छतें

उडाता हुआ पेडों की हरी - हरी धनुषाकार छाँह को भस्म कर देगा। लेकिन बसों की छतों पर भी लोग थे जो भीतर के नारों को तुक और लय में आकाश तक उठा रहे थे। अब ये नारे छतफ़ाड नहीं, आसमान - फ़ाड थे, जिसको भगवा श्ब्दावली में 'गगनभेदी' कहते हैं। जैसे गउ माता का शुद्ध घी वैसे ही शुद्ध भाषा भारती'[11] अधिकार को बनाये रखने के लिए किसी प्रकार के कार्य करने के लिए आज लोग डरते नहीं हैं। हमारी राजनीति की नींव अनेक महात्माओं के कठोर प्रयत्न से डाली गयी थी। अब राजनीति का क्षेत्र स्वार्थ तत्परता की पूर्ती का क्षेत्र बन गया है।

समकालीन हिन्दी उपन्यास पढने के बाद यह सवाल मन में उठता है कि भविष्य की राजनीति कैसी होगी। उपन्यासों में चित्रित समस्याएँ सब भाविष्य के प्रति आशावादि दृष्टि प्रदान करने वाली नहीं हैं। मनुष्य सब धर्म और राजनीति के पीछे जाकर अपने आपको भूलकर निन्दनीय कार्य करते रहते हैं। इस लिए राजनीति के भविष्य के संबध में कहना मुश्किल सा लगता है।

कमलेश्वर कृत 'कितने पाकिस्तान' में समकलीन राजनीति का जिक्र किया गया है। कारगिल युद्ध के अवसर पर नेता सब अपने अपने कार्यो में लगे हुए थे। इससे सम्बन्धित एक खत अदीब और महमूद द्वारा लिखा जाता था। 'कांग्रेस देशी विदेशी (सोनिया गाधी को लेकर) के मसले में फ़ँसी हुई है। भाजपा और उसकी मित्र पार्टियाँ अपने निजी कार्यकर्मों में व्यस्त हैं। कामचलाउ प्राधान मंत्री अटल बिहारी वाजपेयी जगजीत - गुलज़ार के कैसेट 'मकासिम' का लोकार्पण कर रहे हैं। अखबार वर्ल्ड कप की खबरों से भरे है.... जो सूचनाएँ देश को तत्काल मिलनी चाहिए, उसके सूत्रों को संभालने वाले सूचना - प्रसारण मंत्री प्रमोद महाजन

---

[11] आखिरी कलाम, दूधनाथ सिंह, पृ. सं. 127

प्रसार भारती को समाप्त करने की मुहिम में मश्गूल है। विदेश मंत्री जस्वन्त सिंह कारगिल सीमा पर चल रही विदेशी गोलाबारी से बेखबर, मध्य एशिया के देशों से मैत्री संबन्ध बनने में व्यस्त हैं। और हमारे रक्षा मंत्री जार्ज फ़र्नाडिस यूगोस्लाविया पर हो रहे नैटो अमरीकि हमलों पर अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन कर रहे हैं...... ।'[12] इससे मालूम होता है कि कोई भी पार्टी नेता, राजनेता देश की उत्तरी सीमा पर चल रहे इस विस्फ़ोटक युद्ध पर न तो चिंता व्यक्त कर रहा है, न कोई बयान दे रहा है। राजनेताओं की लापरवाही का चित्रण इसके द्वारा मिलता है।

स्वतंत्रता संग्राम और राजनीति

सन 1600 में अंग्रेज़ों ने यहाँ व्यापार के नाम भारत पर आये। बाद में अपने शासन की नींव यहाँ डाली गई। जनता को इससे कई प्रकार की कष्टताएँ होती रही थीं। अंग्रेज़ों से स्वतंत्र होने के लिए अनेक आन्दोलनों का रूपायन होता रहा। अनेक आन्दोलन चलाकर भारतीय जनता शहीद भी हुई। ब्रिटिश शासन की कठिनाई से संबन्धित चित्रण कुछ समकालीन उपन्यास में है। भारतीय राष्ट्रवाद की चिनगारी हमें 1857 ई. की क्रान्ति के रूप में दिखाई दी, वह आगे लगातार, प्रज्ज्वलित होती गई और अंततः 15 अगस्त, 1947 को भारत आज़ाद हुआ। 1857 का व्यापक सिपाही विद्रोह अंग्रेज़ी राज के विरुद्ध भारतीयों का प्रथम स्वाधीनता संग्राम था। विद्रोह को निर्दयता से कुचल दिया गया पर देश जाग गया था। इसके बाद समय समय पर अंग्रेज़ी शासकों ने

---

[12] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 14

शासन व्यवस्था में सुधार किये और शासन के कार्यों में सीमित रूप से भारतीयों का सहयोग लेना आरंभ किया। लेकिन यह गदर एक हद तक पराजय था। 'करवट' उपन्यास में भारत पर हुए 1857 का गदर का चित्रण है। इससे अनेक लोग बुरी हालत में पड गये इस उपन्यास में चित्रित अंग्रेज़ी शासन से पता चलता है कि इससे लोगों की स्थिति में सुधार हुआ। और इससे बुरी स्थिति भी आ गयी। ईस्ट इंडिया कंपनी ने बडी ही चतुराई से फ़ूट डालकर अनेक रियासतों को हथिया लिया। अवध के नवाब को हटा दिया जाता है। बंसीधर इस संबन्ध में सोचता है 'यह एक नये ढंग की राजनीति पुराने रियासतखानों को उठा- उठाकर बार-बार पछाडती और उन्हें पस्त हिम्मत करती चली जाती है। यह लोग हमारे लोगों में फ़ूट डालकर राज हथिया लेते है लेकिन हम फ़ूटते क्यों है, संगठित होना क्यों नहीं जानते?'[13] रियासतों को हथियाने के दौरान ही भारतीय सिपाही और कुछ रियासतें गदर छेड देते हैं। गदर के दिनों में अंग्रेज़ों ने गाँवों की निर्दोष जनता पर निर्मम अत्याचार किए और अन्त में रियसतों को हडप लिया। गदर के उपरान्त शासन सूत्र कंपनी के हाथ से निकलकर महारानी विक्टोरिया के हाथों में पहूँच गये।

अमृतलाल नागर कृत 'पीढियाँ' का पात्र जयन्त टंडन के द्वारा अंग्रेज़ शासन का खुलासा हुआ है। वह 1942 के भारत छोडो आन्दोलन में शामिल हुआ था, और शहीद भी हुआ। सन 1942 में भारत छोडो आन्दोलन का प्रस्ताव पास किया गया। इसमें स्वदेशी आन्दोलन का जिक्र भी है, साथ ही साथ गाँधीजी के नेतृत्व में हुए खिलाफ़त आन्दोलन का जिक्र है। स्वदेशी आन्दोलन इसलिए है कि स्वदेश के कार्यों में बल देकर विदेशी साधनों का बहिष्कार करना था। स्वदेशी आन्दोलन को दृढ करने वाला वाक्य

---

[13] करवट, अमृतलाल नागर, पृ. सं. 109

देखिए 'विलायती कपडे मत पहनो, विलायती जूते मत खरीदो यदि देश की रक्षा चाहते हो तो अपनी भाषा और अपने धर्म को आगे बढाओ। स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करो।'[14] विलायत से लौटा हुआ करीब विलायती दृष्टि से ही भारत के प्रति आसीम चिन्तन करने वाला युवक जयन्त टंडन का वह सोया संस्कार भी गाँधी की आवाज़ पर जाग उठा। इसमें रौलक्ट आक्ट, होमरूल लीग, नमक आन्दोलन, चौरीचौरा आन्दोलन आदि के बारे में जिक्र किया गया है। इस उपन्यास में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय के इतिहास की भरमार देखी जा सकती है।

रवीन्द्र वर्मा कृत 'निन्यानबे' के रामदयाल स्वतंत्रता आन्दोलन में शामिल हो गया था। वह एक गाँधी भक्त था। अपनी बीवी से उनका कथन देखिए ' यदि मुझे अपनी शादी और देश की आज़ादी में से एक को चुनना पडे, तो मैं आज़ादी चुनूँगा।'[15] इस उपन्यास के द्वारा चन्द्रशेखर आज़ाद की याद भी दिला रही है। राम दयाल का पिता को अंग्रेज़ों ने 1858 की लडाई के बाद मारकर घर के सामने पेड पर टाँग दिया था। अलका सरावगी द्वारा कृत शेषकादंबरी में देवीदत्त मामा के द्वारा स्वतंत्रता प्राप्ति के समय का इतिहास हमारे सम्मुख आ जाता है। जिसमें रौलक्ट आक्ट, चौरीचौरा आदि प्रमुख है। कलिकथा वाया बाइपास में किशोर बाबू के माध्यम से स्वतंत्रता प्राप्ति का इतिहास छोटे रूप से हमारे सम्मुख आ जाता है। उदाहरण देखिए ' अभी आज़ादी का खूबसूरत सपना सबका सपना है। स्कूल में बहसें उतने ही ज़ोर - शोर से की जाती हैं जितनी कांग्रेस के अधिवेशनों में। बाहर की हवा स्कूल के अन्दर जब घुसती है, तो नसों में तेज गति से बहत खून जोश से उबाल खाने लगता है। 'सरफ़रोशी की तमन्ना अब हमारे दिल में है' की गुनगुनाहट जब - तब सुनने को

[14] पीढियाँ, अमृतलाल नागर, पृ. सं. 124
[15] निन्यानबे, रवीन्द्र वर्मा, पृ. सं. 11

यहाँ मिल सकती है - सीढियों पर चढते - उतरते, मैदान में खेलते समय, यहाँतक कि पेशाबघर के अन्दर भी'[16]

नेहरू और उनकी पहचान

नेहरू एक सार्वजनिक व्यक्ति है। उसका व्यक्तित्व महान होने के साथ - साथ जटिल भी है। भारतीयों के जीवन में परिवर्तन करने के लिए उन्होंने भरसक प्रयास किया। राष्ट्रीय आन्दोलनों में उसकी भूमिका विख्यात है। उन्होंने भारत में समाजवादी विचारों की जडें जमाई। स्वतंत्रता संघर्ष और सामाजिक, आर्थिक स्वतंत्रता के संघर्ष में सामंजस्य बिठाना भी उनका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य था। उन्होंने भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता के दृढीकरण के लिए योगदान दिया। ' नेहरू ने एक आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था और स्वपोषी विकास की बुनियाद डाली। पूर्ण रूप से लोकतंत्र और नागरिक अधिकारों के प्रति समर्पित होने के कारण उन्होंने देश में संसदीय लोकतंत्र के साथ साथ उसके संस्थागत ढाँचे की जडों को गहरा करने में भी सहायता की। उन्होंने एक ऐसे मोडल पर राजनीतिक व्यवस्था के निर्मण का प्रयास किया जिस में सामाजिक परिवर्तन और लोकतांत्रिक तथा नागरिक इच्छास्वतंत्रतावादी ढाँचा परस्पर एक दूसरे को पोषित करेंगे। उन्होंने राजनीतिक लोकतंत्र के आधार पर भारत को आर्थिक रूप से विकसित करने का भी प्रयास किया।'[17]

---

[16] कलिकथा वाया बाइपास, अलकासरावगी, पृ.सं. 19

[17] आधुनिक भारत में विचारधारा और राजनीति, बिपन चन्द्र, पृ. सं. 9

दूधनाथ सिह के उपन्यास में नेहरू से संबधित एक कथा है। ‘एकाध वर्ष पहले जो छात्र संघ का अध्यक्ष था, उसने पंडित नेहरू की छात्र - संघ की अजीवन मानद सदस्यता निरस्त कर दी थी। अपनी जन्मभूमि के छात्रों की इस हरकत से नेहरू जी मन ही मन बहुत खफ़ा थे। अगले वर्ष जो नया अध्यक्ष आया उसने पंडित नेहरू की सदस्यता बहाल कर दी और साथ ही उन्हें नए छात्र - संघ के उद्घाटन के लिए भी आमन्त्रित किया। नेहरू जी आए और अपने उद्घाटन भाषण में ही उन्होंने छात्रों पर भर्सना शुरू कर दिया। जब बोलते - बोलते उनका चेहरा हद से ज़्यादा लाल हो गया। गर्दन की नसें फ़ूलने - पिचकने लगीं तो मंच पर बैठे छात्र नेताओं - ने उन्हें कमर से पकडकर हवा में उठा लिया। पूरा हाल पडित नेहरू की जयजयकार से गूँज उठा। जवहरलाल जी ’ये क्या अहंकाना हरकत है’, चिल्लाते रहे। लेकिन उनकी आवाज़ जयजयकार से शोर में खो गयी। अभी क्या हुआ कि एकाएक पंडित नेहरू का गुस्सा उडनछू हो गया। वे एक लंबे कद्दावर लडके के कन्धे पर बैठे हुए थे। उनके भत्तीसी खिल उठी....आचार्य जी उन सभा के अध्यक्ष थे। वे खडे होकर भौचक देखते रहे। पंडित नेहरू का वह खिला हुआ चेहरा देखकर उन्हें गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का वह कथन याद आया। ’भारत का वसन्त’। पडित नेहरू ने गर्दन मोडकर उन्हें आश्वत किया और खुद भी लडकों के साथ तालियाँ बजाते हुए हँसने लगे। जब उन्हें नीचे उतारा गया तो आचार्य जी की जान आई। नीचे उतरते ही जवहरलालजी ने घोषित किया कि अब वे हिन्दी में बोलेंगे। वे थोडा रुके, खाँसकर गला साफ़ किया और शुरू हुए - ’अहम मसला ये हैं कि हिन्दोस्तान के अवाम को दिमागी गुलामी को उतार फ़ेंकना होगा। आज़ादी का असली मकसद इन्सान का खुला दिमाग होना है ताकि वो चीज़ों और मसाइल को गौर से देख - समझ सके। हर मसले की तह तक पहूँचने, उसे हल करने की काबिलियत होना निहायत ज़रूरी बातें हैं। नहीं तो हम फ़ँस

जाएँगे....ये जो धर्म और जात - पाँत है, ये जो ऊँच -नीच का भेदभाव है, जो समाजी अहंकाना हरकतें है - ये सब बन्द होनी चाहिए। ये सब बातें इन्सान को तंग - दिमागी का शिकार बनाती हैं। ये जो खुराफ़ातें ही होती हैं.... जो इन्सान को इन्सान से अलहदा करती है... जो उसकी आँखों में और दिल में नफ़रत और गुस्से का काला धब्बा डालती हैं.... ये जो ढोंग है, बनावट है, बदनीयती है, मोतबरी है.... ये जो बूर्ज़्वा बददिमागी और ऐश - ओ - आराम की तलब है, इसे खतम होने ही पडेगा'।[18] पंडित जी का यह भाषण उसकी शख्सियत का परिचायक होता है। वह एक ऐसी शख्सियत है जो इन्सान के परिवर्तन के लिए अपने आपको न्योछावर कर देता था। 'निन्यानबे' का प्रसंग देखिए 'उन्हीं दिनों नेहरू जी आए थे। विश्वविद्यालय के सीनेट हाल में उनका भाषण हुआ था। सीनेट हाल खचाखच भरा था। सिर्फ़ तिल रखने की जगह थी। प्रतीक्षारत लडके बतियाते खडे थे। एकाएक मंच पर नेहरूजी आए और माइक के सामने खडे हो गए। हाल में चुप्पी हो गई। चुप्पी पर दिन की रोशनी की छाया थी जिसे भेदती हुई एक कोयल बोली जो छत की ऊँचाइयों में कहीं थी। नेहरूजी मुस्कराए और बोलने लगे। ये आवडी प्रस्ताव के बाद दूसरी पंचवर्षीय योजना के दिन थे। नेहरूजी क्षण भर में बडी सहजता से दो सदी पीछे यूरोप में चले गए जब औद्योगिक क्रान्ति का शुभारंभ हो रहा था। ऐसा लगा जैसे पंडितजी अपनी आँखों देखा हाल सुना रहे हो। वे ऐसे संजय थे जो अतीत को वर्तामान की तरह देख रहे थेः एक सामंती समाज सृजन की पीडा और प्रफ़ुल्लता से आधुनिक समाज में बदल रहा था। इंजन से हवाई जहाज तक की उडान थी। बीच में कृषि का मशीनिकरण और उद्योगों का चहूँमुदेखी विकास था। एक ऊँगता सा समाज सरपट दौडने लगा था। बल्लो को लगा था कि नेहरूजी के स्वर में कोयल - सी सहजता और

---

[18] आखिरी कलाम, दूधनाथ सिंह, पृ. सं. 375

रवानी है। वे यूरोप की औद्योगिक क्रान्ति का इतिहास नहीं बयान कर रहे थे, कोई गीत गा रहे थे मानो उसी गीत को भारत की धरती पर सरसराता देख रहे हो। जब किसी छात्र ने टिप्पणी की कि वर्तानिया की औद्योगिक क्रान्ति के पीछे भारत का पैसा और कपास और कपडे के उजडे उद्योग थे तो नेहरूजी ने कहा कि वह सवाल अलग है। फ़िर जब एक और छात्र ने भारत के छोटे किसान और उसकी छोटी खेती की बात की और गाँधीजी को याद किया तो नेहरूजी मुस्करा दिए। उन्होंने कहा कि बडी खेती का रास्ता भी छोटे किसान की ओर ही जाएगा।'[19] इन दोनों उपन्यास में नेहरूजी के भाषण के बारे में बताया गया है। इससे मालूम होता है कि नेहरूजी अपने ज्ञान से लोगों को दिग्भ्रमित करता था। लेकिन आज की स्थिति बिल्कुल अलग तरह है। राजनेताओं का ज्ञान भी सीमित है।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास मे उसका प्रेमी पक्ष का सकेत मिलता है। 'यही पर मुहब्बत की एक और कहानी मौजूद है ...... अदीब ने दखल दिया - मृदुला साराभाई भारत के प्रधानमंत्री जवहरलाल नेहरू की प्रेमिका थी.... वे दुनिया के दुख दर्द से दूर एक बेहद खूबसूरत मुजस्सिम औरत थी। लेकिन पार्टीशन के साथ खून का जो सैलाब आया था, उसने तीनमूर्ति भवन में नेहरू के बिस्तर को इस कदर भिगो दिया था कि उन जैसा जज़्बाती और इन्सान-परस्त इन्सान उस पर सो नहीं सकता था। उस वक्त नेहरू जैसे आदर्शवादी इन्सान को एडविना माउंटबेटन का रूहानी कन्धा मिला था .... मृदुला साराभाई जैसी मुजस्सिम मांसल प्यार की पुतली नेहरू जी की इस रूहानी यंत्रणा को ग्रहण नहीं कर पाई थी..... उसने एडविना को अपना रकीब माना था और नेहरू को एक बेवफ़ा आशिक !'।[20] 'पीढियाँ' और 'शेषकादंबरी'

---

[19] निन्यानवे, रवीन्द्र वर्मा, पृ.सं. 65

[20] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 319

उपन्यास में नेहरूजी स्वतंत्रता के समय अंग्रेज़ों के खिलाफ़ उठाने वाला राजनीतिज्ञ के रूप में हमारे सामने आता है।

इन्दिरा गाँधी

इन्दिरा गाँधी भारत की ऐसी नारी थी, जिनका विश्व में कोई दूसरा मिसाल नहीं है। राजनीति के दल दल में फ़ँसने के बाद उन्हें न जाने कितनी मुसीबतें और नसीहतें झेलनी पडी। वह एक कर्तव्य निष्ठ नारी थी। उनके मन में भारत वासियों के लिए अबाध प्रेम था। वे जीवन पर्यन्त देश सेवा के लिए कटिबद्ध रही। इन्दिराजी ने अपना सम्पूर्ण राजनीतिक जीवन को बडे साहस और वीरता से लिया था। हर्ष और विषाद दोनों समय वे एक सी रही। शायद यही कारण है कि उन्हें हर परिस्थिति में अपनी जीत दिखाई पडती थी। किसी भी गम्भीर या प्रतिकूल परिस्थिति में वे अपने पथ से विचलित या विमुख नहीं हुई। 1977 में भी अपनी पराजय के बाद वे जनता की सेवा के लिए सदा तत्पर रही। उनके जीवन में एक अजीब कान्तिकारी और चमत्कारी शख्सियत का सम्मिश्रण था। जीवन पर्यन्त इन्दिराजी ने अपने जीवन की सफ़लता का राज किसी को नहीं बताया पर उनके निकटतम सूत्रों से यह स्पष्ट होता है कि उनकी सफ़लता का राज उनकी दूर दृष्टि और आत्मविश्वास था। सफ़लता की चोटी पाने के लिए उन्होंने न कभी किस पर चली और न किसी वाद को ही बढावा दिया। उन्हें जितना गाँधीवाद पसन्द था उतना ही नेहरूवाद। अतः इन्दिराजी के सम्पूर्ण शख्सियत का मूल्यांकन करने पर पता चलता है कि वे वादों के ऊपर दिखाई देती हैं।

ऐसे अपने राजनीतिक जीवन के कई पक्षों में वे अपने पिता से भी आगे थीं। उन्होंने देश के कई गंभीर मामलों को बडी सूझ बूझ एवं सहजता से सुलझाया। जैसे बंग्लादेश और सिक्किम की समस्याएँ इनके ज्वलन्त उदाहरण हैं। देश की नारियों की विभिन्न समस्याओं को सुलझाने के लिए उनके मन में एक अजीब अकुलाहट और बेचैनी थी। नारियों के उत्थान के लिए उनके मन में ढेर सारी योजनाएँ थीं। इन्दिराजी न केवल देश की शक्ति का प्रतीक है, प्रत्युत देश की विचार वीथी का ज्योति स्तंभ भी है।

रवीन्द्र वर्मा कृत 'निन्यानवे' में इन्दिरा जी के चुनाव और बाद में इन्दिरा गाँधी की हत्या के समय का वर्णन है। उदाहरण देखिए 'जनवरी 77 का अन्तिम सप्ताह था इन्दिरा गाँधी ने चुनाव का ऐलान कर दिया था।'[21] इसके बाद वहाँ के वातावरण में एक प्रकार की चमक आ गयी। यह उसकी शख्सियत के प्रभाव के फ़लस्वरूप है। साथ ही साथ इसमें इन्दिराजी की हत्या का वर्णन है। उपन्यास में मनमोहन द्वारा इसकी खबर मिलती है 'इन्दिरा गाँधी की हत्या हो गई,' मनमोहन ने कहा। उनके सिख बोडीगार्ड ने हत्या की।'[22] इसके बाद दिल्ली में दंगा हुआ, इससे सिखों की ज़िन्दगी तहसनहस हो गई। सिखों के घर और शरीर जला दिए गए।

---

[21] निन्यानबे, रवीन्द्र वर्मा, पृ. सं. 138
[22] निन्यानबे, रवीन्द्र वर्मा, पृ. सं. 164

बाबरी मस्जिद ध्वंस और समकालीन राजनीति

इतिहास में तिथियाँ महत्वपूर्ण होती हैं। जैसे मानव समाज में इतिहास के प्रति सजगता बढी है वैसे ही तिथियों की अहमियत बनती और बढती गई है। भारतीय इतिहास में छह दिसंबर 1992 की तिथि का खास महत्व है। हालांकि इस बत पर मतभेद हो सकता है और विवाद भी। 1940, 41, 42 वर्षों में इसका ध्वंस हुआ और प्रबल रूप 1942 में होने लगा। यह कहा भी जा सकता है कि 15 आगस्त 1947 और 26 जनवरी 1950 के बाद यह बीसवीं सदी के भारत का सबसे खास तारीख है। 1992 दिसंबर 6 में भारतीय जनता पार्टी के संघ परिवार (कर सेवक) के लोगों ने बाबरी मस्जिद का विध्वंस किया। 6 दिसंबर 1992 को जिन करसेवकों ने बाबरी मस्जिद का विध्वंस किया वह सिर्फ़ राज्य और संविधान पर ही आघात नहीं था। बाबरी मस्जिद पर पडी हर कुल्हाडी के पीछे अल्पसंख्यकों माने मुसलमानों के खिलाफ़ संचित घृण का आवेश था। यह तो इतिहास है। बाबरी मस्जिद की घटना अतीत में हुई, वर्तमान मे है और भविष्य में रहेगी। आज बाबरी मस्जिद मसला राजनीति का अभिन्न अंग बन गया है। इस मसला का कोई हल अब तक नहीं खोज निकाला गया है। इसलिए यह कहना उचित होगा कि अयोध्या मसला का संबन्ध धर्म से कम और राजनीति से ज़्यादा है। इस तरह का मसला मज़हब और सियासत को मिलाने का कार्य करती है। राजनीतिज्ञ सब आज भी गलत रास्ते पर सफ़र कर रहे हैं। सांप्रदायिक दंगों को उकसाकर अपना मतलब निकालने वाले उन फ़िरंगी दरिंदों और आज के उनके उत्तराधिकारियों के तौर तरीकों में फ़र्क नहीं के बराबर है। इसलिए आज़ाद भारत की बुनियादि सुविधाओं से भी वंचित भुखमरों के लिए आज अयोध्या सबसे बडा मसला बन जाता है। सत्ता केन्द्रों और प्रायोजित इतिहास हमें किसी कदर तक सच्चाई से दूर ले जाता है उसका एक और नमूना है बाबर द्वारा अयोध्या

में राममन्दिर का विध्वंस करके वहाँ बाबरी मस्जिद बनने की दास्तान। अयोध्या जैसे वर्तमान विषय को देखने से यह पता चलता है कि जो आगामी विभाजनों का बारूदा है।

अयोध्या के सम्दर्भ में कमलेश्वर ने बडी बारीकी से इतिहास का अध्ययन और अनुसंधान किया है। 'कितने पकिस्तान' में इस मसला को उन्होंने उजागर किया है। बाबरी मस्जिद मसला तुलसीदास के समय से आ रही समस्या है जो आज भी है और भविष्य मे देखने को मिलेंगी वर्तमान इतिहास इसके लिए अनेक उदाहरण दे रहा है। इसके लिए एक उचित व्यवस्था को निरूपित करना हमारे राजनीतियों के लिए नाजायज़ प्रवृत्ति नहीं है। बाबरी मस्जिद मसला के लिए हल इसलिए नहीं खोजा गया कि उसके नाम पर राजनीति में राजनीतिज्ञ कुछ लाभ उठा सके। सत्ताधारियों ने अपने तख्त को बनाये रखने के लिए बाबरी मस्जिद मसला को और भी बडा मसला बनाया। कमलेश्वर इतिहास के तथ्यों और सत्यों को रेखांकित कर वर्तमान इतिहास की विडंबनाओं को दिखाना चाहते हैं। अयोध्या की दुरभि संधी को बेपर्दा करते हुए कमलेश्वर भारत की संस्कृति के आगे सबसे बडी चुनौती बने नवफ़ाँसीवादियों की ओर संकेत करते हुए लिखते है 'भारत में रक्त के तालाबों में कमल उगाए जा रहे हैं।'[23] उपन्यास में त्रिशूल धारी आकर अपनी दास्तान बताने के समय का संवाद देखिए 'यहाँ मुर्दे की तरह अदब से बैठो ! समझा ! नहीं तो अभी नीचे भेज दिया जाएगा, वहाँ फ़िर मारे जाओगे !
त्रिशूल वाले का चेहरा भयग्रस्त हो गया। वह हाथ जोडकर गिडगिडाने लगा। - नहीं , मैं
फ़िर वही मौत नहीं मरना चाहता !

---

[23] कितने पकिस्तन, कमलेश्वर, पृ. सं.179

-क्यों मरने से पहले तो तुम कहा करते थे कि दस बर नहीं, हज़ार बार मरना पडे तो भी तुम रमजन्मभूमि के लिए मरोगे...... अब क्यों डर रहे हो? अर्दली ने उसे दुत्कारा
-इसलिए कि अब मैं इन्सान हूँ ,मुझे अब मौत से बहुत डर लगता है !
-तो जब मरे थे, उस वक्त तुम क्या थे?
-तब मै हिन्दू था !
-हिन्दू क्या इन्सान नहीं होते?
-होते हैं लेकिन जब नफ़रत का ज़हर मेरी नसों में दौडता है तब मै इन्सान का चोला उतर कर हिन्दू बन जाता हूँ !'[24] यहाँ का त्रिशूल धारी भाजपा में विश्वास रखने वाला आदमी है। त्रिशूल धारी के माध्यम से आज के भारतीय जनता पार्टी के बीच का संघर्ष दिखाना लेखक का लक्ष्य है। यहाँ त्रिशूल धारी एक इन्सान की तरह मरना चाहता है। यदि हम हिन्दू हो या मुसलमान, एक समस्या से संबधित निर्णय निष्पक्ष होकर लेना चाहिए। बाबरी मस्जिद के विध्वंस के समय बी. जे. पी के करसेवकों ने त्रिशूल धारण किया। इसके बाद त्रिशूल एक प्रतीक बन गया। यहाँ त्रिशूल धारी पहले रामजन्मभूमि के लिए मर मिटने को तैयार था। ऎसा देखा जा सकता है कि रामजन्म भूमि बाबरी मस्जिद समस्या हिन्दू मुसलमानों के बीच का संघर्ष है। मज़हब ने मानव को अन्धा बना दिया। सारा मज़हब मानव को यह सिखाता है कि सबसे पहले मानव एक इन्सान बनना चाहिए। लेकिन आज हम मज़हब के नाम पर मर मिटते हैं, और अपने मज़हब को ऊपर उठाना चाहते हैं।

बी. जे. पी. सरकार की रथयात्राएँ आज मानव के हृदय में साप्रदयिकता की जड और भी पुष्ट बना देती हैं। 'कलिकथा वया

---

[24] कितने पकिस्तान, कमलेश्वर, पृ.सं.69

बाइपास' के द्वारा इस रथयात्रा और बाबरी मस्जिद समस्या को लेखिका ने हमारे सामने रखा है। 'अभी कुछ दिन पहले मैने एक पुराने अखबार में पढा कि भाजपा का अडवानी अपने रथ पर नेताजी का चित्र लगवाकर देश का दौरा कर रहा था'।[25]

अमृतलाल कृत 'पीढियाँ' उपन्यास में बाबरी मस्जिद समस्या का जिक्र किया गया है। सुमन्त टंडन का वक्त्व्य देखिए 'चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का बनवाया राम मन्दिर टूट गया। बाबरी मस्जिद बन गयी। तब से इन पांच - छह सौ वर्षों से इस भूमि ने कभी चैन का दिन नहीं देखे। घृणा की प्रतिक्रिया में घृणा और हिंसा की प्रतिक्रिया में हिंसा ही उभर रही है। राम जो चाहते है वही होता है।'[26] अयोध्या अब भी चैन की स्थिति में नहीं है। आज भी भाजपा के लोग चुनाव आते वक्त राम मन्दिर के नाम लेकर वोट माँगते हैं। हाल ही में अड्वानी ने चुनाव के वक्त ऐसा कहा कि अगर मै जीत गया तो राम मन्दिर का निर्माण करूँगा। इस प्रकार आज की राजनीति सदाचार से भिन्न होकर बिल्कुल मज़हब परस्त हो गयी है।

रवीन्द्र वर्मा कृत 'निन्यानबे' में बाबरी मस्जिद समस्या का चित्रण है। इसका प्रारंभ एक स्कूल के वातावरण से शुरू होता है। इस उपन्यास के बल्लो का पुत्र और मन्मोहन की पुत्री प्रिया के स्कूल में एक घटना घटी। घटना यह है कि स्कूल में लडकियाँ मस्जिद बनायी जाती, फ़िर लात मारकर मस्जिद गिरायी जाती और फ़िर ऐन उसी जगह एक मिट्टी के मन्दिर का निर्माण होता। जब आधी छुट्टी खत्म होने की घंटी बजती तो उसे मन्दिर की घंटी मानकर लडकियाँ मन्दिर के समने दोनों हाथ जोडती और अपनी कक्षा में लौट जाती । अगले दिन मन्दिर की जगह धूल

---

[25] कलिकथा वाया बाइपास, अलका सरावगी, पृ. सं.187

[26] पीढियाँ, अमृतलाल नागर, पृ. सं. 29

होती थी। लडकियाँ उसी जगह मस्जिद बनाती, गिरती और फ़िर मंदिर बना देतीं जो गिर जाता। दो मुस्लिम लडकियों ने मिट्‌टी की मस्जिद बनाकर गिराने का एतराज किया तो लडकियों ने उनकी धुनाई कर दी। लडकियाँ प्रिन्सिपल से शिकायत करने जाते वक्त प्रिन्सिपल सो रहा था। यहाँ प्रिन्सिपल का सो जाना आज के राजनीतिज्ञों के मौन का संकेत है। बाबरी मस्जिद समस्या से सम्बन्धित आखिरी सुझाव अब तक नहीं ले रहा है। बल्लो का कहना है कि 'जनता क्या चाहती है, बल्लो कहता यह खबर हमें नेता देते हैं। असल में जब वे कहते हैं कि जनता मन्दिर चाहती है, तो उसका मतलब होता है कि नेता मन्दिर चाहते हैं। यह राजनीति है।'[27] यहाँ मन्दिर का मतलब है कुरसी। चाहे मन्दिर के नाम से नेता सब अपने कुरसी को दृढ करते हैं।

काशीनाथ सिंह कृत 'काशी का अस्सी' में बाबरीमस्जिद समस्या को उठाया गया है। इसमें व्यंग्य की दृष्टि से राजनीति से संबन्धित बातों को उजागर किया गया है। अयोध्या में आज तमाशा ही चल रहा है , इसका संकेत देखिए 'अगर प्रोग्राम बनाइए तो कारसेवा के बहाने हम भी तमाशा देखने अयोध्या चले'।[28] अयोध्या की तरह जाने वालों में अस्सी का कारसेवक भी है। वे राम के नाम लेकर नेताओं के उपदेश सुनकर कुछ सोचने के पहले अयोध्या को ओर जा रहे है। इस नारे देखिए 'उस शाम कारसेवकों के जत्थे का नेता नारे का पहला बन्द बोलता-

'रामलला हम आएँगे !'

जुलूस के बोलने से पहले ही इधर से राय साहब का लाउड्‌स्पीकर बोलता-

'मस्जिद वही बनाएँगे !'

उधर से, बच्चा बच्चा राम का !'

---

[27] निन्यानबे, रवीन्द्र वर्मा, पृ. सं. 185

[28] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ.सं. 27

इधर से, भजपा के कम का !'
वे जब तक सँभलें तब तक बेंच पर खडे होकर राय साहब चिल्लाते-
रामलला तुम मत घबराना
हम तुम्हारे साथ है !'[29] आज लोग नेताओं के आदेश सुनकर अपने गला तलवार के समक्ष रख देते हैं। वे क्या कर रहा हैं, यह सोचने के बदले कुछ कार्य करने लिए जा रहे हैं। नेता सब इन लोगों के बल पर अपने कुरसी का बल दृढ करता है।

छह दिसंबर 1992 को जिन कारसेवकों ने बाबरी मस्जिद का विध्वंस किया वह सिर्फ़ राज्य और संविधान पर ही आघात नहीं था। बाबरी मस्जिद पर पडी हर कुल्हाडी के पीछे अल्पसंख्यकों, यहाँ अल्पसंख्यक का मतलब है मुसलमान, उनके खिलाफ़ संचित घृणा का आवेश था। इसलिए कारसेवकों के मुख से निकलता 'जयश्रीराम' का उदघोष रामत्व की पावनता को विकृत करने का फ़ूहड मगर खतरनाक प्रयास लग रहा है। दूधनाथ सिंह का उपन्यास 'आखिरी कलाम' संघ परिवार के इसी कुकर्म का अख्यान है, उसकी पुनर्स्मृति भी। यह ठीक है कि बाबरी मस्जिद के विध्वंस में शामिल कुछ भाजपा नेता अपने धतकरम को छिपाने में लगे हैं। वे ऎसा इसलिए कर रहे हैं कि सत्ता में बने रहने में किसी किस्म का अवरोध या अडचन न हो। पर अल्पसंख्यकों के खिलाफ़ संघ परिवार की घृणा बढी ही है। छह दिसंबर 1992 की पुनर्स्मृति इसलिए भी जरूरी है कि कारसेवा प्रकरण की वजह से ही गुजरात में मुसलमानों के खिलाफ़ हिंसा का प्रचंड ताडंव हुआ, गुजरात में मुसलमानों के खिलाफ़ जो हुआ और जो हो रहा है वह छह दिसम्बर 1992 की अगली कडियाँ हैं। पर इस धारावाहिकता को रोकना अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

---

[29] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ.सं.29

यह उपन्यास इस बात को समझने में मदद करता है कि वर्षों पहले अयोध्या में जो कुछ हुआ उसके पीछे सोच की कैसे विकृति थी, परंपरा की कैसी संवेदनशील समझ थी और धर्म की कैसी अमानवीय व्याख्या थी। यह हिन्दी का पहला उपन्यास है जो बाबरी मस्जिद विध्वंस की जाँच पडताल करता है। इस उपन्यास का नायक तत्सत पाडे को उसका शिष्य सर्वात्मन इसके लिए निमन्त्रित करता है कि वह पुस्तकलय के उद्घाटन समारोह में एक भाषण दे दीजिए, विषय है, किताबें शक पैदा करती है। जगह तो अयोध्या है। उस समय अयोध्या में तनाव, विद्वेष और आशंका का माहौल था। इसी माहौल में आचार्य पुस्तकालय का उदघाटन करते हुए जो भाषण देते हैं उसके बारे में अखबारों के माध्यम से भ्रांतियाँ फ़ैलती हैं, उन्हें राम विरोधी, तुलसीदास विरोधी और अंत में एक कठमुल्ला घोषित कर दिया जाता है। इस उपन्यास के अयोध्याकाण्ड प्रकरण मे उपन्यासकार ने धर्म के संस्थाबद्ध रूप में निहित कुरूपताओं को भी उद्घाटित किया है। यानी एक तरफ़ विश्व हिन्दू परिषद और संघ परिवार है जो धर्म का रजनैतिक इस्तेमाल कर रहा है। संगठनों और सप्रदायों के भीतर और सत्ता को लेकर चलने वाली लडाइयाँ कुत्सित होती हैं। यानी एक तरफ़ तो संघ परिवारी धर्म केन्द्रित राजनीति का बीभत्स रूप है तो दूसरी तरफ़ धार्मिक संप्रदायों के भीतर रूढिवादी ताकतों का हिंसक रूप। लेखक इसी बात को रेखांकित करता है कि भले ही धर्म के भीतर निहित आध्यात्मिक चेतना मनुष्य की ज़रूरत हो, पर दुखद तथ्य यह है कि धर्म को पहले से ही दुरुपयोग होता रहा है और अब भी हो रहा है। उपन्यास से उदाहरण देखिए ‘धर्म का यह वह रूप है जो घोषित तौर पर कर्फ़्यू और देखते ही गोली मारे जाने के आदेश के बावजूद मस्जिद के मलबे के ढेर पर आरती के समय इतने लोगों क एक साथ ’जै श्रीराम’ बोले जाने

पर कोई रोक नहीं लगाता।'[30] धर्मोन्माद के वशीभूत अयोध्या से लौटे कारसेवकों द्वारा बाज़ार से लूट का प्रतिरोध करने पर नेता भाई जी की टिप्पणी है कि 'गडबड लोग है इधर भी कुछ भी कर सकते है राष्ट्र धर्म नही जानते, नीची जातियाँ है और उनमें धर्मचेतना का अभाव है'[31] यहाँ नेताओं के बीच का ब्राह्मण वाद की ओर संकेत है। आज रजनीति में रजनीतिज्ञ सब ब्राहम्ण वाद के पीछे हैं। यह बहुत चिन्तनीय विषय है। इस वाक्य को देखिए 'धर्म का माखौल है..... बस ...... वास्तुकला रहित इन मन्दिरों, गढियों, अखाडों, भवनों की कुरूप कालिख और लूट्पाट से इस जगह मुक्त करो.... हर एक गर्ब - गृह में सई - सांझ जो एक मुस्तंडा जजजुमानों को ताकता दिया बारे बैठा है.....उसकी एक वंशावली है रची हुई। उसमें जघन्य हत्याओं के सिलसिले है। चीत्कार करती श्रद्धालु भगतिने है.... अपने प्रेत संसार के भीतर सुबकती हुई, कमाई के ज़रिए है। माफ़ी है, वन है, चढावा है, मूर्ती के नीचे छीन - झपटकर लाया और दफ़नाया गया शैप्य भंडार है तो यह हाट तुम्हारे 'वेटिकन' की कल्पना की संकरी, संडास भरी गलियाँ, जिन पर तुम फ़िदा हो..... यह सत्ता का मात्र एक घिनौना खेल है, गेरुए रग में लपेटा हुआ, यह किसी भी कौम का सरीहन अपमान है।'[32] हम आज हमारे बीच में प्रचलित सांप्रदायिक फ़ाँसीवाद का यथार्थ रूप इस उपन्यास में देखने को मिलता है।

---

[30] आखिरी कलाम, दूधनाथ सिंह, पृ. सं. 389
[31] आखिरी कलाम, दूधनाथ सिंह, पृ. सं. 425
[32] आखिरी कलाम, दूधनाथ सिंह, पृ. सं. 273

घोटाला और हवाला

भारत में घटित एक राजनीतिक अनाचार था हवाला मामला। यह अठारह मिलियन यु.एस. डालर का अनाचार था। औपचारिक रूप से न करने वाले रुपये का विनिमय है हवाला। कश्मीर के आतंकवादी संगठन जैसे हिज़्बुल मुजाहद्दीन को पैसे देने की बात भी इस मामला से संबन्धित है। एल.के. अड्वानी, माधव राउ सिन्डिया, अर्जुन सिंह, वी.सी. शुक्ला, पी.शिव शंकर, मोति लाल वोरा, अजित पान्जा, शरद यादव, बलराम जाखर और मदन लाल खुराना आदि राजनीतिज्ञ इस मामले से संबद्ध नेता थे। मुख्य सुराख न होने के कारण यह मामला मामले के रूप में ही रह गया अर्थात ये सब नेताएँ इस मामले से बच गये। इससे संबन्धित बातें 'कलिकथा वाया बाइपास' में आयी हैं। यह इस प्रकार है कि '' माइकेल जैक्सन आया गया। लंबे बालों वाला 'यानी' भी ताजमहल के साथ चमककर गया। अब चाहिए था कुछ नया। चलो, अब मीडिया के पास बहुत दिन बाद जाकर कोई बडा सुयोग उपस्थित हुआ है। वरना घोटालों - हवालों को पढ - सुन - देखकर दर्शक पाठक उकता गये थे।''[33] यहाँ प्रसंग मीडिया से संबन्धित है। लेकिन इससे पता चलता है कि हवाला घोटाला की घटना भारत में हुई है। यह राजनीति के क्षेत्र में हुए अत्यन्त निन्दनीय मामला था। काशीनाथ सिंह का काशी का अस्सी में भी हवला घोटाला से सबन्धित एक वाक्य है। वाक्य देखिए '' जब जयललिता, हर्षद मेहता, नरसिंह राव, बोफ़ोर्स, झामुमों, लालू यादव आदि - आदि घोटालों और हवालों की चर्चा करते हुए मैने उनसे कुछ बाल - सुलभ जिज्ञासाएँ की'।[34] हमारे समाज में हवाला, घोटाला से ज़्यदात्तर पैसा बहाते है। आज राजनीति भ्रष्ट

---

[33] कलिकथा वाया बाइपास, पृ. सं.138

[34] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ. सं. 34

होती जा रही है। इस भ्रष्टाचर से निकलने के लिए हमें कुछ करना ज़रूरी है। नहीं तो नेता लोग अपनी सुख सुविधा के लिए पैसे खर्च करते रहेंगे। हवाला के रूप में आज भी अन्य देशों से पैसा भारत की ओर बह रहा है।

चुनाव

संसार का सबसे बडा जनतंत्र राष्ट्र है भारत। यहाँ जनता द्वारे चुने गये जन प्रतिनिधि शासन करते हैं। जनता का एक हक है अपने पसन्द के जनप्रतिनिधि को चुन लेना। इसलिए चुनाव करना जनता का हक है। गिरिराज किशोर का उपन्यास 'पहला गिरमिटिया' में दक्षिण आफ़्रिका के नेटाल में जनता के मतधान करने से संबन्धित प्रसंग है। नेटाल के काले लोग को चुनाव करने से इनकार कर दिया गया। मोहन दास ने इससे संबन्धित खबर अखबार से पढी। उस समय वहाँ वर्ण व्यवस्था से संबन्धित झगडा होता रहा था। चुनाव करना जनता का हक मानकर मोहन दास ने एक पत्र राज्ञी को भेजा। राज्ञी इससे से प्रसन्नता का अनुभव करती। जनता को चुनाव करने का हक मिल गया। गाँधी जी के प्रयत्न से उन लोगों को चुनाव करने की अनुमति मिल गयी। गाँधी जी ने जनता के हक को जानकर उनके प्रति इमानदार के रूप में खडे होकर प्रयत्न किया। दक्षिण आफ़्रिका में उस समय गोरों का शासन चल रहा था। परन्तु उन लोगों ने चुनाव को हक के रूप में स्वीकार किया था।

काशीनाथ सिंह कृत 'काशी का अस्सी' उपन्यास में समकालीन राजनीति के चुनाव से संबन्धित प्रसंग है। चुनाव के

समय की जनता के कार्यक्रम के बारे में बताया गया है उदाहरण देखिए 'जब लोकसभा चुनाव की अधिसूचना जारी हुई, जब नामाकंन और नामवापसी की तिथियाँ बीत गई जब पार्टियों के प्रत्याशी अपने झंडों और डंडों के साथ एक - दूसरे पर पिल पडे और जब स्टार प्रचारकों के हेलिकाप्टरों से आसमान धूसर हो उठाः

तब पूर्वांचल में एक आकाशवाणी हुई-

'पुरुवा बयार

और

रडरोवन

बडा असगुन होता है''

पेरंम्बतूर से सोनिया की उडान और अस्सी के आकाश से इस वाणी की उठान - दोनों का मुहूर्त लगभग एक था। थोडा आगे पीछे।

यह अस्सी 'स्लोगन सेंटर' है - सिर्फ़ बनारस का नहीं, पश्चिमी बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश का। यहाँ से जब - तब एक नारा उछलता है और पूर्वंचल की जबान बन जाता है देखते - देखते'।[35]

चुनाव प्रत्याशी चुनाव की सरगर्मियाँ आरभ होने से पूर्व ही जनता को अपने पक्ष में करना आरंभ कर देते हैं। उसे तरह तरह के सब्जाग दिखाये जाते हैं। ऐसे समय में ये नेता ऐसा कोई काम नहीं करना चाहते जिससे कि जनता प्रतिपक्षी के खेमे मे पहूँचा जाये। चुनाव के अवसर पर नेता सब चुनाव के प्रचार के लिए ज़्यादा पैसा खर्च करते हैं। हेलिकोप्टरों में जाकर जनता को संबोधन करते हैं। एक जगह नारा लगाते हैं लेकिन पूरे देश में उस नारा सुनाई पडता है। अपने झंडे के साथ अपने पोस्टरों को

---

[35] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ. सं. 36

दीवार में छपाकर अपने को ऊँचा दिखाने का प्रयत्न करता है। चुनाव के वक्त एक एम.पी. के लिए भोजन रहने के लिए जगह, गाडी सब मुफ़्त है। इसके लिए पैसा तो जनता का है। जनता के पैसे से वे सुख का भोग करते हैं।

चुनाव के खर्च से संबन्धित इस प्रसंग को देखिए 'किसी ने छेड दिया था कि जब चुनाव - खर्च की निर्धरित राशि पाँच लाख थी, तो जगह - जगह छोटी - बडी सभाएँ होती थीं, बैनर लगते थे, पोस्टर छपते थे, पर्चे बाँटे जाते थे, होर्डिग और कट - आउट लगते थे, रात - दिन लाउड्स्पीकर बजते थे। हर शाम जुलूस निकलते थे, बल राइटिंग होती थी, कारें और जीपें दौडती रहती थी और अब? अब जब पन्द्रह लाख कर दिया गया, तब कहीं कुछ नहीं। पता नहीं चल रहा है कि दो दिन बाद चुनाव है..... '।[36] इसके साथ काशीनाथ सिंह जनता की प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता है 'क्यों ? हम बताएँ क्यों ?' भीड से गरदन घुसेडकर सरोज बोले - ' इसलिए कि प्रचार की ज़रूरतें नहीं है' ।[37]

एक और प्रसंग देखिए 'राजस्थान, दिल्ली, मध्यप्रदेश, मणिपुर - इन चार प्रान्तों में चुनाव हो गए। हर पार्टी ने रुपए लेकर सीटें बेचीं। यह भी पता नहीं किया कि उसके घर के वोट भी उसे मिलेंगे या नहीं। इन्हीं में कुछ राष्ट्रीय क्या, अन्तर्राष्ट्रीय नेता भी थे जो अपनी ही विधानसभा के 180 बूथों में से 60 से अधिक के बारे में नहीं जानते ! लेकिन इन्हीं में से कई जीते भी क्योंकि इनकी नेतागिरी प्रेस पालिटिक्सवाली नेतागिरी है। ये अखबारों में अच्छा - से अच्छा बयान देते है।'[38] आज के ज़माने में नेता सब पैसे देकर सीट हासिल करते हैं। पैसे के बल पर वह

---

[36] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ. सं. 60

[37] काशीनाथ सिंह, काशी का अस्सी, पृ. सं. 60

[38] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ. सं. 91

कुछ भी करने के लिए तैयार है। अपने आसपास के बूथों से संबन्धित बातें उन्हें मालूम नहीं है। लेकिन वे लोग पैसे को खर्च करके जनता को हाथ में ले लेता है। अल्पज्ञ जन प्रतिनिधि का शासन सहन करने के लिए लोग मजबूर हो जाते हैं।

जनतंत्र राष्ट्र में चुनाव की आवश्यकता है। लेकिन आज जनतंत्र राष्ट्र में चुनाव ज़्यादात्तर पैसे के बल पर चलने वाला एक उत्सव बन गया है। संसद का सीट पैसे देकर या अन्य किसी रास्ते से हासिल करना एक फ़ाशन बन गया है। आज क्रिमिनल को भी सीट मिलेगी सत्ताधारियाँ सब क्रिमिनल की सख्या बढाने के लिए कई प्रकार का कार्य करता है। यह भी कहना जायज़ है कि चुनाव में जीते जाने वाले लोग राष्ट्र का शासन करते हैं, इनमें से कुछ लोग अपना शासन इमानदार होकर करते हैं, कुछ लोग पैसे मिलने के माध्यम के रूप में कुछ करते हैं।

सांप्रदायिकता और राजनीति

भारत में राष्ट्रीयता पनपने के साथ उन्नीसवीं शति के आखिर में सांप्रदायिकता प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होने लगी। इसने भारतीय जनता की एकता को धमकी दी गई। सांप्रदातिकता मध्यकाल में पनपने लगा था। यह सत्य नहीं है। जनता के जीवन का एक हिस्सा है संप्रदाय। साप्रदायिकता की जड अधुनिक साम्राज्य ,आर्थिक और राजनीतिक ढाँचे में है। आधुनिक राजनीति के फ़लस्वरूप साप्रदायिकता पैदा हुई। कुछ सांप्रदायों के बीच संप्रदायिक बोध एक साप्रदायिकता के बोध के रूप में परिवर्तित हो गया। मुस्लिम जनता के बीच राष्ट्रीयता का बोध होने का अवसर

नहीं था, उनके बीच राष्ट्रीय अवबोध आने को देर लग जाती थी। अठारह सौ सतावन में हुए गदर में हिदू और मुसलमानों ने एक होकर लडा था। इसके बाद अंग्रेज़ों ने मुस्लिम जनता के बीच वैर भावना जगाने का कार्य किया। भारतीय एकता को मिटाने के लिए फ़ूट डालो राज करो का नियम हमारे सम्मुख रख दिया। भारतीय राजनीति में सांप्रदायिकता को बढावा देने के लिए अंग्रेज़ों ने कार्य किया। इसके लिए अंग्रेज़ों ने मुस्लिम जनता के रक्षक का रूप धारण किया। शिक्षित जनता, ज़मीन्दार, भूप्रभू को अपने वश में लाने का कार्य किया। उन लोगों ने भारतीय जनता के मन में सांप्रदयिकता का बीज डाल दिया। साम्राज्य शासन हिन्दू, मुस्लिम, सिख आदि जनता को विभिन्न संप्रदाय के रूप में देखने लगा। बंगाल विभाजन, और भारत - पाक विभाजन इस सांप्रदायिकता के फ़लस्वरूप है।

'काले कोस' उपन्यास में साप्रदायिकता का चित्रण है। चार गाँव के लोगों ने एक समय सांप्रदायिकता की विषमता को झेली थी। पाकिस्तान नामक एक मुल्क बनने के लिए मुस्लिम जनता तैयार है। लेकिन जिन्ना को हिन्दुस्तान एक रहने की आकांक्षा है। कांग्रेस देश का बँटवारा नहीं चाहता है, लेकिन मुसलमान चाहते है तो बँटवारा हो जाये, यह निर्णय उन्होंने लिया था।

'कलिकथा वाया बाइपास' में बंगाल विभाजन से संबन्धित प्रसग है।' बात उन दिनों की है जब मुस्लिम लीग और कांग्रेस का मतभेद चरम पर पहूँच गया था और कायदे - आज़म जिन्ना ने सोलह अगस्त उन्नीस सौ छियालीस को सारे देश में 'डायरेक्ट एक्शन डे' का आह्वान किया था। बंगाल में मुस्लिम लीग की सरकार और उसका 'प्रधानमंत्री' वही सुहरावर्दी था जिसपर बंगाल के अकाल के समय रसमंत्री होने के कारण यह आरोप था कि उसकी लापरवाही के कारण लाखों लोग मौत के शिकार हुए।

'डायरेक्ट एक्शन डे' के दिन सुहरावर्दी ने सार्वजनिक छुट्टी घोषित कर दी - लग भग उसी तरह जैसे अब कलकत्ता की सरकार अपनी पार्टी द्वारा बंद आयोजित होने पर अनौपचारिक छुट्टी कर देती है। 'डायरेक्ट एक्शन डे' के दिन दोपहर को मुसलमानों की एक बडी रैली 'आक्टर्लोनी मान्यूमेंट' के पास सारे शहर के विभिन्न भागों से आकर होने वाली थी। जुम्मे का दिन था - मुस्लिम स्त्रियों और बच्चे भी सडक पर थे। जाहिर है सुहरावर्दी को कोई आशंका नहीं थी - आने वाली घटनाओं की भयंकरता की। शायद अपनी ताकत के मत में उसे हिन्दुओं की तरफ़ से कोई बडा खतरा नज़र नहीं आ रहा था। दूसरी तरफ़ हिन्दुओं में बंगाल में मुस्लिम लीग की सरकार होने का कारण आशंका और डर फ़ैला हुआ था। पिछले कुछ सालों से हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ जैसी सांप्रदायिक संस्थाएँ लाठी भांजना, अखाडेबाजी और लडने की शैलियों की शिक्षा को प्रोत्साहित कर रही थी। गली - मुहल्लों - पाडों में' तरुण व्ययम समिति, 'आर्य वीर दल', 'हिन्दू शक्ति संघ' जैसी संस्थाएँ हिन्दुओं को तैयार कर रही थीं।

सोलह आगस्त से कलकत्ते की सडकों पर शुरू हुए दंगे - या सही अर्थों में नागरिक युद्ध (सिविल वार) में - जिसमें साढे तीन हज़ार गंधाती लाशें सडकों से उठाई गईं और न जाने कितनी हज़ारों लाशें गंगा में प्रवहित कर दी गईं - कत्ल मुसलमानों का ज़्यादा हुआ। सरदार पटेल ने अपनी निर्मम शैली में इस घटना का उपसंहार इन शब्दों में किया - 'इसमें हिन्दुओं का पलडा भरी रहा'' ! कहते हैं कि दंगा छिडने पर सुहरावर्दी अंग्रेज अधिकारियों के पास बहुत दौडा, पर मिलिट्री पुलिस हाथ - पर - हाथ धरे शस्त्रों से लैस खडी रही। कत्लेआम चलता रहा और बडी मुश्किल से रात होने पर कर्फ़्यू का आदेश हुआ। इस दंगे की अवधि एक साल से अधिक दिनों तक जाती है, जिसमें कलकत्ता में लगातार

खून - खराबा होता रहा। सोलह अगस्त का ही परिणाम नोआखाली और बिहार के दंगे थे। इस दंगे को इतिहास में द ग्रेट कलकटा किलिंग के नाम से जाना जाता है। इसी 'किलिंग' ने देश और बंगाल के विभाजन पर एक तरह से मुहर लगा दी।'[39] यहाँ किलिंग को ग्रेट शब्द से अनावृत कर दिया गया है। एक प्रकार से बंगाल विभाजन को मुहर देने के लिए अपने राजनीतिज्ञों का हाथ बडा है। बंगाल विभाजन के समय का एक और प्रसंग को देखिए 'एक बार जितनी लूट- पाट मार - काट, हत्याएँ बलात्कार होने हो, हो जाएँ। कुछ पाने के लिए कुछ खोना पडता ही है। गाँधीजी क्या कर लेंगे उनके नोआखली जाते समय कलकत्ता रुकने के दिनों में भी तो हत्याएँ होती रही थी। आखिर इस भावुकता से क्या होनी - जानी है कि इस देश के टुकडे नहीं होने चाहिए। अमृत बाज़ार पत्रिका ने उन्नीस सौ सैंतालीस के अप्रैल के महीने में लोगों के मंतव्य जानने के लिए वोट लेकर यह रपट दी थी कि सौ में से साढे अठानबे प्रतिशत लोग चाहते है कि बंगल का विभाजन हो जाए'।[40] इससे यह मालूम होता है कि लोग बीच बीच में आने वाले दंगों से भयभीत होकर विभाजन तो चाहते थे। इससे अनेक अनाचार, लूट पाट, बलात्कार होते रहे थे। लेकिन गाँधीजी इस विभाजन को मंजूर नहीं थे। संप्रदाय के नाम राष्ट्र दो भागों विभजित होना उन्हें पसन्द नहीं था।

भारत में धर्म पर आधारित राष्ट्रीयता एक समस्या बन गयी है। आज आदमी की पहचान बन गया है मज़हब। इस मज़हब के नाम पर भारत और पकिस्तान का विभाजन संभव हुआ। 'कितने पाकिस्तान', 'आखिरी कलाम', और 'काशी का अस्सी' उपन्यासों का मुख्य सरोकार सांप्रदायिकता और मनुष्य को विभाजित करने वाली राजनीतिक, ऐतिहासिक परिस्थियों के प्रवाह मे प्रवहित होने

[39] कलिकथा बाया बाइपास, अलका सरावगी, पृ. सं. 165
[40] कलिकथा वाया बाइपास, पृ. स. 175

वाले मनुष्य की विडंबनाओं का रचनात्मक रूपान्तरण है। 'काशी का अस्सी' में राजनीति की रचना बिल्कुल आज के संदर्भ में है। नसिरा शर्मा के उपन्यास में भारत - पाक विभाजन के बाद के समाज का चित्रण है। उस समय के राजनीतिज्ञों के उपदेश के फ़लस्वरूप भारत और पाकिस्तान का विभाजन करने का माहौल रूपायित होता था। भारत की स्वतंत्रता के पूर्व एक विशेष तबके और विचारधारा के मुसलमान नेताओं ने आम भारतीय मुसलमान जनता को समझा दिया कि नया बनने वाले पाकिस्तान उनके सपनों का देश होगा। उनका समझ यह है कि भारत के बहुसंख्यक हिन्दू जनता उनके लिए खतरा हो जाएगा। यह मुस्लिम धर्म और संस्कृति के लिए खतरा हो जायेगा। परिणाम स्वरूप पकिस्तान बनने के बाद भारत से मुसलमान पाकिस्तान की तरफ़ जाने लगे। इसके बाद मुस्लिम जनता ने अनेक कठिनाइयों का सामना किया। 'ज़िन्दा मुहावरे' इस स्थिति से पैदा हुई एक मानवीय चेतना का अंकन करता है। आज भी पाकिस्तान में अवैद के रूप में रहने वालों की संख्या अधिक है। भारत और पाकिस्तान में आते जाते रहे मुसलमानों को अधिक कठिनाइयों का सामना करना है। यह न अन्त होने वाले सिलसिले का कारण तो मनुष्य का अविवेक होगा या राजनीज्ञों का सजिश होगा।

'कितने पकिस्तान' का एक प्रसंग को देखिए 'वह इस्लाम और वैदिक धर्म की मिली - जुली सभ्यता है..... यह ठीक है कि मैने ही सन 43 में सिन्ध असेम्बली में भारत विभाजन का प्रस्ताव मुस्लिम लीगी सदस्य के रूप में रखा था पर दो साल बीतते - बीतते सन 45 में ही पाकिस्तान की नफ़रत की फ़िलासफ़ी मेरी समझ में आ गयी थी.... मुझे शक होने लगा था कि जो जिन्ना भारत में आज हिन्दुओं से नफ़रत करने की राजनीति चला रहे थे, वह कल हम सिन्धियों से भी नफ़रत करेंगे। सन, 1947 में इसलिए मैने बहुत बुझे मन और आशंकाओं के बीच पकिस्तान

बनाने का स्वागत किया था......'[41] एक रजनीतिज्ञ के साजिश के फ़लस्वरूप एक पाकिस्तान का जन्म हुआ। लेकिन यह भी कहना है कि एक शख्स के मन में उठने वाला चितन एक राष्ट्र को तबाह करने योग्य है। एक और प्रसंग को देखिए 'हाँ ! वो विरासत है ही नहीं ..... वह तो मज़हब के नाम पर लूटा गया सिर्फ़ एक इलाका है, जिसे मुल्क कहा गया। यह मुल्क तो टूटेगा , टूट कर रहेगा.....इसे दुनिया की कोई ताकत नहीं बचा सकती......जिन्ना की कमनज़री माउटबाटन की साजिश, धर्म परिवर्तित शायर इकबाल की कुंठाओं की वजह से वह सारा खून खराबा हुआ। जिन्ना अपने आपको तवारीख में अमर करना चाहता था, उसकी हवस किस कीमत पर पूरी हुई है, वह सबके सामने है'।[42] इस वाक्य में जिन्ना की कमनज़री और माउट्बाटन की साजिश की बात व्यक्त है।

क्षुद्र राजनीतिक स्वार्थ मानवता के लिए घातक होते है, लेकिन विडंबना यह है कि हमारे राजनेता इसकी चिंता नहीं करते। कमलेश्वर ने मुहम्मद अली जिन्ना के माध्यम से इस वास्तविकता का उद्घाटन किया है - 'कोई सम्राट अपने फ़ैसलों को कई बहानों और तरीकों से बदल सकता है। वह प्रधानमंत्री, सिनेट या सलाहकारों का सहारा लेकर अपनी इज़्ज़त बचा सकता है। लेकिन जनता के लीडरों की जो नई जमात आई है, वह अपने सार्वजनिक उद्रेक में जो कुछ कह जाती है, उन स्थापनाओं से पीछे नहीं हट सकती.....यही मोहम्मद अली जिन्ना की विडंबना और त्रासदी है। उन्होंने एक बार सार्वजनिक तौर पर इंडिया के विभाजन की माँग ली, तो फ़िर उनका मन चाहे जितना पछ्ताता रहे, पर वे उस माँग से पीछे नहीं हट सकते.... हटेंगे तो वे अपना नेतृत्व को देंगे।.....किसी नेता की यह गवारा नहीं होता। जनता

---

[41] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 154

[42] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 155

की भावनाओं को भडका कर पैदा किए गये आन्दोलनों की यही ताकत और कमजोरी है.... एक बार जो कह दिया गया, वह बाद में अनुचित और गलत लगने पर भी उसे बदला नहीं जा सकता। अगर बदला गया, तो रूढ और घटिया ताकतें परिवर्तित विचार की दुश्मन बनकर सामने आ जाती है।'[43] विभाजन सम्बन्धी माउटबेटन का वक्तव्य को देखिए 'आखिर मैने उन्हें वही दिया है, जो उन्होंने माँगा है..... और मैने विभाजन की ज़रूरत को पं.नेहरू, सरदार पटेल, आचार्य कृपलानी से मंजूर करवा लिया है। इतना ही नहीं, विभाजन से जिन सिखों को सबसे ज़्यादा तकलीफ़ और नुकसान उठाना पडेगा, उनके नेता सरदार बलदेव सिंह को भी मैने अन्ततः सहमत कर लिया है, तो अब उन्हें पकिस्तान के निर्माण के ऐतिहासिक अवसर से पीछे नहीं हटना चाहिए......विभाजन को मंजूर करना चाहिए!'[44] लेकिन इस विभाजन को गाँधी जी मज़ूर नहीं है।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास का एक और प्रसंग को देखिए 'उसी सन सैंतालीस वाली फ़सल से यह ज़हर जन्मा है हुज़ूर ! जो हिन्दू को ज्यादा बडा हिन्दू और मुसलमानों को ज्यादा बडा मुसलमान बनाता है'।[45] सांप्रदायिकता अब भी अपने हमारे समाज में विद्यमान है, इसकी ओर यह वाक्य इशारा करता है। सैंतालीस में बोया ज़हर आज भी अपनी श्रेष्ठता के साथ सफ़र जारी करता रहता है। असल में सांप्रदायिक भावनाओं के राजनीतिकरण के पीछे ब्रिटिश शासन था।

आज भारत की सबसे बडी समस्या काश्मीर सम्स्या है। धर्म के नाम पर भारत और पाकिस्तान का बँटवारा हुआ। आज

---

[43] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 53
[44] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 54
[45] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 69

पाकिस्तान कश्मीर को अपने मुल्क के साथ जोडने के लिए अनेक कार्य करता आ रहा है। यह भी धर्म के नाम पर है। आज भी यह समस्या जारी है। पाकिस्तान के घुसपैठिए कश्मीर में घुसपैठ कर रहा है। इस समस्या से लेकर सत्ताधारियों के बीच बहस हो रहा है।

कमलेश्वर कृत 'कितने पकिस्तान' में कश्मीर समस्या को लेकर आनेवाले चरित्र का चित्रण है। एक कश्मीर पंडित ने अकर अदीब की अदालत में दस्तक दी। वह बहुत थका हुआ आदमी था। वह अपनी तकलीफ़ को अदीब के सामने पेश करने के लिए आया था। आज धर्म के लिए लोग मर मिटते हैं। संप्रदाय के नाम पर जब विभाजन हुआ तब से यहाँ निन्दनीय बातों की सिलसिला का आरंभ हुआ। धर्म के नाम पर पाकिस्तान जनता कश्मीर को उकसा रहा है कि अलग देश हो जाओ। इसके लिए आतंकवाद का प्रोत्साहन दे रहा है। कश्मीर के मुसलमानों को अपने साथ लेने के लिए पकिस्तान अनेक प्रकार का कार्य करता आ रहा है। 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास का मुख्य मकसद भी यह है कि विभाजन से हमेशा जनता को अतीव दुःख उत्पन्न होता है, इसलिए इससे देश को और जनता को बचाना है। संसार में जहाँ जहाँ विभाजन हुआ वहाँ वहाँ कभी भी समाप्त न होने वाली समस्याएँ ही हैं। इसलिए कभी भी कहीं भी पाकिस्तान न बनने दे। यह विभाजन राजनीतिज्ञों की संकुचित एवं कपट मानसिकता से होता रहता है।

विभाजन

भारत विभाजन वर्तमान शताब्दी में भारत की ही नही, अपितु विश्व इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना है। संसार के इतिहास में ऎसा उदाहरण नहीं मिलता, जब वर्षों से मित्रों की भाँति रहते हिदू मुस्लिम सिर्फ़ मज़हब के नाम दो मुल्क बनने लगे। यह विभाजन धर्म के नाम पर पकिस्तान बनने है तो दूसरी तरफ़ विश्व में अलग अलग पाकिस्तान बन रहे हैं।

हिन्दुस्तान क आखिरी वयसरय माउटबेटन ने दिल्ली में वायसराय हाउस में निजी शयनकक्ष मे अपनी पत्नी एड्विना माउटबेटन से कहा - 'तुम विभाजन के सताये, बरबाद हुए, मारे गए लोगों की हिमायत मत करो..... सम्राज्यों के इतिहास में यह मामूली घटनाएँ है ..... और सुनो एडविना माउटबेटन ! तुम अब एड्विना एशले नहीं हो ...... तुम इंडिया के वायसराय और गवर्नर जनरल की ब्याहता बीवी हो......इसलिए ब्रिटिश साम्राज्य की परंपराओं का पालन करो..... शरणार्थियों की तकलीफ़ और हमारे और हमारे फ़ैसले के तहत बनाए गए पाकिस्तान की सरहद पर जो नरसंहर हो रहा है, उस पर आँसू बहाना बन्द करो ..... ब्रिटिश साम्राज्य आँसुओं के हस्तक्षेप को मंजूर नहीं करता'।[46] इस प्रसंग से मालूम होता है कि इतिहास के पन्नों के एक निन्दा योग्य बात का समारंभ संभव शुरू होने वाला है। विभाजन, भारत मे घटित हो चुकी और उसके नाम पर समाज में हो रहे साप्रदायिक कोलाहल की शुरुआत है। यहाँ माउटबेटन विभाजन को मज़ूर करने के लिए तैयार हो गया है। पत्नी से उसका उपदेश है कि अपने साम्राज्य की परंपराओं की रक्षा करना है। उस समय भी माउटबेटन अपने साम्राज्य की परंपरा से परिचित है, उसकी

---

[46] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 52

परंपरा दूसरों को अहित करना है। विभाजन के विनाश देखकर आँसू बहने के लिए साम्राज्य के पास समय नहीं है यह केवल एड्विना को नहीं बल्कि सारे संसार को मालूम है। क्यों कि इन्हीं लोगों ने ही इस विभाजन का बीज हमारे बीच बो दिया था। फ़िर बीज बोने के बाद आँसू बहाने के लिए समय कब मिलेगा ? रोने वाला तो हम हैं क्यों कि इसका फ़ल हम भोग रहे हैं, हमारे बच्चे भोग रहे हैं, आने वाली पीढी भी भोगेगी। ब्रिटिश साम्राज्य ने अपने साम्राज्यत्व को यहाँ स्थापित करने के लिए कई कोशिशें भी की थीं। उन लोगों ने अपने धर्म को पकडकर, यहाँ के लोगों के मन में विभाजन का बीज बो दिया। इसके साथ ही भाषा को भी विभाजन के एक अस्त्र के रूप में प्रयुक्त किया गया। मुगल शासन काल से लेकर बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तक राजकाज, ज्ञान, विज्ञान और अदालत की भाषा फ़ारसी और उर्दू रही, यद्यपि इन भाषाओं ने कभी जन भाषाओं और क्षेत्रीय भाषाओं का रूप नहीं लिया। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की एक मूल धारा हिन्दू राष्ट्रीयता रही जिसके पहले उवाल ने उर्दू फ़ारसी भाषाओं को मुस्लिम साम्राज्यवाद की धरोहर के रूप में देखा और हिन्दू राष्ट्रीयता को अभिव्यक्ति के लिए एक नयी भाषा संस्कृत निष्ट हिन्दी के विकास का निश्चय किया। इसके बाद मुसलमान राष्ट्रीयता के झंडे के रूप में उर्दू भाषा को पूरे हिन्दुस्तान में उठा लिया जैसे जैसे हिन्दू राष्ट्रीयता और हिन्दी भाषा का प्रसार भारतीय राष्ट्रीयता के नाम पर होने लगा, वैसे वैसे उर्दू भाषा और मुस्लिम राष्ट्रीयता की संकीर्णता और सांप्रदायिकता भी बढने लगी और संपूर्ण हिन्दुस्तान के मुसलमान उर्दू भाषा को अपने अस्तित्व और अस्मिता का प्रश्न मानने लगे। बडी सूक्ष्मता से, दो विभिन्न जातियों के भाई चारे और एकात्म संबन्धों की जडों को विषाक्त किये जाने लगा और सांप्रदायिकता के बीज बडी चतुराई से बोये गये। इस प्रयत्न में अंग्रेज़ी की कूटनीति के साथ

तत्कालीन भारतीय राजनीतिक वातावरण भी उत्तरदायी था। भाषा के बीच में हुई संकीर्णता विभाजन का एक कारण बनायी गयी।

विभाजन को मंज़ूर करने वालों में ब्रिटिश सत्ताधारी माउटबेटन शामिल है तो भारत में उसे और अधिक तीक्ष्ण बनाने वालों में मुहम्मदाली जिन्ना है। भारत में मुस्लिम लीग 1906 में स्थापित हुआ। उसका नेता है मुहम्मदाली जिन्ना। सबसे पहले यानी केबिनट मिशन प्लान को नामंज़ूर करते हुए जिन्ना ने हिन्दुस्तान की एकता के प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। उन्हें विभाजन चाहिए था और विभाजन के सिवा और कुछ नहीं। पहले विभाजन उन्होंने चाहा था लेकिन बाद में पछताते रहे। अन्त में वे माँग से पीछे नहीं हट सकते, हटेंगे तो वे अपना नेतृत्व खो देंगे। किसी नेता को यह गवारा नहीं होता। नेतृत्व खो देने के लिए कोई नेता तैयार नहीं होगा। ज़्यादात्तर नेता लोग स्वार्थता वश देश के लिए कार्य करते हैं। लेकिन गाँधीजी भारत - पाक विभाजन को मंज़ूर नहीं करते। उन्होंने विभाजन नहीं चाहा। इसका संकेत कमलेश्वर कृत 'कितने पकिस्तान' में है। यह भी कहना जायज़ है कि हिन्दू मुस्लिम संबन्धों में कटुता उत्पन्न करने के लिए कुछ नेताओं की स्वार्थ भावना भी जिम्मेदार रही है।

आधुनिक संदर्भ में दुनिया के सब राष्ट्र टुकडों में बाँट रहा है। युगोस्लाविया, इराक, अफ़गानिस्तान, टुकडों में बँटे रशियन फ़ेडरेशन और खुद पकिस्तान जैसे देशों में अलग अलग पकिस्तानों की माँग हो रही है। इसलिए यह कहना समीचीन है कि विगत समस्त विभाजनों का नाम पाकिस्तान है चाहे वह धार्मिक हो या राजनीतिक हो। उदाहरण देखिए यह युगोस्लाविया से संबन्धित वाक्य है 'यह नियंत्रण राजनीति क्या है ? अदीब ने दस्तक से पूछा। दस्तक ने उत्तर दिया अदीबे आलिया ! नियंत्रण द्वारा आत्माओं को तोडा जाता है..... फ़िर उन्हें विभाजित किया

जाता है.... उनमें सास्कृतिक प्रतिरोध की शक्ति विखंडित की जाती है और तब बाज़ारवादी जोंकें उस विभाजित कौम का सारा रक्त चूस लेती हैं। खंडित संस्कृति के श्मशानों में तब उत्सव के बाज़ार स्थापित होते हैं......धर्म और इतिहास शोषकों के हाथों में खिलौना बन कर नाचते - गाते, जश्न मनाते अपने ही विभाजित अंग के शत्रु और अपने विनाश का कारण बन जाते हैं..... बडी सभ्यताओं को तोडकर उन्हें बन्दी बनने के लिए विभाजन का यही रास्ता उन असभ्य अपसंस्कृतियों ने चुना है.... जिनके खेतों में बारूद और बन्दूकें उगती है..... इसी के चलते कोसोवो अपनी लाखों संतानों की मृत्यु देख चुका है और लाखों - लाख लोगों के विस्थापन के कारण वीरान हो चुका है। लाखों शरणार्थी इधर - उधर भटक रहे है..... ’[47]

पाकिस्तान बनने के बाद अनेक मुसलमानों की ज़िन्दगी बरबाद हो गयी। सलमा के चरित्र के माध्यम से यह बताना लेखक का लक्ष्य है। उदाहरण देखिए ‘इस्लाम में हर कुदरती ज़रूरत के लिए जगह है, लेकिन जब मज़हब को सियासी फ़ायदे के लिए नफ़रत में बदल जाता है, तो एक नहीं, तमाम पाकिस्तान पैदा होते हैं। मेरी बच्ची ! तुम्हारी ज़िन्दगी को इस गलत विभाजन ने तोड दिया है, क्यों कि इन लोगों ने एक मज़हब के तहत एक कौम, एक मुल्क और एक तहजीब को तक्सीम किया है’।[48]

विभाजित होती परंपरा के लिए एक और उदाहरण देखिए ‘ दुनिया की साँसों पर एक - एक लमहा इतना भरी पड रहा है कि बयान से बाहर है....... अफ़्गानिस्तान कब्रिस्तान बन गया है..... उधर लेबनान से पाकिस्तान का मुर्तजा भुट्टो खुद अपने मुल्क को खून से नहला देने की पेशकश कर रहा है। वह अपने वालिद की

---

[47] कितने पकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 45

[48] कितने पकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 136

सियासी विरासत में अपनी बहन बेनसीर से बँटवारे की माँग कर रहा है...... उधर इराक में कुर्द अपना पाकिस्तान बनाने की जद्दोजहद कर रहे हैं। गोरी ताकतों ने कुवैत को ईराक से आज़ाद करवा दिया है। सद्दाम हुसैन ने कुर्दों के ठिकानों पर हवाई हमले किए है..... और आप पूछ रहे हैं कि ऐसा क्या हो - गुज़रा है? अफ़गानिस्तान में लाशें ही लाशें बिछी हुई हैं...... '।[49] इस्लाम के नाम पर अफ़गानिस्तान कब्रिस्तान बन चुका है। वहाँ लाखों करोडों लोग बँटवारे के बहाने मारे गये। इससे पूरा मुलक तबाह हो चुका। एक और प्रसंग को देखिए ' धर्म के नाम पर तहजीबें भी खूंखार और रक्तजीवि हो जाती है...... यही हम सिन्धियों के साथ हुआ है....हम सिन्धी सदियों से स्वाधीन रहे हैं...... हमारी जुबान, संस्कृति, फ़लसफ़ा और सभ्यता इन पाकिस्तानियों से अलग है ! हम चार करोड सिन्धियों को आत्म निर्णय का अधिकार चाहिए ! हमारे साथ सन 1947 में दंगा हुआ है..... पढिए पाकिस्तान के उस घोषणा - पत्र को, जो सन 1940 में लाहौर में जारी हुआ था। इसमें हम सिन्धियों को पूरी स्वायत्तता देने का वादा है लेकिन पकिस्तान बनने के बाद सियासत के इरादे बदल गए। कठपुतले हुक्मरानों और सैनिक तानाशाहों ने वह वादा पूरा नहीं किया। इसी तरह और वादे ने निभाने की वजह से पाकिस्तान टूटा और बंग्लादेशियों ने अपना पाकिस्तान बना लिया ! अब हम अपना सिन्ध आज़ाद चाहते हैं...... सिन्धी मुसलमानों और सिन्धी हिन्दुओं के लिए, क्यों कि हमारी भाषा, इतिहास, सस्कृति और सभ्यता एक है'।[50] विभाजन का एक और उदाहरण 'जी हाँ हुज़ूर ..... अब ऐसे पागल लोग इस दुनिया में नही मिलते .... अगर मिलते होते तो सोवियत यूनियन नहीं टूटता, युगोस्लाविया में बोस्निया के मुसलमानों का कत्लेआम न होता, सोमालिया में लोग और बच्चे बरसों बरस अकाल से न मरते ! और चार सौ फ़िलस्तीनी

[49] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 146

[50] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 154

इसराइल की सरहद पर भूख, ठंड और मौत का इन्तजार न कर रहे होते.....उन्हें इसराइली इस तरह मौत के मूँह में न खदेड देते!'[51] यहाँ लेखक की संवेदना व्यक्त है। लोग धर्म और सत्ता के पीछे दौडकर पागल हो गये हैं। इस पागलपन से मुक्त होकर रहने के लिए लोग तैयार नहीं हैं। एक और प्रसंग देखिए 'हम बोस्निया में भूखे मर रहे हैं, हमारी औरतों के साथ लगातार अत्याचार और बलात्कार हो रहे हैं, हमारे बेटे घरों से निकाल कर मारे जा रहे है.... हमें बेघर और बेइज़्ज़त किया जा रहा है और सारे देश खामोश है.... बोस्निया का एक मुसलमान मुर्दा अपने मुल्क की हालत बयान कर रहा था.... - लेकिन अब हालत कुछ ठीक है। यूगोस्लाविया के केओट, सर्ब और मुसलमान एक साथ नहीं रहना चाहते है..... इसलिए सबने विभाजन मंजूर कर लिया है ! भवानी सेन गुप्ता ने बडी तकलीफ़ से कहा - यूगोस्लाविया की तीनों जातियाँ समस्त क्षेत्र का बँटवारा करके, स्वतंत्र देश के रूप में अलग अलग रहने को राजी हो गई हैं।'[52] यही है हमारी आज की हालत सब कहीं जनता बँटवारा चाह रही है। एक प्रकार की अपसंस्कृति के प्रभाव से लोग इस प्रकार के कार्य करते आ रहे हैं।

जीवन मूल्य हर युग में बदलते हैं किन्तु विभाजन ने हमारे मूल्यों और विश्वासों की जडें हिला दी। विभाजन के बाद वर्षों में बीतने और आने वाले दो युगों का निरन्तर संघर्ष दिखाई देता रहा है। विभाजन के बाद परिस्थितियाँ तेज़ी से बदलने लगीं। नई पीढी ने अपने को ऎसे क्राइसिस में पाया जिसमें एक तरफ़ तो जीवन के प्रति उसकी प्रतिक्रियाएँ बहुत तीव्र और संवेदनाएँ बहुत गहरी थी, पर दूसरी ओर अभिव्यक्ति के परंपरागत संस्कार बिल्कुल खोखले और कृत्रिम जान पडते थे।

---

[51] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं.107

[52] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं.180

'धर्मान्धता या सत्तालोलुपता के कारण की गई हिंसा, लूट - पाट और अत्याचारों के विवरणों को जुटाकर और उन्हें समकालीन परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करके कमलेश्वर ने 'कितने पकिस्तान' में बार - बार यह बताने की चेष्टा की है कि किसी शासक की छोटी सी भूल भी भावी इतिहास को प्रदूषित कर सकती है और उसके कारण हिंसा का ऐसा दौर शुरू हो सकता है, जो कई पीढियों तक थमने का नाम ही नहीं लेता।'[53] उदाहरणार्थ सन 1947 में अगर तत्कालीन अंग्रेज़ वायसराय माउंटबाटन भारत के विभाजन का अनुमोदन न करता तो, न तो पाकिस्तान बनता, न ही बंग्लादेश और न ही भारत के विभाजन के बाद हिंसा या पाकिस्तान द्वारा तोपे गये युद्धों की हिंसा को झेलना पडता। एक सत्ताधारी के निर्णय से हमारा भावी इतिहास प्रदूषित होने लगा है।

हमारे समाज में शासन की एक लंबी परंपरा विद्यमान थी। यह राजाओ, सम्राटों, उपनिवेश शासनों से लेकर आधुनिक जनतंत्र तक आकर खडा हुआ है। समकालीन हिन्दी उपन्यास ठीक रूप से इस परंपरा का प्रस्तुतीकरण करता है। हमारा समाज बदलता रहा है। बदलती परिस्थिति के पीछे केवल सत्ता स्वार्थ होती है। जिन्हें न देश का ख्याल है न जनता की, जिन्हें केवल अपना ही ख्याल मुख्य है। राजनीति ने अवसरवाद को बढावा दिया है। इस अवसरवाद के पीछे चलकर राजनेता स्वार्थता की पूर्ति करता रहता है। इसका प्रमाण परंपरा से हमारे समाज में मौजूद है। धर्म को प्रमुखता देकर सत्ता को बनाये रखने लिए नेता सब मानवीय मूल्य भूलते जा रहे हैं। इस परंपरा को तोडने के लिए कुछ राजनेता कार्य कर रहे हैं, लेकिन यह फ़लसिद्ध होगा या नहीं यह भविष्य की बात है।

---

[53] समीक्षा जनवरी मार्च 2001, पृ. सं. 23

सम्कालीन हिन्दी उपन्यास में शिल्प का इतिहासबोध

उपन्यास की सफ़लता उसके संरचना पक्ष पर केन्द्रित है। संरचना पक्ष में कथानक का गठन, पात्रयोजना, संवाद, थल - काल एवं भाषा शैली का उचित समावेश होना चाहिए। उपन्यास में चिरंतनता और चिरवर्तमानता प्रदान करने के लिए इन तत्वों का बडा स्थान हैं। थल - काल के अनुसार विषय का गठन किया जाता है। तो उस उपन्यास में भाषा एवं शैली भी काल के अनुसार एवं पात्रों के अनुसार बुनती जाती है। इसलिए समकलीन उपन्यास के इतिहासबोध के अध्ययन के संदर्भ में उसके शिल्प का अध्ययन भी अनिवार्य है।

साहित्यकार को अपने पूर्व के और अपने समय के साहित्य से ज़रूर प्रभाव मिलता है। पुराण चरितों पर हर युग में नये नये काव्य रचे गये हैं। यह इसलिए है कि पुराण रूपकों का नव - नव निरूपण होता रहेगा। राम कृष्ण को जीवित रखने के लिए हमें उनका नया नया संस्करण प्रस्तुत करना चाहिए, इस विचार से वे रचनाएँ नहीं हुई हैं बल्कि एक भीतरी अनिवार्यता और ऊपरी अनायसता में से वैसा होता गया है। अर्थात जो अमर है वह अमर है और केवल भाषा और शैली के कारण मर नहीं जाने वाला है। नयी भाषा और नया मुहावरा स्वयं अमर होने की राह में उन अमर आख्यानों को अपनाता चले, यह स्वाभाविक है। समय और युग को अपने ही आत्मलाभों की भाषा में सॊचना चाहिए। उस विचार में से ही अधिकांश यह घटित होने वाला हैं कि अतीत पुनरुज्जीवित हो जाय और प्राचीन प्रतीक नये नये रूपों में प्रस्तुत और प्रतिष्ठित होते जायें। अतीत से वर्तमान का सुगठित भाव ही पर्याप्त है तब

सनातन और श्रेष्ठ होकर मूर्त हुआ था, वह वर्तमान के मनोनुकूल होकर भी हमारे सामने प्रत्यक्ष हो और भविष्य के लिए भी सुरक्षित रहता चला जाय। मनुष्य की और काल की अखण्डता में से यह अनायास ही घटित होता है और निरन्तरता से बचा नहीं जा सकता।

कथानक का इतिहासबोध

उपन्यास कला में शिल्प की दृष्टि से कथानक एक आवश्यक तत्व माना जाता है। हज़ारी प्रसाद द्विवेदी का उपन्यास 'अनामदास का पोथा' की कथावस्तु उपनिषद्कालीन समाज से ली गयी थी। घने जंगल में कुटी बनाकर रिक्व का बेटा रैक्व उसमें रहने लगा । उसका पिता बहुत ज्ञानी था। उसकी माँ वह पैदा होने के बाद प्रस्थान कर गयी थी, इसलिए वह स्त्री के बारे में कुछ नहीं जानता था। जंगल के कन्द मूल खाकर वह जीवित रहता था। उसको मिलने केलिए अनेक लोग आते थें। एक दिन उसको अनुभव हुआ कि इस समस्त जगत में जो चैतन्य बनाया हुआ था, वह वायु थी। उसी दिन वह स्नान करने के लिए नदी में आता था तब बहुत प्रचंड आँधी आती थी। मूसलाधार पानी में फ़ँसकर वह दिशा भूल जाता था। किनारे आकर देखा तो एक बैलगाडी वहाँ पडी थी। बैल गायब हो गये थे, गाडीवान मरा पडा था। उस गाडी के नज़दीक एक जीव पडा हुआ था। वह राजा जानश्रुति की कन्या जाबाला थी। रैक्व को उस समय मालूम नहीं कि वह जीव एक स्त्री थी। वह उसे बार बार देखता रहा, उसके कपडे सूखाने लगा। तब जाबाला उठ गयी। दोनों के बीच लबी देर तक बातचीत हुई थी। तब से रैक्व को स्त्री लिंग और पुलिंग

का ज्ञान होता था। वहाँ से जाने के बाद वह उसे शुभा कहलाने लगा। तब से उसका मन उदास था। वह रथ को खींचकर उस स्थान पर रखता था जहाँ राजकुमारी बैठी थी और उसी की छाया में बैठकर चिन्तन करने लगे किन्तु उसकी पीठ की सनसनाहट बनी रही उसे वह प्रायः खुजला लेता था।

रैक्व अपने गुरु, शुभे अर्थात जाबाला की खोज के लिए निकल जाता था। भूख प्यास से व्यकुल रैक्व नदी में स्नान करने जाता था, तब वह औषस्ती ऋषी की वृद्धा पत्नी ऋतंबरा सूर्य को अर्घ्य देती हुई दिखाई देता था। ऋतंबरा रैक्व को आश्रम में लायी गयी। उसके शरीर में बहुत मैल जम गया था। पहली बार माँ के हाथ से बनाया भोजन खाता था, उससे माँ का स्नेह प्राप्त करने लगा था। वह उसे आचार व्यवहार से परिचित कराकर हुई ऋषि औषस्ति के पास ले जाती थी। ऋषि से उसे तत्वज्ञान के साथ अपनी साधना की त्रुटि के बारे में पता चलता था। वह उससे प्रभावित होता था। इस के बाद वह जाबाला की गाडीवान की पत्नी से मिलता था। वह स्त्री कृशकाय थी, और उसका बालक मृत्यु के नज़दीक था। रैक्व दोनों की सहायता करता था, और दोनों को आश्रम में ले जाते थे। स्त्री की कथा सुनकर उसे सबसे पहले क्रोध आ जाता था, बाद में पता चलता था कि वह स्त्री असहाय थी इसलिए वह उसे अपनी बहन समझता था।

रैक्व को न देखने से जाबाला का स्वास्थ्य खराब हो जाती थी। पुत्री की अवस्था देखकर राजा बहुत दुखी होने लगा। उसे ठीक करने के लिए वे विभिन्न प्रयास करते थे। उस समय अश्वालायन राजा के सामने एक प्रस्ताव रखता था कि रैक्व अपनी अन्तर्निहित वायु को संक्रमण करके कई मनुष्यों को नीरोग बना देता था। इसलिए वह जाबाला को भी रोगमुक्त कर सकेगा। आचार्य औदुम्बरायण रैक्व से मिलते थे। उससे मिलकर उसके

ज्ञान से वह सुखद आश्चर्य होता था पर उसकी रूखी भाषा व उसके व्यवहार में साधारण शिष्टाचार के अभाव से वह अपने को अपमानित अनुभव करता था। वापस आकर वह रैक्व से मिलने के बाद की बातें जाबाला से कहता था, इससे जाबाला आश्वस्थ हो गयी थी।

राजा जानश्रुति राज्य के अकाल के बारे में अनभिज्ञ था। उसका ध्यान दो बातों पर केन्द्रित था, एक परिचर्चाओं पर और दूसरी अपनी बेटी पर। एक समाज की साधना करने वाले साधु से औदुम्बरायण को प्रजा के दुखों का संकेत मिलता था, वही साधु औदुम्बरायण से बताता था कि जाबाला को मनोरोग था, उसकेलिए मनोदेवता की आराधना का उपचार बताता था। इसी साधु से भी मृत गाडीवान की पत्नी व बालक की दुर्दशा का ज्ञान मिलता था। रैक्व , ऋतंबरा के साथ राज्य में लोगों के दुखों की जानकारी हेतु विचरण करते थे। वही उन्हें मामा मिलते थे। वह अपनी खिल्ली उठाकर बच्चों को खुश करता था, झूठी झूठी कहानियाँ सुना कर बच्चों को खुश करता था। बडों के भोजन के लिए दूर दूर से बोझा ले आता था। सबको बाँट कर ही आतत्मसंतोष पाता था। उसके सेवा भाव से प्रेरित होकर दोनों दुखी लोगों की सेवा करने को तत्पर होते थे। ऋतंबरा राजा जानश्रुति को जनसेवा का उपदेश देती थी और जाबाला के मन की थाह लेने केलिए उससे भी मिलती थी। वार्तालाप के मध्य जाबाला के मुख से निकल जाता था कि वह स्वयं ही उस रैक्व की शुभा थी। रैक्व को अब पुनः आश्रम भेज देती थी और रैक्व विधिवत शास्त्र ज्ञान प्राप्त करते थे। राजा गान्धर्व पूजन का आयोजन करते हुए अपने भंडार प्रजा के लिए खोल देते थे। गंधर्व पूजन पर आयोजित कोहलियों के नाटक का कथानक प्रायः वही था जो रैक्व और जाबाला का प्रेम कथानक था। इसके फ़लस्वरूप जाबाला के मनोविकारों का विरेचन होता था। इस अवसर पर

जाबाला की मौसी की पुत्री अरुन्धति भी आती थी, जिससे जाबाला अपने मन की बातें बताती थी।

ऋतंबरा गडीवान की पत्नी का नाम ऋजुका रखता था। वह उसका पति का श्राद्ध औदुंबरायण से करवाती थी, इससे ऋजुका अत्यधिक आनन्द का अनुभव करती थी। इसी अवसर पर उसका परिचय जाबाला से होता था और उसको रैक्व के बारे में अधिक जानकारी मिलती थी। रैक्व एक वर्ष तक विधि विधान से शस्त्र ज्ञान प्राप्त करता था। उसके बाद ऋतंबरा की आज्ञा से विविध तपस्वियों के आश्रमों में शास्त्रज्ञान प्राप्त करने और सत्संग हेतु भ्रमण करता था। इसी भ्रमण के समय उसका परिचय ऋषि कुमार अश्वालायन से होता था। दोनों के बीच अच्छी मित्रता भी फ़ूलने लगी। तब रैक्व अपने प्रेम संबन्ध को उसके सामने रखता था। इसी आश्वलायन के साथ औदुम्बरायण जाबाला की शादी करना चाहते थे। पर अश्वालायन के मन में दोनों के प्रेम संबन्ध की जानकारी होती थी। उसे दोनों की शादी की उपयुक्तता मालूम होता था। इस बात की सूचना वह पत्र के माध्यम से औदुंबरायण को देता था। परन्तु पत्र पहूँचने के पूर्व आचार्य जब अश्वालायन और जाबला के पाणीग्रहण का प्रस्ताव राजा जानश्रुति के सम्मुख रख रहा था। तब अरुन्धति आकर इस प्रस्ताव का विरोध करती थी। वह यह भी कहती थी कि यह शादी हो जाए तो जाबला की तो जीते जी मृत्यु हो जायेगी। यह कहकर वह अपने घर चली जाती थी। दूसरे दिन आचार्य भी अश्वालायन का पत्र पाकर राजभवन से चले जाते थे। कुमारी जाबाला को पूरी घट्ना के बारे में जानकारी मिलती थी, समाधान के लिए वह माँ ऋतंबरा के आश्रम में जाने के लिए राजा से इज़ाज़त माँगती थी, तब राजा स्वयं भी आश्रम चलने के लिए तैयार हो जाता था। आश्रम में पहूँचकर राजा औषस्ति की इज़ाज़त के लिए रुक जाता था।

ऋजुका के साथ जाबाला माँ ऋतंबरा से मिलती थी। वहाँ रैक्व को देखकर संतुष्ट होती थी।

आश्रम में रैक्व की मुलाकात जटिलमुनि से होता था। उससे इस ज्ञान की प्राप्ति होती थी कि हर व्यक्ति का सत्य अलग अलग होता था। इसीलिए सत्य प्राप्ति का मार्ग भी अलग अलग होता था। ऋजुका की सहायता से रैक्व अपने आयुर्वेद ज्ञान से लोगों का उपचार कर रहे थे। बाद में रैक्व अतिथिशाला के पास वाले इमली वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ बैठा रहा। उस समय जाबाला के आगमन के बारे में उसका अन्तर्मन सूचना देता था। समाधि खुल गई। अन्त में राजा अपनी पुत्री को रैक्व को देता था। ऋतंबरा द्वारा विवाह विधियों के आदेश पर बार बार जयनाद होता था।

यहाँ औपनिषदीय कथा को लेकर इतिहास एवं संस्कृति के नैरन्तर्य को प्रस्तुत करने में द्विवेदी जी समर्थ हुए हैं। समाज के कई शाश्वत मूल्यों को उकेरने में यह कथा वस्तु सहायक हुई है।

'करवट' की कथा एक खत्री परिवार की थी। इस परिवार का एक लडका था बंसीधर टंडन। वह एक शिक्षित युवक था। उसकी शादी उसकी जाति की कन्या चमेलो से, नौ साल की उम्र में हो चुकी थी। मात्र बारह वर्ष की उम्र में वह फ़ारसी का विद्वान बन जाता था। सारे शहर में वह मशहूर हो गया था। उसके बारे में सुनकर शहर की जानी मानी रईस मन्नो अपनी एकमात्र कन्या की शादी का प्रस्ताव बंसीधर के लिए भेज दिया गया। वह बंसीधर को अपना घर का दामाद बनाकर अपना पूरा कारोबार उसे सौंप देना चाहती थी। बंसीधर का पिता लाला मुसद्दीमल इस प्रस्ताव को खुशी से स्वीकार करने लगा। उसकी एक शादी हो चुकी थी फ़िर दूसरी शादी करने के लिए वह तैयार नहीं था। पिता इस पर ज़ोर

दिया गया, इसलिए वह घर छोडकर चला जाता था। घर छोडने के बाद वह जिन्दगी गुज़ारने के लिए कुछ लडकों को पढाता था। इसके साथ अंग्रेज़ी पादरी से अंग्रेज़ सीखने लगा। अंग्रेज़ी जानने के कारण उसकी मुलाकात नैन्सी माल्कम और पार्किन्सन से होती थी। पार्किन्सन वहाँ के रेज़िडेंट का सेक्रेटरी था। वे लोग बंसीधर से फ़ारसी पढना चाहते थे। बंसीधर उनकी पसन्द का सामान लाता था। बदले में इच्छित धन कमाता था। नैन्सी माल्कम ने बंसीधर से आकर्षित होकर मधुर संबन्ध भी बनाया। बंसीधर बडी चालाकी से इन संबन्धों को निभाता रहा। लखनौ के महलों में रनिवास में बसी अनेकानेक बेगमात व बन्दियों के द्वारा अनेक षडयन्त्र चलाए जा रहे थे , एक षडयन्त्र स्वयं बादशाह जाने आलम पिया को अंग्रेज़ों की नज़र में अकुशल व अयोग्य सिद्ध करके उसे अपदस्थ करने का भी था। उस षडयन्त्र को बंसीधर की सहायता से नकाम कर दिया गया। पर इसी चक्कर में पार्किन्सन तथा नैन्सी का पति माल्कम दोनों गोली के शिकार हो जाते थे। पार्किन्सन का निशाना अचूक होने के कारण माल्कम को लग जाता था, तब माल्कम का निशाना चूक जाता था। उस समय रज़ीउद्दौला दूसरी गोली दागकर पार्किन्सन की हत्या कर देता था। नैन्सी लखनऊ में अपने को असुरक्षित पाकर अपना पूरा सामान लेकर कलकत्ता चली जाती थी। वहाँ वह अपने अंग्रेज़ी मित्रों से मिलती है। तब वह बंसीधर में ध्यान नहीं देता। बंसीधर को हर समय रिझाने वाली नैन्सी तब उसे अपने मित्रों से परिचय के काबिल भी नहीं समझती थी। बंसीधर को उसकी यह आदत को देखकर गुस्सा आ गया। वहाँ वह नैन्सी का दूसरा रूप देखता था। नैन्सी वहाँ एक अंग्रेज़ अफ़सर से शादी करने लगी जो बाद में कलकत्ता का गवर्नर बन गया। बंसीधर अपने अंग्रेज़ी और फ़ारसी ज्ञान के सहारे समाज में स्थान बना लेता था। इस समय बंसीधर को अपनी पत्नी याद आता था। कलकत्ते में उसकी मुलाकात अपने ससुर के रिश्ते के भाई के परिवार से होती थी। वे लोग उसे

अपने व्यापार में शामिल कर देते थे, और लखनऊ जाकर बंसीधर का गौना करवा देते थे। बाद में बंसीधर को अपनी पत्नी पसन्द आती थी। अपने घर के लोगों को वह सौगात ले जाकर प्रसन्न करने की कोशिश करता था। वह अपनी पत्नी चमेलो सहित कलकत्ता वापस आते थे और अपने खत्री समाज में नवीन जागरण लाने का प्रयास करता था। उनके रिश्ते का साला विपिन चन्द्र उनके विचारों से सहमत है और उनका साथ देता था। उसके मन में अपनी ही जाती की एक लडकी से शादी करने की इच्छा थी, लेकिन उसकी माँ का विधवा विवाह हुआ था इसलिए शादी करने में दिक्कत आ जाती थी। कलकत्ते में उस समय ब्रह्म समाज का आन्दोलन भी ज़ोरों पर था। विधवा विवाह को लेकर खत्री बिरादरी दो भागों में बँट गई थी। प्रगतिवादी भाग का नेतृत्व बंसीधर टंडन , उनकी पत्नी चमेलो तथा विपिन चन्द्र खन्ना कर रहे थे। बंसीधर चमेलो का नाम बदलकर चंपकलता टंडन कर दिया गया था। बडे लोगों के विरोध होते हुए भी विपिन की शादी बडे धूम धाम से हो चुकी थी। शादी की शानदार पार्टी में अंग्रेज़ भी शामिल हुए।

बंसीधर टंडन मैट्रिक्युलेशन पास करने लगा। वह अपनी पत्नी के विचारों में परिवर्तन करने की कोशिश करता था। पति के आग्रह पर जब सबसे पहले चद्दर उतारकर श्याम बाज़ार की सडक पर टहलने निकलती तो उसे बडा अजीब सा लग रहा था। लेकिन धीरे धीरे वह इस वातावरण से अभ्यस्त हो गई थी , तथा वह नये विचारों से प्रभावित होने लगती थी। वह अंग्रेज़ी पढना आरंभ करने लगी। बंसीधर के गुरू मौन्टीथ लखनऊ में अंग्रेज़ी शिक्षा का एक मिडिल स्कूल खोलता था। और बंसीधर को वहाँ का हेड्मास्टर बनाया गया। इस समय वाजिद अली शाह और बहादुर शाह जफ़र को कैद कर लिया जाता था। उत्तरी भारत पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो जाता था। लखनऊ आकर बंसीधर शहर

में एक नया आलोक भरने की कोशिश करता था, लेकिन उनका समर्थन करने वाले कम ही थे। अपने अग्रेज़ी स्कूल के लिए वह तन, मन, धन सब अर्पित कर देता था। उनका साथ देने वाला आदमी था त्रिलोकी नाथ। वह शहर के एक सम्मानित व्यक्ति था। वह मैगी नामक स्त्री को अपनी रखैल के रूप में रखने लगा। उसकी पत्नी चुन्नो बीबी थी। उसके साथ उसका सम्बन्ध यानि व्यवहार अच्छा था। बंसीधर अपनि पत्नी समेत घर में रहना चाहते थे लेकिन उनके और उनकी पत्नी के नवीन विचार और रहन सहन के कारण उनके परिवार के लोग उन्हें घर में टिकने नहीं देते थे। उनकी खत्रि जाति भी उनकी जाति से बहिष्कार कर देती थी।

बंसीधर अपने धर्म को सुरक्षित रखते हुए अंग्रेज़ अफ़सरों से दोस्ती बनाये रखते थे। बसीधर अपना सामान लेकर बूढी मिसेज़ हार्डी की आधी काटेज में किरायेदार बनकर रहने लगा था। बंसीधर और चंपकलता को एक पुत्र पैदा होता था, उसका नाम देशदीपक रखा जाता था। वह अपने पिता की तरह चतुर और परिश्रमी था। मैट्रिकुलेशन की परीक्षा में वह विश्वविद्यालय में प्रथम आने लगा। उसे विलायत भेजकर आई. सी. एस करवाने की इच्छा बंसीधर के मन में थी। लेकिन देशदीपक देश में ही रहकर पढना उचित समझता था। उसे लाहौर के मेडिकल कालेज में भर्ती मिल गयी। उन दिनों लखनउ और लाहौर दोनों नगरों में स्वामी दयानन्द सरस्वती के आर्य समाज का प्रचार चल रहे थे। उस समय सांप्रदायिक समस्याएँ भी चल रही थीं। मुसलमान लोग हिन्दू लडकियों को भगा के ले जा रहे थे, गुंडा के केवल स्पर्श मात्र से ही हिन्दू कन्या को समाज त्याग दे रहा था। ऎसी लडकियों को नरक के समन यातनाएँ सहनी पडती थीं। देशदीपक लाहौर में

जिनके घर में रहता था उनकी पुत्री भी इसी हादसे की शिकार बन गई थी। उसका नाम कौशल्या था। गली में शोर होने के कारण गुंडे उसको छोड के चले गये, लेकिन समाज उसे भ्रष्ट कर दिया गया। कौशल्या शादी शुदा औरत थी, इस हादसे के कारण उसके ससुरालवाले उसका अस्वीकार करने लगे। उसका भाई उसे ससुरालवालों के बन्द दरवाज़े के बाहर छोडने लगा। इस दृश्य को देखकर देशदीपक को अत्यधिक दुख हुआ, समाज की परवाह न करते हुए वह कौशल्या को अपने साथ लिया गया। बंसीधर इससे अत्यधिक खुश हो गया, लेकिन चंपकलता को इससे अत्यधिक दुख हुआ। बाद में वह खुश होने लगी। बंसीधर बाद में डिप्टी इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल बन गया। शहर में उसका स्थान बढने लगा। इसी बीच साँप के डसने से उसकी पत्नी की मृत्यु हो गयी। इससे बंसीधर के मन में चोट लगने लगी। वह अपना कार्यकाल पूर्ण होने से पाँच साल पहले ही नौकरी से अवकाश प्राप्त कर लेता था। उस समय इंडियन नाषणल काँग्रेज़ की स्थापना होती थी। बंसीधर प्रथम काँग्रेस अधिवेशन में भाग लेता था। हर स्थान पर नवजागरण प्रारंभ होता था। बंसीधर को सरकार की तरफ़ से रायसाहब की खिताब मिल जाता था। देशदीपक डाक्टर बन गया, वह अमीर गरीब सबका इलाज करने लगा। जिन लोगों से वह बहिष्कृत होती गयी उन लोगों का इलाज बडी लगन के साथ करवाया गया। देशदीपक और कौशल्या को एक पुत्र पैदा होता था। उसका नाम था जयन्त टडन। कौशल्या के माता - पिता उसकी मदद के लिए आने लगे। उस समय लखनऊ में क्रान्ती प्रारंभ होती गई। अंग्रेज़ी रहन सहन का प्रचलन होने लगा। स्वामी दयानन्द से जनता प्रभावित होने लगती थी। हिन्दी भाषा का प्रसार होने लगती थी। नारी शिक्षा सक्रिय होने लगी। बालिका विद्यालय खोली गयी। हिन्दी भाषा में दैनिक समाचार पत्र प्रकाशित होने लगा, जिनका श्रेय मदनमोहन मलवीय को मिलने लगा। घरों में पाइप लाईनों द्वारा पानी पहूँचाया जाने

लगा। डा. देशदीपक अपनी पत्नी सहित समाज सेवाओं में लगा रहता था। शहर में तब दोनों का सम्मान बढने लगा था। बंसीधर अपना दायित्व सब निभाकर आने लगा। बंसीधर की बेटी प्रभा की शादी एक कुशल युवक से हो चुकी थी।

उस समय उत्तरी भारत में अकाल पड गया। लखनऊ में प्लेग की बीमारी फ़ैलने लगी। डा. देशदीपक तन मन अर्पित करके रोगियों की सेवा में जुटा रहता था। कई रोगियों की रक्षा करने लगी, लेकिन ताई की रक्षा करने में असफ़ल हो जाता था। शहर में लाशों की संख्या बढने लगी। लाश को लेने केलिए कोई नहीं था, उस समय एक साधु प्रकट होकर दो दो लाशों को कन्धे पर डालकर अग्नी में डालने लगा। लाश लेते समय वह इसमें ध्यान नही देता कि लाश हिन्दू की थी या मुसलमन की। इस अनोखे व्यक्तित्व को देखकर देशदीपक आश्चर्य होने लगा। बसीधर की बाह में भी एक प्लेग की गिल्टी उभर जाती थी। इससे आन्त में बंसीधर संसार को अलविदा करके चल देता था।

अमृतलाल नागर का उपन्यास 'पीढियाँ' में करवट उपन्यास के अगली पीढी की कथा कही गयी थी। इसमें देश्दीपक का पुत्र जयन्त टंडन की कथा उसका पोता युधिष्ठिर द्वारा इस उपन्यास में एक उपन्यास के रूप में लिखा जाता था। सुमन्त टडन प्रदेश के मुख्यमंत्री थे। उसका पुत्र था युधिष्ठिर टंडन। वह एक पत्रकार के रूप में काम करता था। सुमन्त की पत्नी शारदा थी, वह सुमन्त की दूसरी पत्नी थी। पहली पत्नी लडैतो थी ,उसमें उसके तीन पुत्र थे। सत्तरवर्षीय सुमन्त टंडन वर्तमान प्रदूषित राजनीति से क्षुब्द होकर अधिकाशतः अयोध्यावास करता था। पत्नी शरदा भी अधिकतर उनके साथ अयोध्या में रहती थी। उसे भी स्वतत्रता पूर्व और स्वतत्रता प्राप्ति के बाद की राजनीतिक गतिविधियों को देखकर क्रोध आ जाता था। अयोध्या में रहते हुए वे लोग बहू बेटी

को मिलने केलिए बीच में लखनऊ आते रहते थे। युधिषिर की पत्नी शकुन्तला जो अध्यापिका थी, वह गृहस्थी का उत्तरदायित्व निभाने में सफ़ल थी। सुमन्त और युधिष्ठिर का परिवार सफ़ल जीवन बिताने वाले थे। सुमन्त का प्रतिद्वद्वी था बी. पी. वर्मा। उसका लक्ष्य अपने प्रतिद्विन्दियों को मारकर उनकी लाशों की सीढी बनाकर ऊपर चढने का रहा था। युधिष्ठिर का सहयोगी और मित्र था हसन जावेद। दोनों बहुत जिम्मेदार के किस्म की पत्रकारिता के माध्यम से वर्तमान राजनीतिक प्रदूषण के विरुद्ध संघर्षरत थे। अपने पितामह जयन्त टंड्न की जन्मशताब्दी के अवसर पर हसन जावेद की मित्रता पूर्ण चुनौती के परिणामस्वरूप वह उन्हें लेकर एक उपन्यास लिखने का निर्णय ले लेता था। अपने इस रचनात्मक अभियान में भी वह सत्य के प्रति अपनी गहरी निष्ठा और हार्दिक समर्पण का परिचय देता था। वे सन 1942 के आन्दोलन के संघर्ष के बलिदानी नायक थे तो दूसरी ओर वे लम्पट और परस्त्रीगामी भी थे। अपनी युवावस्था में अनारो के प्रति अपने गहरे आकर्षण और अन्ततः उसके गर्भ में आ गयी संतान से बचने के लिए ही कानून की पढाई के लिए वह इंग्लैड चला जाना स्वीकार कर लेता था। उसकी डायरी, पत्रों और अन्य अनेक स्रोतों से जुटाये गये प्रमाणों के आधार पर पता चलता था कि इंग्लैंड में भी वह कई विदेशी स्त्रियों से संबन्ध रखता था। वहाँ से लौटने के बाद वह मन्नो से विवाह करने लगा। लेकिन उसका दांपत्य जीवन संतोषप्रद नहीं रहा था। पत्नी मनोरमा टंडन के साथ वह लखनऊ में रहता था, लेकिन मनोरमा खन्ना नामक स्त्री से वह बकायदा समबन्ध रखता था, वह स्त्री इलाहाबाद में रहनेवाली थी। युधिष्ठिर उसकी कथा लिखे जाने तक वह जीवित थी। उनसे मिलकर युधिष्ठिर बहुत ही गुप्त सूचनाएँ प्राप्त करता था, ये सूचनाएँ एक स्त्री अपने विषय में बताने केलिए संकोच करती सूचनाएँ थीं। जयन्त और मनोरमा खन्ना का पुत्र था कृष्ण ,एक तरह वह सुमन्त का भाई था।

इंग्लैड में जाने से पूर्व वह स्वदेशी आन्दोलन में रुची रखता था और उसक आयोजन भी करता था। इग्लैड से आने के बाद वह अपनी वकालत में जुट जाता था, जमकर पैसा कमाता था और 1942 के आन्दोलन में सब कुछ छोडकर क्रान्ती की आग में कूद पडता था। जयन्त टंडन की कथा के साथ भरतीय स्वतंत्रता संग्राम की घटनाओं, विशेषकर 1921 से 1930 तक एक ओर महात्मा गाँधी के नेतृत्व में असहयोग और अहिंसा का अन्दोलन अपने उत्कर्ष पर दिखाई देता था। उन सबका यदा कदा प्रयोग मिलता है। हिन्दू मुस्लिम संबन्ध, बाबरी मस्जिद समस्या सब उसकी कथा के माध्यम से उभर आती थीं। जयन्त एक ही जगह भाषण देते हुए और जनता को संबोधित करते हुए पुलिस की गोलियों का शिकार हो जाता था और शहीदों की सूची में शामिल हो जाता था। उपन्यास के अन्त में उसके पुत्र सुमन्त टंडन का शरीर सहज रोग के शिकार होकर मृत्यु के हाथ में पड जाता था, उसकी लाश सरयू नदी के किनारे जलाने की इच्छा वह प्रकट करता था, उसी प्रकार उसका अंत्येष्टी भी हो गयी।

इन उपन्यासों की कथावस्तु सचमुच स्वतंत्रता संग्राम के साथ और बाद के भारतीय इतिहास में घटित अनेक घटनाएँ हैं। इन घटनाओं पर यदि विचार किया जाय तो यह ज़ाहिर होता है कि प्रत्येक घटना पीढीतर पीढी के साथ बहती चली आ रही है।

बलवन्त सिंह का 'काले कोस' उपन्यास की कथा वस्तु भारत के एक गाँव चारगाँव से ली गयी थी। पैशोरा सिंह उस गाँव का एक जाने माने व्यक्ति था। उसका पुत्र था सूरत सिंह। उसकी पुत्री थी गोबिन्दी। पैशोरा सिंह धर्मों का पालन अच्छी तरह करता था। विरसा सिंह उस गाँव का एक डाकू था, वह बहुत ही सुन्दर था, इसलिए गाँव की लडकियाँ सब उसके पीछे थी। गोबिन्दी विरसा सिंह से प्यार करती थी। सूरत सिंह पढाई में उतना अच्छा

नहीं था,इसलिए गाँव छोडकर लखनऊ जाता था। वहाँ उसकी मुलाकात महेन्द्र कौर नामक लडकी से होती थी। वह वहाँ मेडिसिन की पढाई करती थी। उसके प्रभाव के फ़लस्वरूप सूरत सिंह की आदत में बदलाव आती थी। उसमें क्रान्ति आने लगी। महेन्द्र कौर चारगाँव में आती थी वहाँ की जनता की सेवा के लिए तत्पर हो जाती थी। सूरत सिंह की सहायता से क्लिनिक बना दिया गया। वह अच्छी तरह जनता की सेवा करने लगी। उन दोनों के संबन्ध को लेकर गाँव की स्त्रियाँ बुरी बातें कहने लगीं। यह सुनकर गोबिन्दी उनसे कुछ बातें बताती थी। लेकिन सब व्यर्थ हो जाते थे। इस के बाद एक दिन विरसा सिंह महेन्द्र की क्लिनिक में आता था। उसे देखकर विरसे के मन में उसके प्रति लगाव पैदा होता था। उसका मित्र सिराज महेन्द्र के साथ शादी करने का उपदेश उसको देता था। लेकिन विरसा सिंह नहीं मानता था। उसे मालूम था कि महेन्द्र सूरत सिंह से प्यार करती थी। विरसा सिंह बेला नामक स्त्री के प्रेति आकृष्ट हो गया था, उसको कामलोलुपता और नये नये पुरुषों से याराने की कोई सीमा नहीं थी। बेला को वह करीमू के पास से लेकर आया था। विरसा सिंह का यह सबन्ध सुनकर गोबिन्दी का हाल खराब हो जाता था। सूरत सिंह को गोबिन्दी का ख्याल था, वह उसका मन जानता था। पैशोरा सिंह उसकी शादी के बारे में कुछ बातें बताते थे, तब सूरत सिंह ने कहा कि बाप को सबसे पहले लडकी की इरादा जानना चाहिए। गोबिन्दी को विरसा सिंह के व्यभिचार का पहले से ज्ञान था। किन्तु ये बातें सुनकर उसका प्रेम बढता जाता था। वह चाहती थी कि वह एक बार उसके जाल में आ जाय तो वह उसे सब कुछ समझा बुझाकर सीधे रास्ते पर ले जायेगी। विरसे का बेला से संबन्ध जानकर सूरत सिंह उसके पास जाता था और उससे कुछ बातें करता था।

महेद्र की कुछ आदतें पैशोरा सिंह को पसन्द नहीं था, लेकिन वह उसे पसन्द करता था, क्यों कि वह नगर में जन्म लेने वाली थी। उसके साथ सूरत सिंह की शादी करना वह पसन्द करता था, लेकिन पत्नी को इस के बारे में लगाव नहीं था। महेन्द्र कौर शहर वापस जाने की तैयारियाँ करती थी। सूरत सिंह अपने साथियों के सहित गाँव के कृषक लोगों को अपने हकों के बारे में परिचित कराता था। उन लोगों की स्थिति अत्यन्त दर्दनाक थी, लेकिन वे उसकी स्थिति से असंतुष्ट नहीं थे। यह देखकर सूरत सिंह को आश्चर्य होने लगा। बाद में गाँव में हिन्दु मुस्लिम दंगे होते थे। पाकिस्तान की माँग के बारे में सूचनाएँ मिलती थी। इकबाल जिन्ना आदि के माध्यम से पाकिस्तान की माँग होती थी। इस दंगे के कारण चारगाँव के लोग इधर उधर भाग रहे थे। पैशोरा सिंह अपने परिवार सहित अमृतसर गया था। वहाँ पर गोबिन्दी घायल हुई थी। महेन्द्र आकर उसका इलाज तो किया गया। विरसा सिंह अच्छा आदमी बन गया।

'निन्यानवे' का कथानक इस प्रकार था कि, रामदयाल झाँसी गाँव का अध्यापक था। पत्नी किशोरी घर भार संभालती थी। रामदयाल अंग्रेज़ों के ज़माने में उनसे लड़कर बार बार जेल जाता था। उसका पिता को अंग्रेज़ों ने मारकर उसकी लाश घर के सामने पेड पर लटका दी थी। रामदयाल का बडा पुत्र बलराम दयाल (बल्लो) की पढाई जीव विज्ञान में थी। उसको डाक्टर बनने की इच्छा थी, लेकिन पैसे की कमी के कारण डाक्टर नहीं बन गया था। बाद में इतिहास में एम. ए. किया गया। इसके बीच के. के. के यहाँ एक छोटा सा काम किया गया। बाद में लखनऊ के क्रिश्चियन कालेज में प्राध्यापक के रूप में नियुक्ति मिल गयी। वहाँ की एक मुसलमान लडकी से उसकी शादी हो गयी। दूसरा बेटा कृष्ण दयाल कलाकार था। वह दिल्ली में रहता था। बिन्नू तीसरी

लड्की थी उसकी शादी भी हो गयी। चौथा लडकी मिन्नू की पढाई का खर्च बल्लो द्वारा किया गया था, लेकिन पढाई के वक्त स्वयं अपनी शादी का फ़ैसला तय करके वह उसके सामान लेने के लिए घर आती थी। तब घर वाले सब आश्चर्य चकित रह गये थे। छोटा लडका हरिदयाल के बारे में राम दयाल को बडी प्रतीक्षा थी, क्यों कि उसका भाई हरी एक क्रान्तिकारी था। विध्याँचल के पहाड में एक बंब विस्फ़ोट में वह मर गया था। इसलिए अपना छोटे बच्चे का नाम हरी रखता था। एक दिन मित्र मनमोहन से बल्लो की मुलाकात होती थी। तब से दोनों एक साथ रहने लगा। मनमोहन के घर का एक भाग में बल्लो और दूसरे भाग में उसका परिवार रहने लगा। मनमोहन की पत्नी नीतू और बल्लो की पत्नी उल्फ़त एक दिन में ही अस्पलाल में दोनों बच्चों को जन्म देती थी। बल्लो को बेटा और मनमोहन को बेटी। बेटा का नाम कबीर और बेटी का नाम प्रिया रखे गये। दोनों के सातवाँ जन्मदिन पर इन्दिरा गाँधी मारा गया। तब से लखनऊ और अन्य भागों में दंगे की शुरुआत होती थी। रामदयाल का छोटा बेटा हरी गुंडागर्दी करके जेल जाता था। वह युवा काँग्रेज़ का उपाध्यक्ष बन गया। बाद में वह गेरूआँ रंग के पीछे भागा था। किन्ने दिल्ली में एक फ़्रान्सीसी लड्की से शादी करके विलासपूर्ण ज़िन्दगी बीतता था। वह उसकी चौथी पत्नी थी। कलाकार बनने के बाद वह उसका नाम बदलकर कृष्णकुमार रखा गया था। अन्त में रामदयाल की तबीयत खराब हुई। बल्लो को तार भेजा गया। दंगे होने के कारण कबीर को मनमोहन और नीतू के पास छोडकर बल्लो और उल्फ़त पिता को मिलने गये। तबीयत ठीक न होने के कारण वह कहीं नहीं गया था। रिटयर होने के बाद पेन्शन और टयूशन से जो धन मिलता था उससे घर का खर्च संभाला गया था। हरी माँ और बाप को दिल्ली लेना चाहता था, लेकिन रामदयाल झाँसी छोडकर कहीं जाने के लिए तैयार नहीं था। एक दिन दोनों किन्ने के पास दिल्ली चले गये, वहाँ उनकी देखभाल नौकर के द्वारा होती थी। उसकी

पत्नी को उसकी आदतें न मालूम थी, दोनों एक साथ कार में बैठकर घूमने केलिए जाते थे और माँ, बाप को एक गारेज जैसा कमरा देता था। दोनों तुरंत झाँसी आ गये। हरी करोड़पति बनना चाहता था, लेकिन उसके पास एक लाख की कमी थी, इसलिए बल्लो से वह कहा गया कि घर बेचने की ज़रूरत है। बल्लो को इस फ़ैसले में मन नहीं लगा था। इसके बीच किशोरी का बाबा की कथा थी। वह दूर का रिश्तेदार है लेकिन बाबा किशोरी को उसकी बेटी मानता था, बाबा की बेटी सावित्री का बेटा राजा की कथा है। गौरी और गौरी शंकर सीता,सुनीता, नीता आदि की कथा थी। बीच में हिन्दी और अंग्रेज़ी साहित्यकारों का ज़िक्र भी है। आपातकाल, बाबरी मस्जिद समस्या आदि की भी चर्चा की गई है।

'ज़िन्दा मुहावरा' नासिरा शर्मा का उपन्यास है। इसका कथानक इस प्रकार था कि, 1947 में हमारा देश दो भागों में विभाजित हुआ था, भारत और पाकिस्तान। इससे दुखी होकर और भयभीत होकर फ़ैज़ाबाद से निज़ाम उसका खानदान छोडकर पाकिस्तान चला गया। पाकिस्तान के कराची में पहूँचते वक्त उसके साथ भारत से आये लोग झड से इधर उधर बिखर गये। कराची में वह निपट अकेला हो गया। भूख से पीडित निज़ाम मज़दूरी करने लगा। कराची में रहते वक्त उसकी चिन्ता खानदान के बारे में थी। एक दिन निज़ाम को बुखार आ गया, शरीर खराब हो गया। मुहल्ले का सलाम नामक पठान खानदान का लडका उसकी शुश्रूषा करने लगा। उसकी तबीयत ठीक होने लगी। तब से दोनों की दोस्ती पक्की हो गयी। निज़ाम ने असदुल्लाह नामक आदमी का आदेश पर कपडे की दूकान खोलने का निश्चय किया। बाद में वह कपडों की दूकान का मालिक बन गया। भारत में उसकी भाभी शमीमा की बहन सुगरा से निज़ाम की शादी तय करने लगी थी, लेकिन वह पाकिस्तान में होने के कारण सुगरा की शादी दूसरे

लडके से हुई। निज़ाम के बारे में सोचते सोचते उसकी माँ फ़ातमा मर गयी। निज़ाम हमेशा खत लिखकर खानदान के बारे में खबरें प्राप्त करता था। उसकी बहन रज़िया की शादी हो गयी। यहाँ वह अकेला होने के कारण शादी करने का निश्चय करने लगा। कराची में ही एक लडकी को वह देखने गया। हिन्दू मुस्लिम सांप्रदायिक दंगे होते वक्त फ़ैज़ाबाद से कराची आये खाँ साहब की बेटी सबीहा थी वह लडकी। उसको पसन्द आया, दोनों की शादी हो गयी। निज़ाम ने भारत जाने का निश्चय करके खानदान को एक खत लिखा। इससे सूचना मिलकर पुलिस उसके घर आई और उसके बारे में कुछ पूछने लगी। इस घटना के बाद उसका बाप रहीमउद्दीन मर गया। निज़ाम का भाई का बेटा गोलू एम ए पास हो गया। वह कलक्टर बन गया। निज़ाम के चार बच्चे थे, उसमें दोनों लडकी नहीदा और नादिरा की शादी हो गयी। इसके बीच सबीहा के पिता की तबीयत खराब हो गयी, मरने से पहले एक बार भारत जाने की इच्छा उसके मन में होती थी। लेकिन उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई। उसकी मृत्यु हो गयी। भारत में गोलू की शादी मुमीहा से हो गयी। इमाम की तबीयत ठीक नहीं थी। अन्त में निज़ाम, सबीहा और पुत्र अख्तर तीनों भारत आए , खानदानों से मुलाकात हुई, देशवासियों से वार्तालाप करने लगा। तीनों ने माँ बाप के कब्र में जाकर प्रार्थना की। वापस जाने का वक्त आ गया। गोलू के द्वारा विज़ा की कालावधी बढाने का प्रयत्न हुआ। लेकिन वह तो ठीक नहीं हुआ। निज़ाम का ब्लड प्रषर बढने लगा, बाद में ठीक हो गया।

अख्तर के लिए निज़ाम ने कुछ लड्कियों को देखा, लेकिन अख्तर को भारत से शादी करने की इच्छा नहीं थी। आखिर तीनों बहुत दुखित हो कर कराची वापस चले गये।

अलका सरावगी का उपन्यास 'कलिकथा वाया बाइपास' की कथावस्तु इस प्रकार है कि किशोर बाबु कलकत्ते का निवासी है। उसका बाइपास ओपरेषन हो चुका, लेकिन उसके सिर के पिछले भाग में दर्द महसूस हुई, डाक्टर से बताने पर पाया गया है कि किशोर बाबू की खोपडी के पीछे , ठीक गर्दन के ऊपर , एक बडी गुठली बनी हुई है। उस गुठली पर खून बहा चुका था। ऐसा अनुमान लगाया गया कि अचेतनावस्था में ओपरेशन टेबुल से बार्ड में ले जाने के लिए स्ट्रेचर पर लिटाते वक्त किसी लोहे की चीज़ से उनके सिर के पिछले हिस्से में चोट लगी थी। बाद में एक परिवर्तन उसमें दिखाया गया। परिवर्तन यह है कि शाम चार बजते ही वह कलकता शहर के सडकों पर निकल जाकर घंटों अकेले घूमते रहना आरंभ कर दिया गया था। उसकी इस आदत से घर वाले सब परेशान हो गये। वे उसके दिमाग के सारे परीक्षण कर गये, लेकिन कोई फ़ायदा नही हुआ। किशोर बाबू की पाँच लडकियाँ और एक लडके थे। सबकी शादी हो चुकी थी।

किशोर के परदादा रामविलास की डायरी के माध्यम से किशोर ने एक कथा लिखना शुरू की थी, इस उपन्यास में यह तो एक अवान्तर कथा के रूप में आती थी। उसका परदादा रामविलास उर्फ़ बडे बाबू का समय 1860 से 1926 तक था। किशोर के परदादा का पिता घमडी लालजी और अंग्रेज़ आदमी हैमिल्टन साहब के बीच अच्छी दोस्ती थी। वह हैमिल्टन साहब के यहाँ मुनीमी का काम करता था। बाद में जूट - दलाली का काम करता था उसकी ख्वाहिश थी कि भिवानी में एक बडी हवेली बनायी गई। भिवानी में उसकी पत्नी थी, रामविलास, उसका बेटा था। राम विलास के चार भाई हैजे में मर गये थे। रामविलास बडा हो गया , उस समय (1899) अकाल पडा था। रामविलास को परदेश जाने की इच्छा थी। अकाल के कारण उसकी इच्छा में कुछ बाधाएँ आ गयीं। बचपन से लेकर रामविलास के मन में

कलकत्ता जाने की इच्छा थी क्यों कि उसका पिता ने कलकटे के बारे में बहुत कहा था। पिता का सपना , एक बडी हवेली बनाना, इसकी पूर्ति के लिए उसको विलायत जाने की ज़रूरत है, लेकिन उसके मन में पत्नी, दस साल का इकलौता पुत्र और बाल- विधवा बहन चुनिया और उसका देश आदि की चिन्ता थी। आखिर वह अपने पिता के समान कलकत्ता गया, पिता का दोस्त हैमिल्टन साहब से मिलने की इच्छा उसके मन में थी। लेकिन वहाँ पहूँचते ही उसकी मुलाकात हैमिल्टन साहब के बेटा जान हैमिल्टन से हुई। उससे उसके पिता और हैमिल्टन साहब की रिश्ता की कहानी के बारे में ज़्यादा जानने का अवसर मिल गया। उसकी माँ हिन्दुस्तानी थी। जब कलकत्ते में प्लेग फ़ैल गये तब उसकी माँ जयन्ती की माता और पिता मर गये थे, इसलिए वह अनाथ हो गयी। घमण्डी लालजी उस समय उसे लेकर हैमिल्टन साहब ने के यहाँ आ गया। हैमिल्टन साहब उसको मकान में रहने की जगह दी। तब से दोनों का रिश्ता दृढ हो गया, हैमिल्टन साहब जयन्ती का सहारा बन गया। जान हैमिल्टन साहब का जन्म हुआ। यूरोप में हैमिल्टान साहब की पत्नी थी, उससे बातें कर यहाँ लायी गयी, और दार्जलिंग में रखकर गर्भवती होने का नाटक रचाकर जान हैमिल्टन को कलकत्ते में लाया गया। इसलिए किसी को न मालूम हुआ कि जान हैमिल्टन आधा हिन्दुस्तान और आधा यूरोपियन था। जयन्ती के जीवन के अन्तिम दिन तक घमण्डी लालजी हैमिल्टन और जयन्ती की रिश्ते को बनाये रखने की कोशिश कर गया था, क्यों कि वह दोनों के बीच की एक कडी थी।

हैमिल्टन ने उस समय राम विलास को नौकरी पर रखा। राम विलास की इच्छा यह है कि एक बेबी ओस्टिन गाडी खरीदना और केदार और बहू उसमें घूमता जाय। उसका बेटा केदार की पढाई भिवानी में थी। कलकत्ते में खर्च ज़्यादा था, इसलिए माँ बीवी और बच्चे को वहाँ लाने की इच्छा उसके मन में नहीं थी।

गाँव में रहने वाले शहर में आकर रहने से घुटन महसूस करेंगी इसलिए उसने केदार की पढाई के लिए एक अंग्रेज़ी मास्टर को नियुक्त किया। केदार बडे होने पर एक विद्रोही बन गया था। राम विलास ने जान हामिल्टन से इसके बारे में बताया। केदार के साथ अंग्रेज़ी किताब ज़्यादा थी, इनमें' वार एंड पीस' आदि किताब थी। जान ने बताया कि शायद भिवानी में केदार की दोस्ती किसी टेररिस्ट से या उनसे सहानुभूति रखनेवालों में किसी व्यक्ति से हो गयी होगी। उसके अंग्रेज़ी मास्टर को वहाँ से हटवा दिया गया। जान हैमिल्टन ने उसकी आदत को सुधारने के लिए अनेक कार्य किया था। लेकिन केदार ने राम विलास के नाम एक पत्र लिखा इसमें पिता के प्रति नफ़रत का भाव विद्यमान था। अंग्रेज़ों का काम करने वाले पिता को अंग्रेज़ों के जूते चाटनेवाले टोडी बच्चों की गिनती में शामिल करा दिया गया और खत में जान बूझकर वन्देमातरम भी लिख दिया गया। लिवर खराब होकर जान हैमिल्टान साहब की मृत्यु हो गयी थी। पुलिस कमिश्नर टैगर्ट से राम विलास की दोस्ती को लेकर केदार और उसके बीच दो साल तक झगडा चला गया। ये दो घटनाएँ राम विलास के जीवन में एक साथ घटी थीं। केदार और राम विलास की मुलाकात और बातचीत तब हुई जब केदार की माँ की मृत्यु हो गयी थी। कुछ समय बाद केदार की मृत्यु हो गयी थी, तब उसके दो बच्चे थे। एक पन्द्रह साल का और दूसरा चौदह साल का। पहले पोते की शादी करने का समय आ गया था, इस की चिन्ता से रामविलास थक गया था। अंत में रामविलास वक्त से हारकर ज्योतिषियों के चक्कर लगाने लगा था।

स्कूल में किशोर बाबू के दो दोस्त थे, एक शान्तनु और दूसरा अमोलक। तीनों की दोस्ती पक्की थी। शान्तनु जो है वह सुभाष भक्त थे, अमोलक गाँधीजी का भक्त थे। शान्तनु का पिता डा राय था, उसकी माँ की मृत्यु हो गयी थी लेकिन डा. राय ने

दूसरी शादी नहीं की। उसका खानदान अच्छा था क्यों कि उसके खानदानों का इतिहास इसकेलिए अनेक गवाह दे रहा है। अमोलक और शान्तनु पढने में किशोर के पीछे है। लेकिन अमोलक और शान्तनु उससे ज़्यादा बाहरी दुनिया के बारे में जानते हैं। उन दोनों को देश के भविष्य के बारे में अनेक स्वप्न हैं, लेकिन किशोर को मामा लोगों के अहसानों से उबरकर अपने परिवार के लिए दाल - रोटी का हिसाब बैठाने का स्वप्न है।

किशोर मैट्रिक पास करने के बाद मामा की दूकान में बैठने लगा, क्यों कि उसका भाई ललित इस प्रकार मामा की दूकान में बैठ जाता था। ललित भैया की पत्नी शान्ता थी। शान्ता भाभी और किशोर के बीच एक अच्छी दोस्ती थी। लेकिन ललित भैया अपेन्डिक्स के कारण मर गया था। उसके बाद शान्ता भाभी उनके, माँ और किशोर के साथ रहने लगी। किशोर की साहित्यिक रुची के बारे में सबसे पहले शान्ता भाभी ने कहा। किशोर, शान्तनु और अमोलक की ज़िन्दगियों के रास्ते अलग हो गये थे। अमोलक का पिता भारत छोडो आन्दोलनों में गिरफ़्तार होकर जेल गया था।

किशोर शान्तनु और अमोलक तीनों ने एक साथ जनवरी 2000 में मिलने का निश्चय किया । लेकिन तीनों अलग अलग ज़िन्दगी जी रहे थे। बाबरी मस्जिद के दंगे में अमोलक मारा गया था। शान्तनु बडा डाक्टर तो बन गया। अनेक वर्षों बाद किशोर दो लडकों से मिल गया वह सोचने लगा कि वे शान्तनु के बेटे थे। किशोर और शान्तनु की मुलाकात तो होती थी। दोनों एक साथ अपनी बातों में लग गये थे। किशोर के शारीर में अमोलक की रूह प्रवेश किया गया। वह अमोलक की तरह बातें करता था। अन्त में किशोर के पुत्र ने स्वतत्रता के पच्चास वर्षीय दिन में उसको एक फ़ोर्ड कार का चाबी देकर उसे स्वतत्र बना दिया था।

कमलेश्वर का उपन्यास 'कितने पाकिस्तान' की कथा कहने की रीति में एक प्रकार की सूक्ष्म दृष्टि का प्रयोग लेखक की तरफ़ से हुई थी। कथा बीच बीच में हमें मिथकीय समय, मध्यकाल, वर्तमान काल तक ले जाती थी। कथा मात्र भारतीय इतिहास से संबन्धित नहीं, विश्व इतिहास भी इसमें शामिल था। अनेक ऐतिहासिक पात्रों को अदीब नामक इनसान अपनी अदालत में हाजिर करता था, वे सब उसके सामने अपना पक्ष प्रस्तुत करते थे। समाज में घटित हो चुकी घटनाएँ, घटित होती घटनाएँ, घटने के लिए संभावित घटनाओं को इन कथाओं के ज़रिए कहकर समाज के प्रति अपनी प्रतिबद्धता अदीब व्यक्त करता था। उपन्यास के प्रारंभ में अदीब अपनी प्रेमिका विद्या की यादों में था। विद्या फ़तेहगढ की थी, वह सयन्स में पढती थी, छुट्टियाँ साथ साथ मिलती थीं, इसलिए वे इलाहाबाद स्टेशन पर मिल ही जाते थे। विद्या वापस आते समय इलाहाबद स्टेशन पर उतरती थी, इस प्रकार मिलना, प्रतीक्षा करना, और साथ साथ सफ़र करना दो साल चलता रहा। एक दिन विद्या उससे कहती थी कि आगे की पढाई नहीं हो सकेगी। इतना कहकर वह गाडी में चढने लगी। तब वहाँ मुसाफ़िरों की भीड होने लगी, वे अलीगढ जा रहे थे, वहाँ से पाकिस्तान चले जायेंगे। अलगाववाद दोनों के रिश्ते को विवशता की ओर धकेलता था। अदीब यादों से मुक्त नहीं था। उसके सामने सहायक, स्टेनो, और अर्दली महमूद मौजूद थे। महमूद उसे बुलाता था, तब वह चौंककर आवाज़ की तरफ़ देखता था, महमूद खबरें सुनाते थे। कारगिल प्रदेश में घुसपैठियों के नाम पर पाकिस्तानी फ़ौजीयों द्वारा अघोषित आक्रमण कर दिया गया। तब पाकिस्तान के फ़ौजी अफ़सरों द्वारा यह कहने लगा कि घुसपैठिए इस्लामी मुजाहिदीन थे। इसमें असलियत यह था कि वे मुजाहिदीनों के वेष में पाकिस्तानी फ़ौजी थे। पाकिस्तान ने 1972 के सन्धिपत्र का उल्लंघन किया। युद्ध में अनेक सैनिक मारे गये।

तब महमूद प्रधानमंत्री और रक्षामन्त्री के नाम खुला खत बहुत भारी दिल और अफ़सोस के साथ लिखता था। उस खत में युद्ध की भयानक स्थिति के बारे मे बातें थीं, सारे राजनीतिक दलों के प्रति निन्दा व्यक्त थी। खत लिखने के बाद अदीब बहुत परेशान में पड गया। उसके बाद वह दार्शनिक चिन्ताओं में डूब गया। तब वह देखने लगा कि धरती से प्रलयंकारी झंझावात उठने लगा। काली आँधियाँ चलने लगीं और सारा आकाश अंधेरे में डूबने लगा। वनप्रान्तरों में मचता कोहराम। इधर उधर विक्षिप्त से भागते वन्य जीव, अधिक क्रन्दन और चीख पुकार। वह महमूद को बुलाया गया, तब कोई जवाब नहीं। महमूद आ गया, वह अपने पूर्वजों से मिलने के लिए पिछली सदियों में चला गया था। अदीब उससे काली आँधियों के बारे पूछने लगा, तब महमूद ने कहा कि यह शंबूक की हत्या के कारण चल रही थी। अयोध्या के राजा रामचन्द्र अश्वमेध यज्ञ की घोषणा करने राजप्रसाद से बाहर आए तो एक ब्राहमण का करुण क्रन्दन सुनने लगा। रामचन्द्र जी क्रन्दन के कारण के संबन्ध में पूछने लगे। नारद जी द्वारा जवाब दिया गया कि वहाँ शूद्र वंशी शंबूक मोक्ष प्राप्ति के लिए तपस्या कर रहा था, इससे ब्राहमण पुत्रों की मृत्यु होती रही। यह सुनकर राजा रामचन्द्र जी ने रामराज्य की रक्षा के लिए शंबूक का गर्दन काटकर धड से अलग कर दिया। तब धरती में धर्म की हानि होती थी। वहाँ से चलता महमूद रास्ते में वैदिक युग से मिलने लगा, वह अपना माथा पीट रहा था। क्यों कि वह आसक्ति और व्यभिचार-बलात्कार का युग था। यहाँ गौतम ऋषि की पत्नी अहल्या को शाप देने वाली दास्तान आती थी। यह सुनकर अदीब ने कहा कि यह तो अन्याय था, ब्राहमण अपने श्रमजीवियों को शूद्र तो बनाता था, और स्त्री को दंड देकर शूद्रा की श्रेणी में डाल दिया गया। तब महमूद अपना मत प्रकट करता था कि जब जब अन्याय, अत्याचार और अनाचार होता रहा तब तब मनुष्य की चेतना और आत्मा को यह प्रलयंकारी झंझावात झकझोरता रहेगा

और काली आँधियाँ चलती रहेंगी। उसके बाद भी पहले की तरह काली आँधियाँ कोहराम, शोर आदि चल रहे हैं। ये सब कौरव पांडव के महाभारत युद्ध से उत्पन्न होते थे। अदीब उससे संबन्धित विवरण के बारे में महमूद से कुछ पूछने लगा। महमूद युद्ध में मारे गये लोगों का हिसाब उससे बताने लगा। सचमुच यह हिसाब तो चित्रगुप्त से मिल गया था। उसके पास एक लघुयंत्र था, उसमें सब कुछ दर्ज था। मरने वालों का हिसाब सुनकर अदीब माथा पकडकर बैठ गया। झझावात, काली आँधियाँ फ़िर चलने लगीं। उसके बाद एक कृशकाय वृद्ध अदीब के सामने आकर खडा हो गया। वह एक आम आदमी था, उसको एक प्रयोगशाला था, हर अभावग्रस्त, शोषणग्रस्त, यातानाग्रस्त और मृत्युग्रस्त मनुष्य के आँसू एकत्र करना उसका काम था। वह इस दुनिया में आँसू को पवित्र साधन मानता था। वह उनका अध्ययन करता था। आँसुओं को अश्रु सागर में जमा करता था। सदियों से मनुष्य प्रकृति का शोषण करता रहा, प्रकृति बाँझ हो गई तोप मनुष्य ही मनुष्य का शोषण करने लगा, इसलिए आँसुओं की बाढ आ गई। मनुष्य, मनुष्य के खिलाफ़ यन्त्र का आविष्कार कर लिया गया। तब युद्धों की संख्या बढने लगी। अप्राकृतिक मृत्युएँ होने लगीं। इसलिए वह हर बार मरता रहा था। उसको अदीब के आँसुओं की ज़रूरत थी। उसका अध्ययन करना था और निष्कर्ष निकालना था, वह फ़िर आसुओं की तलाश में था। लेकिन बेसूद और गैरज़रूरी मौत से निजात पाने के लिए ज़िन्दगी की सार्थक तलाश के लिए हित्ती सभ्यता का गिलगमेश निकल चुका था। उसकी आवाज़ सुनकर बेबिलोनिया, मेसपोटोमिया, सुमेरी - अक्कादी और सिन्धु घाटी सभ्यता के देवता काँपने लगे। वे मानते थे कि आर्यों के राजा इन्द्र उसे परास्त कर सकता था, लेकिन वह भी गिलगमेश की तरह विलासी थी। इसलिए उन्होंने पराशक्ति से सवाल किया कि मनुष्य जाति को विवेक की शक्ति क्यों दी गयी? तब इन्द्र का उत्तर गूँजता हुआ आया था। पराशक्ति ब्रह्म थे सब कुछ थे, इसलिए प्रश्नों से उपराम

थे। यह सुनकर देवताओं की मंडली में खामोशी और निराशा छा गई। वे जानते थे कि ब्रह्म शक्ति अथवा परमाणु शक्ति को लेकर जितने आत्मिक और दैविक अनुसंधान सिन्धु सभ्यता ने किये , उतने किसी अन्य सभ्यता ने नहीं किया है। उनकी पराशक्ति संबन्धी दार्शनिक व्याख्या को नकारना कठिन था। तब से सुमेर के पर्वत से निकलकर सर्वशक्तिमान अनु उपस्थित हुआ। उसके द्वारा यह योजना बनायी गयी कि, वह आकाश पुत्र एकिन्दु को मनुष्य का जन्म देकर पृथ्वी पर भेजता था। एकिन्दु एक दम आदिम, जंगली, पशुतुल्य और बर्बर था। उसके शरीर पर वन्य पशुओं की तरह बाल थे, वह जंगली जानवरों के साथ रहने लगा। उसे देखकर एक शिकारी भयभीत होकर घर की ओर भागा, और पिता से सारी बातें बत्तायी गयी। पिता कहने लगा, यह समुच देवताओं का खेल था। जाकर सम्राट गिलगमेश को उसकी सूचना दे दो। उसने युरुक में जाकर पिता द्वारा बतायी गयी सारी बातें बताया। एकिन्दु को वश में लाने के लिए शिकारी, ईना के प्रेम मन्दिर से सबसे सुदरी देवदासी रूना को लेकर जंगल गया। वह अपनी नग्नता दिखाकर उसे आकर्षित कराने लगी। वे दोनों एक साथ रहने लगे। दोनों को एक दूसरे से प्रेम होने लगा। रूना ने उसे मनुष्य के रूप की तरह बनाया। गिलगमेश और एकिन्दु के बीच मित्रता भी होती थी। यह देखकर देवता सब मनुष्य की मित्रता और प्रेम के संबन्ध में सोचने लगा। बाद में अनेक नदियों का प्रवेश भी हुआ। देवियाँ सब देवता के खिलाफ़ आवाज़ उठाती रहीं कि मनुष्य प्रेम की मर्यादा को विकसित कर ली गयी। वे सब एक एक उदाहरण देकर सिन्धु स्भ्यता के देवताओं की महाविलासिता के खिलाफ़ भी आवाज़ उठाती थी। गिलगमेश और एकिन्दु की मित्रता को मिटाकर गिलगमेश को नष्ट करने के लिए एक भयंकर और विकराल साँड को जन्म देकर पृथ्वी पर भेजता था, लेकिन एकिन्दु उसे मारता था, वह घायल हो गया। गिलगमेश से साँड मारा गया। एकिन्दु की मृत्यु भी हो गयी। गिलगमेश अत्यधिक दुखी हो

गया। वह मृत्यु को पराजित करने की औषधि खोजकर निकल गया था। अब भी सागरतल की गहराइयों में उतरता जा रहा था।

राजस्थान का सिख किसान बूटा सिंह, जिसकी आयु पचपन था, शादी नहीं हो चुकी, जेनिव नामक मणियार ढाणी, मुस्लिम लडकी को, जिसकी आयु सत्रह था, एक हिंसक नौजवान से बचाता था। बूटा सिंह के तीन भाई थे। वह लडकी अधनंगी थी। बूटा सिंह रेत में एक गड्ढा बनाकर उसे उसमें बिठा देता था, और उसके लिए कपडे लेने निकल जाता था। सुबह होते ही उसके भाइयों को पता चल जाता कि घर में कोई लडकी आयी थी, और गाँव के बडे बूढे उससे कहते थे कि जेनिव से शादी कर लो। वह उसके लिए कपडे लेने निकला तब पाकिस्तान नाम की लकीर खींच चुकी थी।

गिलगमेश की आवाज़ को पकडने के लिए सारी सभ्यताओं के देवता और देवियाँ तलाशने लगे, लेकिन आवाज़ कहीं नहीं मिली, तब ज़ीयस कहता था कि, उसकी अवाज़ को बन्दी बनाना था। जीयस महल से जिस प्रोमिथ्यूस ने अग्नि चुरायी वह कहता था कि उसकी आवाज़ को बन्दी मत बनाओ। इन देवताओं के लिए प्रेम, मित्रता, शान्ति जैसी मूल्यों की ज़रूरत नहीं, इसलिए देवदासी रूना इन सबको लेकर मर्त्यलोक की ओर प्रस्थान कर चुकी थी।

अदीब परेशान होकर अपना माथा पकडा हुआ बैठा था, तब वहाँ दस्तक देने के लिए अनेक दस्तक मैजूद थे। वह देवदासी रूना से पूछने लगा कि आप कहाँ का दस्तक थी, रूना कहने लगी कि वह भ्रष्ट हो गये देवताओं के लोक की दस्तक थी। वह गिलगमेश की आवाज़ लेकर आती थी, क्यों कि वह उस आवाज़ को अदीब को देने केलिए आती थी। अदीब जैसा सरल, सहज,

सीधा और सत्यनिष्ठ व्यक्ति इसे जीवित रख सकेगा और सदियों के बाद सदियों तक इसकी रक्षा कर सकेगा। बाद में डैन्यूब नदी के घाटी में बसे, सर्बिया के कोसोवो प्रदेश की दस्तक आ गयी। वह कहने लगा कि सभ्यता की इस प्राचीनतम घाटी में भयानक इकतरफ़ा युद्ध चल रहा था। उसके भूखंड पर नाटो नामक एक दशानन ने जनम लिया। उनका सरगना सागर पार का एक राक्षस था। वह मिलकर सर्बिया और युगोस्लाविया पर हमला करके उसे श्मशान बना दिया गया। वे उसकी स्वायत्तता संपन्न देश को विभाजित करके, कोसोवो को अपने नियंत्रण में रखना चाहते थे। नाटो राक्षसों के इक्तरफ़ा मिसाइली हमलें जारी था। इससे डैन्यूब का पानी विषाक्त हो गया। सर्बिया में लाखों मासूम बिना मौत मर रहे थे। तब अदीब नाराज़ी से पूछने लगा कि इन राक्षसों को रोकने वाला कोई नहीं? और यह आदेश भी देने लगा कि संयुक्त राष्ट्र संघ का महासचिव कोफ़ी अन्नान को अदालत में पेश किया जाए। एक और दस्तक अर्ज किया गया कि दजला फ़रात की घाटी में यही हुआ था। अदीब खने लगा इसका जवाब भी कोफ़ी अन्नन देगा। इसी बीच अनेक दस्तकें अकुलाने और शोर मचाने लगी तब अदीब उन्हें शान्त करता था। देवदासी रूना से कहा गया कि गिलगमेश की आवाज को उसके रक्त में मिलाकर सुरक्षित कर लिया गया, जब तक मनुष्य जाति रहेगी, उसकी धमनियों में दौडता हुआ रक्त था, तब तक यह आवाज़ जीवित रहेगी। देवदासी रूना यह भी कहने लगी कि सावधान रहना अदीब मनुष्य विरोधी शक्तियाँ रक्तत और रक्तपात की परंपरा शुरू करेंगी। देवताओं की संस्कृति रुग्ण, पतित और व्यभिचारी की तरह थी, वे आवाज़ को छीनने के लिए कुछ भी कर सकेंगे। उसके बाद महमूद हाज़िर हुआ। वह कोफ़ी अन्नान को लेने के लिए गया था, लेकिन कोफ़ी अन्नन उसके साथ नहीं था। वह अस्पताल में था, उसकी छाती पर तेज़ दर्द था। अदीब युद्ध से होने वाले भयंकर भविष्य के बारे में भाषण देने लगा, और महमूद से कहने लगा कि इस तरह के

भविष्य के लिए कोफ़ी अन्नन को राष्ट्रों का संयुक्त लोकतंत्र सौंपा गया था। महमूद जवाब के रूप में कहने लगा कि कोफ़ी अन्नान इसकी बारीकियाँ समझ नहीं पाएगा। उसे अदालत में हाज़िर कराना ज़रूरी था। अदीब कहने लगा कि कानून के नाम पर कानून और धर्म के नाम पर धर्म का व्यापार करनेवालों के पास साहस नहीं था , इसलिए वे इस अदालत में हाज़िर नहीं हो पाएगे। उसके बाद देवदासी रूना ने अदीब से जाने की इज़ाज़त माँगी, तब अदीब ने कहा कि रूना अपना ख्याल रखना क्यों कि देवता माफ़ नही करेंगे, शायद तुम्हें सज़ा देंगे, इसलिए शुभकामनाएँ, इसके साथ रूना चली जाती थी। उसके बाद अदीब महमूद से कहने लगा कि उसे कईम ले चलना। तब महमूद कहने लगा कि बाहर ज़ोर ज़्यादा था, हाहाकार, चीत्कार, आगजनी, सामूहिक हत्यायें, बलात्कार, चीख, अपहरण, अजन्मे बच्चों के तो थडे, कीडे पडी बिजबिजाती फ़ूली हुई लाशें, अर्धजीवित और मृत देहों और माँस खा खाकर थके हुए लकडबग्घे, कुत्ते, गिद्ध और रक्त प्लावन का दृश्य। यह तो सहस्रों साल पहले हुए जल प्लावन से भी भयंकर दृश्य था। महमूद उसे एक नाव में बैठाकर रक्त का महसागर पार करने लगा लेकिन उसका कोई अन्त नहीं था। बाद में अदीब को जयशंकर प्रसाद के शब्द गूँज रहे, और सुमेरी सभ्यता की देवी इनन्ना का आर्तनाद सुनाई पड रहा। फ़ालस्तीनी युनानी गाथाओं के स्वर भी सुनाई पड रहे। अदीब महमूद को याद दिलाता था कि पृथ्वी के विनाश के लिए देवता ज़ीयस ने बादलों का आकाश मार्ग खोल दिया था। तब चीन में यू प्रलय की जलधाड़ों के लिए मार्ग बनकर उन्हें समुद्र में प्रवहित किया गया था और ची नदी की मिट्टी को अपनी बाँहों में समेट लिया गया था, ताकि प्रलय के बाद बीज डालकर मनुष्य के लिए अन्न उपजाय जा सके। इस तरह का यू हमारे दौर में पैदा हो तो इस रक्त प्रलय को रोक सकेगा। महमूद कहने लगा कि गाँधिजी बहुत कोशिश करते थे, लेकिन वे अकेले पड गये। बाद में अग्नि प्रलय

आ जाएगी, तब गाँधिजी और आइंस्टीन के पश्चाताप की बहुत ज़रूरत पडेगी।

बूटा सिंह और जेनिब की शादी हो चुकी थी, उन्हें एक बच्ची पैदा हुई, उसका नाम था तनवीर कौर। बाद में हिन्दुस्तान का आखिरी वायसराय लार्ड माउंट्बेटन और उसकी पत्नी एडविना दोनों विभाजन संबन्धी बातचीत कर रहे थे। गाँधीजी, नेहरू, पटेल, गफ़्फ़ार खाँ, जिन्ना भी विभाजन को लेकर उदासी थे। जिन्ना पाकिस्तान माँग रहा था, लेकिन माउटबाटन को पूछने के बाद वह मौन रह गया। माउटबाटन विभाजन को मंजूर करता था। बाद में मुस्लिम लीग का जयकार होने लगा। तब से पाकिस्तान बनने की शुरुआत हुई। एक अधेड खद्दर धारी आकर गाँधीजी को इसकी सूचना देता था। तब बाउऊ कहने लगा गलत फ़ैसलों से हिंसा उपजती रही और हिंसा से अपसंस्कृतियाँ और रक्तपात होते रहेंगे। बाद में उसकी अदालत में रक्त सनी , पश्चिमी सीमांत से एके 47 चीनी राइफ़िल, उत्तर पश्चिमी सीमांत से भागकर आए परिवारों , उनकी आहों और कराहों, कश्मीर के हिन्दू, उलफ़ उग्रवादियों, 1984 की विधवाएँ, दक्षिण से नक्सलपंथियों, मेहम चुनाव के बीस मुर्दे, बटाला बस कांड की लाशें, लोकसभा, लंका के लिट्टियों, जमा मस्जिद से अब्दुल्ल बुखरी आदि दस्तकें दी गयी। खालिस्तान बनाने वाले, पकिस्तान में पाकिस्तान बनाने वाले वहाँ आ गये। अदीब कश्मीर पंडित मुशीर साहब से कुछ पूछने लगा, तब वह कहने लगा वह मुसलमान था, पाँच वक्त का नमाज़ पढता था, इसलिए किड्नाप किया गया, और दूसरे दिन मारा गया। अदीब ने कहा कि वक्त को पीछे ले जाने से पकिस्तान बन जायेगा। वक्त को कितने पीछे ले जाना पडेगा?। तब त्रिशूल धारी कहने लगा कि बाबर तक , क्यों कि गुलामी का इतिहास बाबर से शुरू होने लगा। तब भागलपुर का एक बुड्ढे ने चिल्लाया कि हमारी गुलामी का इतिहास अंग्रेज़ों के आने से शुरू होता था। तब त्रिशूल धारी

भभक गया कि बाबर आते ही रामजन्म भूमी मन्दिर तोडा गया और वहाँ बाबरी मस्जिद बनवाया गया था। पाकिस्तान बनना तब से शुरू हो गया था। अदालत में बाबर हाज़िर होता था। वह आते ही बैठने के लिए शाही तख्त चाहता था। उसके बाद वह उसके बारे में कुछ कहने लगा। फ़्यूहरर आकर बाबरी मस्जिद के संबन्ध में अनेक बातें और हिसाबों को रख देता था। बाद में बाबर की बेटी गुलबदन बेगम को अदालत में हाज़िर किया जाता था, और अदीब बाबर के बारे में जानने के लिए उससे कुछ बातें पूछता था। बाबर के बाबा के हमले के बारे में बातें होती थीं, उसके बाद बाबर के समकालीन छत्रदास आकर बाबरी मस्जिद के बारे में कुछ निष्कर्ष निकालता था। बाद में अनेक दस्तकें पडने लगी, उल्फ़ा विद्रोहियों के द्वारा मारे गये मुर्दे आ गये थे। बाद में अदालत स्थगित की गयी थी।

इसके साथ बिलकीस नामक हिन्दुस्तानी लडकी की ज़िन्दगी की बरबादी, कोरियन लडकी सत्तर साल की किम हकसुन की कथा के बाद अदालत में शोर मचाने लगा महमूद जल्दी से अदीब की जान बचाई और उसे लेकर भाग गया। बाद में लेखकों की पीरी जमत एक जगह बैठी थी। वहँ मनुष्य गाथा पर बात चल रही थी।

इसके उपरान्त अदीब की मुलाकात सलमा से होती थी, सलमा सन सैतालीस में हिन्दुस्ताम में पैदा हुई थी। जब पार्टीशन हुआ था तब सलमा मम्मी की कोख में थी। सलमा की शादी सलमान नामक लडके से हुई। उनका बच्चा सोहराब था। उसका नाना पाकिस्तान में था। उसका माता पिता हिन्दू सिख थे, इसलिए विभाजन के समय पाकिस्तान से भारत की ओर आ गये। अदीब के साथ उसका रिश्ता आरंभ हुआ। अन्त में मज़हब बदलने के बारे में सोचती थी। इसके बीच नईम नामक कट्टर मुसलमान

आता था। सलमा मज़हब बदलने के बारे में इसलिए सोचती थी कि नईम जैसे लोग उन्हें जीने नहीं देगें। सलमा और अदीब मज़हब नहीं बदला गया। वे पूरब की ओर भाग गये। वहाँ एक इतिहासपुरुष से उनकी मुलाकात होती थी। वह दोनों के संबन्ध को अच्छा समझता था और कुछ दार्शनिक विचारें उनके सामने रखकर वह अदृश्य हो गया। सलमा के जाने के पूर्व अदीब उससे कहता था कि आप पाकिस्तान शायर सारा शंगुफ़्ता से मिलना चाहिए वह अब अमृता प्रीतम के घर में थी। अदीब उसके घर में जाता था और अमृता प्रीतम उसे बुलाती थी। अदीब को वह सलमा जैसा लगता था। पूछने पर कहती थी कि वह सलमा नहीं सारा शगुफ़्ता थी। उसके बेटे की हत्या हुई और उसके लाश अब भी उसके गोद में थी।

अदीब औरंगज़ेब को अदालत में हाज़िर करता था। वह अपनी कब्र में अराम से सोया पडा था। उससे कुछ बातें पूछता था। उसने कट्टर शुद्धतावादी मुसलमान की तरह राज्य को मज़हब से जोड दिया। उसने अपने पिता को कैद किया, भाइयों को मारा। तदुपरान्त में दाराशिकोह हाज़िर होता था, उसे देखकर औरंगज़ेब चौंक जाता था। दारा की पत्नी नादिरा की मौत तो होती थी। उसका अन्तिम इच्छा यह थी कि उसका दफ़्न विदेश में न हो जाय, उसकी लाश तो वापस हिन्दुस्तान में भेज दिया जाय। अर्दली परेशान होकर अदीब को बुलाता था। तब अदीब बूटा सिंह और जेनिब के पास राजस्थान में था, बाद में क्वेटा शहर में सलमा को तलाशने गया था। फ़िर वह विद्या को तलाशने के लिए निकल पडा था। अदीब और सलमा की मुलाकात होती थी। अदीब सलमा के पुत्र को साथ लेने के लिए तैयार था। लेकिन तब दूसरा जंग आरंभ हो जायेगा। बूटा सिंह ने जेनिब को पाने के लिए कलमा पढा और मुसलमान हो गया। नाम बदलकर जमील अहमद कर गया और बेटी तनवीर कौर का नाम सुलताना रख गया। जब

उसे पाकिस्तान जाने और अपनी बीवी से मिलने का वीज़ा नहीं मिल गया, तो वह छिप कर राजस्थान की सरहद से पाकिस्तान में दाखिल हो गया। अन्त में उसने अपनी बेटी के साथ खुद्कुशी की। बंबई में मोडल जेसिका लाल की हत्या हो गयी। माउटबाटन ने तो पाकिस्तान को विभाजन केलिए इज़ाज़त दिया। अमरीका ने नागसाकी और पोखरन में अणु बंब का वर्षा किया। चगाई में भी बंब वर्षा तो हो गया। उपन्यास के अन्त मे कबीर दास पोखरन और चगाई में बोधिवृक्ष लगाने के लिए निकल पडता था।

काशीनाथ का 'काशी का अस्सी' उपन्यास शहर बनारस के दक्खिनी छोर पर गंगा किनारे बसा ऐतिहासिक मुहल्ला अस्सी की कथा कहता है। इस मुहल्ले के चौराहे पर एक भीड - भाडवाली एक चाय की दूकान थी। इस दूकान में रात - दिन बहसों में उलझते , लड्ते - झगडते गाली गलौज करते कुछ स्वनामधन्य अखाडिए बैठकबाज थे। इस तरह की चर्चाएँ कभी खतम नहीं होती, इसमें जिन्हें आना हो आएँ, जाना हो जाएँ। उपन्यास की शुरुआत में एक संस्मरण जो वयस्कों के लिए रखता था। इसमें अस्सी के लोगों की संस्कृति का वर्णन था। वहाँ का सार्वजनिक अभिवादन हर हर महादेव था, अब वह बदलकर भोसडी के नारा हो गया। चाहे होली का कवि सम्मेलन हो, चाहे कर्फ़्यू खुलने के बाद पी. एस. सी और एस. एस. पी की गाडी, चाहे कोई मन्त्री हो, चाहे गधे को दौडाता नंग - धडंग बच्चा - यहाँ तक कि जार्ज बुश या मार्गरट थेचर या गोर्बाचोव चाहे जो आए सबके लिए हर हर महादेव के साथ 'भोंसडी के 'जय जयकार थे। अस्सी की नागरिकता का सरनेम गुरू था। जो पैदा हो , मरा हो सब गुरू थे। संस्मरण के अन्त के बाद स्वयं लेखक अपनी तरफ़ से आ जाते थे । उसका कहना था कि मित्रो यही अस्सी मेरा बोधगया था और अस्सीघाट पर गंगा के किनारे खडा वह पीपल का दरख्त बोधिवृक्ष, जिसके नीचे मुझे निर्वाण प्राप्त हुआ था। सन 53 में वे

इंटर की पढाई के लिए गाँव से बनारस आ गये। मझले भाई रामजी सिंह के साथ वे बनारस आ गये। एक दिन भैया उससे कहता था कि उसकी अंग्रेज़ी कमज़ोर थी। इसलिए वे अंग्रेज़ी पढने का निश्चय कर लेता था। वे पीपल दरख्त के पास जाकर अंग्रेज़ी में कुछ बताकर अंग्रेज़ी सीखने लगे। अस्सी मुहल्ले वाले गाते, बजाते, झूमते मदमाते ज़िन्दगी जी रहे थे। किसी के पास कोई डिग्री नहीं, रोज़गार नहीं, नौकरी नहीं, व्यवसाय नहीं, काम नहीं। कहते थे, बुढापे में तुलसी बाबा कुछ - कुछ 'पिकाह' और चिड्चिडे हो चले थे। मुहल्ले वालों ने उनसे ज़रा सी छेड्छाड की, पिनक गये और शाप दे डाला गया 'जाओ , तुम लोग मूर्ख और दरिद्र रह जाओगे। यहाँ लेखक को इससे मतभेद था, और कह गया कि मुहल्ले वालो, बाबा से अधिक तंग शान्ति प्रिय द्विवेदी को किया गया। सन 70 के जादों के दिन में प्यारेलाल सलीम की दूकान पर खडा हुआ था तब रिक्शे पर एक मित्र आकर उससे पूछने लगा कि आवारगी करने का मन था डाक्टर ? वह तब चकित रह गया। वह बाद में उससे कुछ दार्शनिक विचार प्रस्तुत किये गये। अस्सी पर प्रवासियों की एक नस्ल थी - शुरू में लेखकों और कवियों की। आज़ादी के बाद देश में जगह - जगह 'केन्द्र' खुलने शुरू हो गये थे - मुर्गी पालन केन्द्र मत्स्य पालन केन्द्र, मगर - घटियाल - पालन केन्द्र। केदार चाय वाले की दूकान में कवि और लेखकों का अपना एक केन्द्र खुलने लगे, कवि - पालन केन्द्र। इसके मानद इंचार्ज थे समीक्षक नामवर सिंह और पर्यवेक्षक थे त्रिलोचन। 60 शुरू होते होते कवि भी फ़ुर्र हो गये और केन्द्र टूट गया। सन 65 के आसपास जब धूमिल का आविर्भाव हुआ तो वे गुरू के चरण चिन्हों पर चलते हुए केदार चायवाले के सामने हज़ारी की दूकान को केन्द्र बनाने की कोशिश की गयी। अस्सी की परंपरा में शामिल था विश्व प्रसिद्ध कवि सम्मेलन । इस परंपरा का रक्षक था डा. गया सिंह। वह हरिश्चन्द्र महाविद्यालय का अध्यापक था। अपने को विद्वान साबित करने के

लिए वह कई लोगों से कई मुकदमें लडने लगा। भारतीय संस्कृति के भाजपाई चारवाहों अस्सी परंपरा के रखने वालों से कहा गया कि होली का यह कवि सम्मेलन नहीं होगा। यह तो अश्लील गन्दा , फ़ूहड सम्मेलन था। इससे सडकें और गलियाँ जाम हो जाती थी, यातायात ठप हो जाते थे।। बाद में पप्पू की दूकान का वर्णन होता था। यह जगह तो कलाकारों, चित्रकारों, नेताओं और नागरिकों की दैनिक छावनी थी। वीरेन्द्र श्रीवास्तव और रामवचन पांडे अस्सी के बडे बुजुर्ग नेता थे। दोनों समाजवादी थे। एक और समाजवादी नेता था, देवव्रत मजुमदार। इनके सिवा अस्सी पर नेताओं की दूसरी प्रजाति थी जो संपूर्ण क्रान्ति के जच्चा बच्चा केन्द्र से निकली गयी थी। अस्सी के सभी आदिवासी रामभक्त हो गए और कारसेवा की तैयारी में लग गये थे। इसमें अयोध्या बाबरी मस्जिद की समस्या का वर्णन व्यग्य के रूप में है। अस्सी का अशोक पांडे नेता था , वह जनप्रतिनिधि नहीं। जनप्रतिनिधि तो अस्सी पर एक ही शख्स था, रामजी राय। जो बच्चन की बेंच पर बैठा वह सारा तमाशा देख रहा था। सरजू की जगह अयोध्या में खून की नदी बह रही थी। मस्जिद के ऊपर भगवा ध्वज लहराया गया। राजनीति की बात थी कि एक सरकार गिरी तब दूसरी सरकार बनी रही, हमेशा ऐसी ही बात। अस्स्सी पर लेखक के दो दोस्त थे, हरिद्वार और रामवचन। रामवचन पांडे तो हरिद्वार के भी गुरू था, गुरुओं के भी गुरू था। वह सन 60 के बाद नए संविधानवाले काशी विश्वविध्यालय छात्रसंघ के प्रथम अध्यक्ष था और लालू, शरद यादव, रामविलास पासवान और जाने कितने केन्द्रीय और राजमन्त्रियों के और पार्टी अध्यक्षों - महासचिवों को जेल में समाजवादी राजनीति का पाठ पढानेवाले थे। वह पैंसठ के ज़माने के एम. एस भी था और पिछले तीन वर्षों से राजनीति में बेरोज़गार था। वे इस दौरान होनेवाले सभी चुनावों - चाहे संसद हो, चाहे विधानसभा - के तीन चार महीने पहले गंभीर हो गया था। उसे पार्टी का टिकट नहीं मिल गया। वह हरिद्वार के बाद

रामवचन भी अस्सी का संसार छोडकर चला गया। बाद में नईम की दूकान में होने वाली बातें हैं। वहाँ चुनाव के बारे में बातचीत होती थी। लेखक पप्पू की दूकान में आ गये थे तब वहाँ से चार महाकवि कौशिक रवीन्द्र उपाध्याय, सरोज यादव, श्रीप्रकाश और बद्रीविशाल , बाहर निकल रहे थे।वे लोग किसी कवि सम्मेलन की तैयारी में थे। अस्सी का तन्नी गुरु दूसरे गुरुओं की तरह सन्यासी या फ़कीर नहीं।

अलका सरावगी का उपन्यास 'शेष कादंबरी' नारियों की कथा कहने वाला उपन्यास था। इसमें रूबी गुप्ता अथवा रूबी दी परामर्श नामक संस्था चलाती थी। इसमें रहकर अनेक स्त्रियाँ अपनी सुरक्षित ज़िन्दगी का एहसास करती थी। रूबी दी के माता पिता धनिक परिवार के थे। वे रूबी दी का माता पिता नहीं थे। वे रूबी दी का पालन पोषण करने वाले थे। बचपन में उन्हे इसके बारे में मालूम नहीं था। ग्यारह साल की उम्र में उसके सामने इसका रहस्योद्घाटन होता था। उसे लगा कि इस दुनिया में अपना कोई नहीं। इसी विषमता से जकडी रूबी की शादी हो चुकी थी, वह दो बच्चों की माँ भी बन जाती थी। वह अपने आप को अकेली महसूस करके रह जाती थी, इसलिए न तो वह पति और न ही बच्चों से जुड पाती थी। ससुराल में अनेक कष्टों को झेलना पडा था। एक लडकी की पुत्री कादंबरी के साथ उसका रिश्ता अधिक स्नेह पूर्ण एवं सघन थे। शादी के पहले रूबी दी एक मुसलमान लडके से प्यार करती थी, पर दुर्भाग्य कि ऐन मौके पर वह डर कर उन्हें छोडकर भाग गया था। लेकिन कादंबरी अपार दृढ विश्वास रखने वाली थी। वह एक फ्रेंच कट दाढी वाले पत्रकार के साथ दिल्ली में अकेली रहती थी। अखबार, टी. वी, में काम करती थी। उम्र चौबीस साल। उसका प्रेमी था गौतम। वे दोनों शादी न करके एक साथ रहते थे। इस बीच देवीदत्त मामा उसका जन्म 1900 में हुआ था। उन्होंने स्वाधीनता आन्दोलन में

काम किया था। वे गाँधीजी, नेहरू, जयप्रकाश नारायण और सभी समकालीन बडे नेताओं के करीबी थे। वे अनेक बार जेल गये थे, इसलिए उन्हें जेली मामा के नाम से जाना जाता था। कादंबरी 'एक अदृश्य आदमी" के शीर्षक से देवीदत्त मामा पर एक रिपोर्ट लिखती थी।। इस बीच मिस्टर वियेना की प्रेम कथा भी आती थी। मिस्टर वियेना रूबी का इतिहास का अध्यापक था। कादंबरी अपनी नानी से कहती थी कि वह अपनी कथा लिखे, पर आत्मकथा नहीं कथा के रूप में लिखे। सविता परामर्श में रहने वाली लडकी थी। उसकी माँ की मृत्यु हो गयी। उसके बाप ने दूसरा विवाह किया। उसके भाई का विवाह हो गया। उसे देखने वाले कोई नही थे, इसलिए बीमार होती सविता को रूबी दी अपने घर लाती थी और मरणासन्न लडकी को दूसरा जीवन प्राप्त होता था। माया बोस नामक लड्की जो वेश्या थी, उसके पिता उसकी इज़्ज़त लूटता था, यानि आठ साल में सृष्टि कर्ता उसका यौन शोषण करता था। सायरा नामक लडकी रूबी दी की सेवा करने वाली थी। उसे एक मनोरंजन व्यापारी उसके घर काम करने लाया था। उसके आने के दो दिन बाद पता चलता था कि वह गर्भवति थी। रूबी दी उस मनोरंजन व्यापारी की प्रतीक्षा कर रही थी। लेकिन उसे मिलते नहीं थी। आभा जैन एक भाग्य रहित माँ थी। क्यों कि उसकी बीस साल की लडकी ने आत्महत्या की थी। आत्महत्या का कारण उसको मालूम नहीं था। केवल अनुमान लगाया जा सकता था कि वह मोडल बनना चाहती होगी या किसी किसी के प्रेम में पडकर अपने से आधिक कमर वाली लडकी को हराना चाहती रही होगी। रूबी दी इस बीच सविता के लिए वर को ढूँढ्ती थी। प्रीति, श्यामा, गौरी, नामक लड्कियों की कथा भी थी। अन्त में रूबी दी अपनी अन्तिम वसीयत लिखती थी, इसमें ये लिखती थी कि पच्चीस हज़ार रुपया सायरा को था। संपत्ति का एक मात्र वारिस नातिन कादंबरी थी और यह प्रार्थना थी कि वह सविता को आत्मनिर्भर ज़िन्दगी जी पाने के लिए खुद को मिलने वाले नकद

रुपयों में से पच्चीस प्रतिशत रुपये दे। यह कादंबरी के लिए कोई आदेश नहीं था। न ही सविता के लिए इन रुपयों को स्वीकार करने की कोई बाध्यता थी। सविता से यह प्रार्थना थी कि वह ज़रूरत होने पर इन रुपयों को अपना अधिकार समझ ले।

दूधनाथ सिंह का उपन्यास 'आखिरी कलाम' प्रमुख रूप से बाबरी मस्जिद समस्या का बाकि पत्र प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है। उपन्यास की शुरुआत में सविनय नामक शिष्य अपना आचार्य तत्सत पाण्डे को फ़ोन करके एक शब्द प्रस्तुति के बारे में बताता था। प्रस्तुति का विषय था 'किताबें शक पैदा करती हैं''। जिस दिन सविनय फ़ोन करता था उस दिन तत्सत पाण्डे का जन्मदिन था। भाषण तो फ़ैज़ाबाद में था। उस समय अयोध्या में दंगा चल रहा था। इसके होने पर भी आचार्य जी जाने का निश्चय किया गया था। उसका एकमात्र पुत्र विदेश में था। वह तो एक वैज्ञानिक था। उसकी पत्नी गायत्री ब्राह्मण की कन्या थी, अपरूप सुन्दर। खूब अच्छा संस्कृत का ज्ञान वाली थी, वह शास्त्रार्थ भी कर सकती थी। वह रोज़ पूजा पाठ करने वाली थी। अपनी ससुराल में आते दिन उसे मालूम होगा कि वहाँ पूजा के लिए कोई कमरा नहीं था। इसलिए वह माता जी से पूछने लगा कि माताजी पूजाघर कहाँ था? यह सुनकर माताजी चौंक गयी थी। उसने कुछ नहीं कहा। तब गायत्री देखने लगी कि एक कमरा खाली था। वहाँ कुछ किताबें रखी हुई थी, वे सब बाहर रखकर कमरा साफ़ कराकर वहाँ पूजा के लिए मूर्तियाँ रखने लगे। अगले दिन सुबह उठकर आरती लेकर आचार्य के पास आया। आचार्य ब्राह्मण था, लेकिन वह और उसके घर वाले सब सत्य पर भरोसा रखने वाले थे। गायत्री को यह सब अच्छा नहीं लगता। उसकी आदत उतनी अच्छी नहीं थी। उसकी क्रोधपूर्ण आदत का कारण तो उसका बाप ही था। उसका बाप तो एक व्यभिचारी व्यक्ति था। वह अन्य स्त्रियों से संबन्ध रखने वाला था। इसलिए गायत्री के मन में सभी पुरुषों

के लिए द्वेष का भाव था। माधवानन्द को गयत्री की आदत से बहुत कष्ट तो पहूँचा। उसकी आदत को देखकर आचार्य ने उसे छोड्ने का भी निश्चय किया। लेकिन माधवानन्द उसे छोडने के लिए तैयार नहीं था। वह पत्नी समेत अमेरिका गया। वहाँ भी गायत्री अपने पूजा पाठों में तत्पर रहती थी। माधवानन्द के माथे पर चन्दन का टीका लगाकर उसे जाने दिया। उसके माथे पर चन्दन का टीका देखकर यूनिवेर्सिटी के अन्य सभी वैज्ञानिक को लगा कि वह तो एक कट्टर ब्राह्मण व्यक्ति था। कुछ लोगों ने इसके बारे में उससे कुछ बातें की। यूनिवेर्सिटी में उसकी सहायिका एक गब्रियेला थी। उसके साथ काम करना गायत्री को पसन्द नहीं था। इससे दोनों में झगडा तो होता था। वह वापस ससुराल में आ गयी। उस समय वह गर्भवति थी। वह फ़िर वहाँ से अपने घर जाने लगी वहाँ उसका बेटा रविकान्त तो पैदा हुआ। आचार्य और पत्नि दोनों बच्चे से मिलने उसके घर गये, लेकिन दोनों बच्चे से मिले बिना वापस आ गये। लेकिन चार बरस के भीतर गायत्री का पत्र आ गया कि वह 'अपने घर' आना चाहती थी। इस बीच आचार्य जी अनाथालय से एक बच्चे को लाये गये। उस समय लोगों का कहना था कि बच्चा सुबह उन्हें सुबह के सैर के वक्त कूडे के ढेर पर मिल गया। कुछ निन्दकों का विचार था कि आचार्य जी एक ईसाई नर्स से फ़ँसे थे और बच्चा उसी नर्स का था। उसका नाम बिल्लेश्वर था।उसे सब लोग चुडुकदास कहते थे। लेकिन आचार्य जी को इस तरह बुलाना पसन्द नहीं था। गायत्री के घर से आने के बाद आदत में कोई बदलाव नहीं दिखाती थी। वही पूजा पाठ। वही कलह। वही रोना - धोना। वही बकझक। वही रोज़ - रोज़ का सरापना - अपने पति को, साँस ससुर को, बिल्लेश्वर को, अपने खुद को। और यह सबकुछ अधिकारपूर्वक और रौब - दाब के साथ। माताजी और आचार्य जी का मना करने का उसके ऊपर कोई असर नहीं होता। रविकान्त तो बडा हो गया, उसके बाप विदेश में गब्रियेला के साथ रहने

लगा। तब गायत्री यह सोचने लगा कि उसका पति तो अशुद्ध हो गया था। रविकान्त की शादी हो गयी उसके दो बच्चे पैदा हुए थे। उस घर में गायत्री और सुहासिनि जो रविकान्त की पत्नी थी, दोनों जीवित वैधव्य का एहसास करती थीं।

आचार्यजी बिल्लेश्वर और सर्वात्मन तीनों फ़ैज़ाबाद की ओर रवाना हुए । तब अयोध्या की ओर जाने वाले कुछ करसेवकों को दिखाई पडा। सफ़र के बीच में बिल्लेश्वर ने आगे आ गयी दो मिनी बसों की ओर इशारा किया। बसों के आगे पीछे भगवा बितान खींचकर बाँधे गये थे और लगातार नारों की गूँज उठ रही थी। कुछ इस तरह जैसे अन्दर जयश्रीराम ब्रैंड का बारूद हो, जो अभी अचानक बसों की छतें उठाता हुआ पेडों की हरी - हरी धनुषाकार छाँको भस्म कर देगा। लेकिन बसों की छतों पर भी लोग थे जो भीतर के नारों को तुक और लय में आकाश तक उठा रहे थे। आचार्य जी ने ग्रमीण पुस्तकालय के उद्‌घाटन समारोह में भाषण दिया था। वहाँ सविनय तो मौजूद था। इसके बीच में मिसरजी, मियाँ आदि की बातें और कथाएँ थी। आचार्य जी इसके बीच जो स्वप्न देखने लगे थे, इसमें उसके सब घर वाले शामिल थे। आचार्य जी अध बने मन्दिर को देखने के लिए क्यू में खडे हो गये। और उसने सर्वात्मन और बिल्लेश्वर को भी क्यू में खडा कर दिया। उस समय उसकी तबीयत ठीक नहीं थी। उस क्यू में खडे हो कर उसकी तबीयत और भी खराब हो गयी। डाक्टर को बुलाकर उसकी तबीयत के बारे में जाँझ की गयी। लक्ष्मण घाट के यहाँ भीड में पडकर आचार्य जी गिर गये थे, इससे उसके शरीर में चोट हो गयी, बिल्लेश्वर और सवात्मन दोनों इससे अत्यधिक दुखी होने लगे। माधवानन्द ने आचार्य को फ़ोन किया था, तब फ़ोण गायत्री ने उठाया। आनेक वर्षों बाद गायत्री ने अपने पति की आवाज़ सुनी। पिताजी के बारे में पूछ्ने पर वह अयोध्या में था

कहकर वह फ़ोन रखती थी। अयोध्या में करसेवकों के द्वारा अनेक कष्ट तो पहूँचाया गया था।

श्रीलाल शुक्ल का उपन्यास 'विश्रामपुर का सन्त' का नायक कुंवर जयन्ती प्रसाद सिंह था, वह प्रसुत देश का राज्यपाल था। 1952 की गर्मियों का समय, उस समय जमीन्दारी प्रथा का समाप्त होने के कुछ महीने पहले विनोबाभावे अपने दलबल सहित उसके क्षेत्र में भूदान यज्ञ का मन्त्र फ़ूँकने आ गये। उस वक्त कुँवर जी ने अपने दो गाँव को विनोबा भावे को दे दिया। उस समय एक समाजवादी आन्दोलन में उसके बडे भाई राजा साहब जेल चले गये थे। सारी भूमि के कानूनी मालिक बडे भैया था। कुंवर जी की प्रेमिका जयश्री थी, वह शादी शुदा थी, उसका पति एक बडे ज़मीन्दार घराने की संतान था। विलायत में शिक्षा पाकर वह इंडियन सिविल सर्विस में शामिल हुआ था, जिसमें उन दिनों अंग्रेज़ों की संख्या अधिक थी। देश की आज़ादी के बाद जयश्री के पति को लंदन के हाई कमीशन में तैनात कर दिया गया था और वह उसके साथ विदेश चली गयी थी। वहाँ किसी दुर्घटना में उसकी मृत्यु हो गयी थी। बाद में कुँवर जी की मुलाकात सुन्दरी से होती थी। वह एक समाज सेविका थी। उसकी चेहरा जयश्री की जैसी थी। सुन्दरी से परिचय होने के कुछ साल पहले ही जयश्री की मृत्यु हो चुकी थी। उस समय वह छियालीस साल की रही होगी। कुंवर जी का बेटा विवेक आर्थशास्त्र में एम. ए. करके रियासत के पासवाले कस्बे के कालेज में लक्चरर बन गया था। निर्मल भाई और सुन्दरी के साथ उसका रिश्ता था। कुंवर को सुशीला बेन से यह खबर मिल गयी कि सुन्दरी का असली नाम दमयन्ती था, उसका पति किसी कालेज में बि. ए. का छात्र था, 1942 में भारत छोडो आन्दोलन में वह गिरफ़्तार हुआ, ब्रिटिश हुकुमत उसे ढाई साल बाद जेल से छोड दिया गया था। उसके कुछ महीने के बाद उसकी मृत्यु हो गयी थी। विवेक और कुंवर

जी दोनों सुन्दरी को चाहते थे। लेकिन दोनों की चाहत असफ़ल ही रह गया था। अत में कुंवर जी खुदकुशी किया गया था। विवेक पत्नी के रूप में सुन्दरी को चाहता था लेकिन इनकार होने पर उसका सारा जीवन एक ट्राजडी बन गया था।

गिरिराज किशोर का उपन्यास 'पहला गिरमिटिया' का नायक मोहनदास करमचन्द गाँधी था। वे पहले गिरमिटिया होकर दक्षिण आफ़्रिका की ओर जाते थे। दक्षिण आफ़्रिका में वे दादा अब्दुल्ला के यहाँ बारिस्टर बन गया था। तब वहाँ गोरों का शासन चल रहा था। गोरे लोग जो थे उन्होंने वतनी लोगों के सपनों को तबाह कर उसके सपने वहाँ रोप दिया था। दक्षिण आफ़्रिका के कबीलों को अपनी ताकत के बारे में संदेह था। गोरे लोगों को देखते ही उन्हें लगता था कि वे ही सब कुछ थे। गोरे लोग वतनी लोगों को अनेक प्रकार का कष्ट देते थे। ये सब सिर्फ़ वर्ण भेद के नाम पर थे। गोरों का खेती बल ज़्यादा था इसलिए वे धनी बनने का चूर चूर होकर बिखर रहा था। वतनी लोग सिर्फ़ मक्का उगना जानते थे, कहीं कहीं गेहूँ भी उगा लेते थे। गोरे चाहते थे कि शीतोष्ण जलवायु में शीतोष्ण फ़सलें बोएँ और काटे। ऎसी हालत होने के कारण उनकी स्वतंत्रता कंहीं गायब हो जाती थी। जान मिलन वहाँ की खेती के मामले में पूरा हकीम था। एक दिन वहाँ एक बहस चल रहा था जिसमें वह शामिल था। गैर मुल्की अश्वेत मज़दूरों के आयात के बारे में निर्णय हुआ था। परन्तु चार साल तक वह निर्णय ठण्डे बस्ते में पडा रहा था। अठारह सौ पचपन में जाकर प्रत्यावेदन तैयार किया गया और जान मिलर के नेतृत्व में नेटाल गवर्नर के सामने पेश किया गया था।

भारत जब मारीशस को मज़दूर भेज रहा था तब भारत में उस समय ब्रिटिश उपनिवेश था। नेटाल में गोरों की हुकूमत थी। अठारह सौ साठ में सत्रह नवंबर में टुरो नामक जहाज़ बन्दरगाह

पर पहूँचा उसमें अनेक कुली थे। तब वहाँ नेटाली एजेण्ड एड्मण्ड मौजूद नहीं था। सारा पेपेर उसके पास था। सरकारी लोगों की समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्या करें ? तब फ़िलिप एडमण्ड की अनुपस्थिति में एक अच्छा काम किया गया कि आयात आदमियों को लगाकर बन्दरगाह के नज़दीक ही आस्थायी बैरके बनवानी शुरू कर दी गयी थी। उस जहाज़ में आए लोगों से मिलने के लिए पादरी लोग आए और क्रिस्तानी लोगों के बारे में पूछने लगा, और उनकी बीवियों और बच्चों के ऊपर पवित्र जल छिडका दिया गया। बच्चों को खाना वे लोग देते थे। मलबारी मुसलमानों और हिन्दू कुलियों का कोई पूछ्नहार नहीं था। गिरमिटियों की यही हालत थी कि काम ज़्यादा और राशन कम। देवाराम और अब्रहाम नामक मलबार से आए कुलियाँ थे। वे दोनों जब एडिंग्टन बन्दरगाह पर मिले थे तब से धीरे धीरे वह बन्दरगाह उनके लिए मलबार हो गया था। इस बीच एक जहाज़ समुद्र में टूट गया, उस दुर्घटना में अनेक लोगों की मृत्यु हो गयी थी। मोहनदास बारिस्ट्री पढने के लिए लन्दन गये थे। जब वे नेटाल आये तब सारे के सारे सपने बिखर चुके थे। दक्षिण आफ़्रिका में पहूँचते ही उनको अनेक प्रकार की कष्टताओं का सामना करना पडा था। कुछ लोग उनसे स्नेहभरी आँखों से मिला था। रेल यात्रा में गोरों की वरीयता देखकर वे अत्यधिक दुखी तो हो गये थे। अनेक भारतीय हिन्दू वहाँ आकर ईसाई तो हो गये। यह तो रोज़गार के लिए था। वहाँ देश तो पढे लिखे लोगों के लिए नहीं , गोरों के लिए था।

मोहनदास की मुलाकत मागी से होती थी। वह शुद्ध मन की औरत थी दूसरों को खिलाने की उत्सुकता उसमें थी। वह मोहन दास को अच्छा खाना देती थी। उसी प्रकार काट्स खुले और शुद्ध मन का आदमी था। उसे किताबें पढने का शौक था। जो भी किताव वह पढता था मोहन दास को भी पढने के लिए देता

था। जब वह पढ लेता था तो उस पर चर्चा करता था। मोहन दास ने वहाँ के भारतीयों को आंग्रेज़ी सिखाना शुरू कर दिया था। वे तो तीसरे वर्ण के थे, यह इसलिए कि उन्हें दो बार बिरादरी से बाहर कर दिया गया। एक बार तब जब लन्दन पढने जा रहे थे, दूसरी बार अब जब वे मुसलमान की नौकरी करने आ रहे थे। मोहनदास ने वहाँ के लोगों के खासकर कुलियों की प्रगति के लिए अनेक कार्य किए। वहाँ धर्म के नाम पर आनेक अत्याचार चल रहे थे। समाज सेवा के लिए उद्यत गाँधी को अपने घर के बारे में चिन्ता कम पडती थी। कस्तूरबा इससे दुखी हो गयी थी। बीच बीच में दोनों के बीच झगडा तो हुआ करता था। बाद में दोनों पछतावे कर रहे थे। दोनों के चार पुत्र थे। मोहनदास एक वर्ष की बारिस्ट्री के लिए वहाँ आये थे, उसे भारत लौटने का वक्त तो आ गया। वापसी के वक्त हुए विदाई समारोह, उसके रुकने का कारण बन गया। उस दिन अखबार में नेटाल संसद में भारतीयों के मताधिकार को लेकर एक बिल के बारे में खबर हो गया। भारतीयों का मताधिकार छिप जाता था। इसको लेकर गाँधीजी ने भारतीयों मे मताधिकार का अवबोध जगाया। अपने आधिकारों के लिए लडने का आह्वान किया। सब लोगों को इकट्टा करके प्रधानमन्त्री से मिले। इस बीच अनेक कुलियाँ ने आत्महत्या कर ली थी। गाँधी इस बात से अधिक दुखी होने लगे।

मोहनदास भारत वापस आए। तब उसकी मुलाकात गोपालकृष्ण गोखले और बालगंगाधर तिलक से हुई। फ़िर वे परिवार सहित जहाज़ में दक्षिण आफ़्रिका की ओर रवाना हुए। तब वहाँ प्लेग की महामारी फ़ैलने की खबर मिल गयी। इसलिए जहाज़ को दस दिन रुकना पडा, बीच में आँधी भी आ गयी। रोज़ यात्रियों को कीटाणु मुक्त करने की प्रक्रिया की जाती थी। फ़िर वहाँ पहूँच गयी। बाद में कस्तूरबा की तबीयत खराब हो गयी। उस समय उन्होंने सत्याग्रह में शामिल किया। पुत्र मणिलाल को

लाइसेंस फ़ेरी लगाने के जुर्म में जोहनासबर्ग में गिरफ़्तार कर लिया गया था। कस्तूरबा बीमारी से मुक्त होते ही सत्याग्रही तो बन गयी थी। तब शरीर से बीमारी ठीक तरह से नहीं गयी थी। बाद में कमज़ोर हो गयी, उसके पेट में कैनसर नामक महामारी था। इसलिए गाँधी जी उसकी सेवा के लिए निकल पडा। उसे अलोपति दवाएँ नहीं दी गयी थी। सिर्फ़ नीम की पत्तियों का जल दे रहा था। उन्होंने भारत की ओर जाने का निश्चय कर लिया। इससे लेकर एक भाषण तो हुआ, इसमें यह सूचित किया गया कि दादा अब्दुल्ला की मृत्यु हो गयी थी। अन्त में गाँधी यह सोचने लगे कि भारत को उसकी ज़रूरत थी इसलिए भारत उसे पुकार रहा था।

उपन्यास का कथानक पर यदि विचार किया जाए तो पता चलता है कि उपन्यास के लिए एक कथा को हमारे सम्मुख नहीं रखता है बल्कि वास्तविक इतिहास हमारे दिमाग में आ जाता है। मात्र इतिहास ही नहीं कल्पना के सहारे इतिहास अपनी खूबी और खामी के साथ हमारे नज़दीक आ जाता हैं। सामाजिक कथाओं के सहारे राजनीतिक और सास्कृतिक पक्ष भी उभर कर सामने आ जाता है। कितने पाकिस्तान उपन्यास में कथा के लिए जगह तो कम है, ऐतिहासिक पात्रों के द्वारा काल की निरन्तरता सामाजिक सास्कृतिक समस्याओं की निरन्तरता कहने में लेखक सफ़ल हुए हैं। 'कलिकथा वाया बाइपास', 'निन्यानवे', 'करवट', 'पीढियाँ', 'ज़िन्दा मुहावरे', 'आखिरी कलाम', आदि उपन्यास में पीढियों के सहारे समाज की निरतरता हमारे नज़दीक आ जाती है। 'शेष कादंबरी' में देवीदत्त मामा के उल्लेख के साथ उस समय के इतिहास , और नारियों की पीडा का इतिहास उभर कर सामने आ जाता हैं। उपनिषद्कालीन समाज के द्वारा 'अनामदास का पोथा' में नवीनता यानि बौद्धिक स्तर की निरन्तरता हमारे सम्मुख आ जाती हैं। 'काशी का अस्सी' में सूचित मिथक और समकालीन समाज जो है हमें कुछ सोचने के लिए विवश कर देता है। कहीं

समस्याओं का अन्त नही है, समस्याएँ दिन प्रतिदिन बढती जा रही हैं। कुछ साहित्यकार जो हैं आशावादि दृष्टिकोण के साथ उपन्यास की समाप्ति करते हैं। यह इसलिए कि इनके प्रभाव से मानव मस्तिष्क में कुछ विचार आ जाय या आदत में कोई बदलाव आ जाय।

पात्र एवं चरित्र चित्रण

उपन्यास में शिल्प के अन्तर्गत कथानक के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व पात्र योजना का होता है। पात्रों की सार्थक कल्पना तथा सटीक योजना से ही उपन्यासों में मानवीय संवेदना तथा प्रत्यक्ष अनुभूतियों का साक्षात्कार होता है। उपन्यासकार मानव जीवन के विविध प्रसंगों , अनुभवों तथा समस्याओं को विविध पात्रों की निजी परिस्थितियों के संदर्भ में प्रस्तुत करता है। लेखक की रचना शक्ति के अनुसार पात्रों के चरित्र का चित्रण स्पष्ट रूप से पाठकों के सम्मुख रखे तो पढने वालों पर उसका असर पडने में कोई दिक्कत नही आ जायेगी।

उपन्यास में चरित्र चित्रण की अनिवार्यता को लेकर बाबू गुलाब राय ने अपनी प्रतिक्रिया इस प्रकार व्यक्त की कि 'यदि उपन्यास का विषय मनुष्य है तो चरित्र चित्रण उपन्यास का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है क्यों कि मनुष्य का अस्तित्व उसके चरित्र में है, चरित्र के ही कारण हम मनुष्य को दूसरे से पृथक करते हैं'।[1]

---

[1] काव्य के रूप बाबू गुलाब राय, पृ. सं. 175

'अनामदास का पोथा' के पात्र हैं, रैक्व मुनी, जानश्रुति, जाबाला, ऋृतंबरा, ऋजुका, औदुंबरायण, अश्वालायन। रैक्व मुनी तपस्वी रिक्व का पुत्र है। उसका दुर्भाग्य है कि जल्दी ही उसके पिता की मृत्यु हो गयी, माता उसके जन्म के साथ प्रस्थान कर गयी। जंगल के कन्द मूल खाकर वह पेट भरता है। लेकिन किसी के द्वार पर जाकर भिक्षा नही माँगता है। वह एक ज्ञान पिपासु है। वह चिन्तनशील, प्रतिभावान युवक है। अपने चिन्तन में वह केवल वायु को ही सबसे प्रधान तत्व मानता है तथा वायु को ही प्रचण्ड शक्ति मानता है। वह अधिक भोला भाला युवक है। परदुखकातरता का भाव उसमें है। वह दूर से आये रोगियों की इलाज करता है। वह दीन दुखियों की सेवा को अधिक महत्व देता है। वह जाबाला का प्रेमी है।

जाबाला राजा जानश्रुति की इकलौती पुत्री है। बडे लाड प्यार से उसका लालन - पालन हुआ है। वह एक विदुषी युवती है। वह खेतों में जाकर कर्मचारियों के साथ खेती बारी का काम देखती है। अपने हाथों से गाय - बैलों की सेवा भी करती है। वह रूपवती एवं गुणवती है। वह एक विचित्र स्वभाव वाली युवती है। उसे प्रजा के प्रति प्रेम है, और प्रजा के दुख दूर करने के लिए गाँव - गाँव जाती है। वह एक वाग्देवता भी है।

ऋतंबरा, ऋजुका, अरुन्धती आदि स्त्रियाँ पुरुष से वाद विवाद कर सकती हैं। वे सब विदुषी है। औषस्ती ऋषी की पत्नी ऋतंबरा जहाँ एक तरफ़ रैक्व को अनेक प्रकार के उपदेश देती है, वहीं जीवन के प्रत्येक कर्तव्यों से भली भाँति परिचित भी है। घर आए अतिथियों का सम्मान, रहने की व्यवस्था, आदि सब का ध्यान उसे बराबर बना रहता था। इस प्रकार वह एक आदर्श, कर्तव्य निष्ठ स्त्री के रूप में सामने आती है।

'काले कोस' के पात्र है, पैशोरा सिंह, सूरत सिंह, विरसासिंह, पैशोरा सिंह की पत्नी, महेन्द्र कौर, गोबिन्दी आदि। पैशोरा सिंह एक धर्मनिष्ठ व्यक्ति है। वह एक ज़मीन्दार है, लेकिन वह कृषकों को तंग नहीं करता। आधुनिक चेतना उसमें मौजूद है। उसका बेटा है सूरत सिंह, वह होशियार, दूरदर्शी, और महत्वाकांक्षी युवक है। उसमें क्रान्ती का भाव भी विद्यमान है। सामूहिकता की भावना उसमें विद्यमान है। उसकी प्रेमिका है महेन्द्र कौर। वह स्वच्छन्द, तथा आधुनिक वातावरण में ढली हुई युवती है। वह साहस, सेवा, धर्मपरायणता आदि गुणों से युक्त युवती है।

'करवट' उपन्यास के पात्र हैं बंसीधर टंडन, देशदीपक टंडन, पार्किन्सन, माल्कम, विपिन, चंपकलता टडन, कौशल्या, नैन्सी मन्नो आदि। इस उपन्यास के केन्द्रीय पात्र है बंसीधर टंडन और देशदीपक टंडन। छोटी आयु में बंसीधर टंडन का विवाह हो गया। छोटी आयु में वह फ़ारसी और अंग्रेज़ी का विद्वान बन गया। उसकी उन्नती उन्होंने खुद हाज़िल किया। इसलिए संस्कारों, मर्यादाओं और स्वाभिमान को बलि के रूप में दे दिया। दूसरा विवाह के नाम, पिता से झगडा करके घर से निकल गया, इसप्रकार वह विद्रोही हो गया। वह बचपन से ही एक व्यावहारिक, समय की आवश्यकता को समझने वाला चतुर व्यक्ति है। आदर्शों की कमी उसमे कुछ देख सकता है। अपनी व्यवहार बुद्धि के बल पर उसने सारी बिरादरी में बहुत ऊँचा नाम पाया।

देशदीपक टंडन बंसीधर का एक मात्र पुत्र है। वह एक कुशल, दृढ आदमी, और स्वाभिमान व्यक्ति है। वह माता पिता के कहने पर अपना देश छोडकर मेट्रिकुलेशन के आगे की पढाई के लिए विलायत नहीं गया। यहाँ उनकी स्वाभिमान द्रष्टव्य है। देशदीपक में कोरा आदर्शवाद नहीं है, वह समय पर स्वार्थ को पीछे धकेलकर वीरता से आदर्श की रक्षा करता है। लाहौर में

हकीम रामलाल पुरी की विवाहिता पुत्री कौशल्या को गुण्डों द्वारा उठा लेने के प्रसंग में पिता तथा ससुर दोनों के द्वार ठुकरा दिए जाने की स्थिति में देशदीपक ने आगे बढकर स्वयं उससे विवाह किया और एक सच्चे इनसान के समान एक युवती की रक्षा की। देशदीपक का चरित्र एक सफ़ल, होनहार व्यक्ति का चरित्र है जो कहने और करने में भेद नहीं रखता।

इसके प्रमुख स्त्री पात्र है चंपकलता, कौशल्या, नैन्सी। चंपकलता बसीधर की पत्नी है। कौशल्या देशदीपक की पत्नी है। दोनों की चारित्रिक विशेषताएँ एक जैसी है। दोनों पति की अनुगामी, बुद्धिमति, व्यवहार कुशल, मृदुभाषिणी, कर्तव्य निष्ठ, पति के कार्य में हाथ बँटाने वाली तथा अपने अपने घर में परिवारिक सुख, पत्नीत्व, मतृत्व का गौरव व सामाजिक प्रतिष्ठा भोगने वाली औरत हैं। इस प्रकार नागरजी ने दोनों स्त्री पात्रों को आदर्श हिन्दू चरित्रों के रूप में रचा है। आरंभ में दोनों को कष्ट भोगना पडा है।

'पीढियाँ' उपन्यास के प्रमुख पात्र हैं जयन्त टंडन, सुमन्त टंडन, युधिष्ठिर टंडन, जावेद मन्नो,शारदा, शकुन्तला आदि। इसमें जयन्त टंडन स्वार्थ व्यक्ति है। बातों का निषेध करना उसकी आदत है।। वह एक अमीर पिता का अमीर बेटा है। वह पैसे के बल पर इंग्लैंड जाता है। वहाँ से वकालत की डिग्री हाज़िल करता है। भारत में अपनी योग्यता और इंग्लैंड की डिग्री के बल पर वकालत की धाक जमाता है। परिवार में सुख प्रदान करने में वह काबिल नही है। एकपत्नीव्रत का पालन वह नहीं करता है। वह एक व्यभिचारी व्यक्ति है।

सुमन्त टंडन एक राजनीतिज्ञ है। वह एक शान्तिप्रिय व्यक्ति है। देश की भयानक साप्रदायिक स्थिति देखकर वह दुख का

अनुभव करता है। देश की स्थिति से बचने के लिए वह अधिकांश दिन अयोध्या में रहता है। परिवार में वह एक आदर्श पुरुष है। मात्र परिवार में नहीं समाज में भी एक आदर्श पुरुष है। पहली पत्नी के निधन के बाद वह दूसरी शादी करता है। वह दूसरी पत्नी शारदा से अत्यधिक स्नेहमयी स्वभाव रखने वाला आदमी है। राजनीति में होने के कारण अनेक शत्रुओं की शत्रुता का सामना करना पडा है। वह एक कुशल राजनीतिज्ञ है।

युधिष्ठिर टंडन एक होशियार व्यक्ति है। वह एक पत्रकार है। वह इस उपन्यास का पात्र भी है और बीच में अपना दादा की कथा लिखने वाला उपन्यासकार के रूप में आता है। वह एक कुशल पत्रकार है। अपने सहयोगियों के साथ मित्रता का अच्छा पक्ष रखने के लिए वह काबिल है। इस तरह सहयोगी भावना उसमें अधिक है। वह परिवार में एक अच्छा पुत्र है, अच्छा पति है, अच्छा पिता भी है। समाज मे होने वाली भ्रान्तियों के बारे में अच्छी जानकारी उसमें है।

मन्नो, शारदा शकुन्तला,तीनों आदर्श महिला के रूप में सामने आती हैं। मन्नो की ज़िन्दगी पहले शोचनीय थी। लेकिन उसके पति के निधन के बाद शहीद जयन्त की पत्नी का दर्जा मिल गया। मन्नो ने अनेक कठिनाइयों का सामना किया। शरदा ने आदि से अन्त तक पति की बातों को एक अच्छी पत्नी के समान स्वीकार कर लिया। इस प्रकार एक पतिव्रता पत्नी के रूप में वह सामने आती है। शकुन्तला एक अध्यापिका है, वह भी अपने पति की बातों का पालन करने वाली नारी है। अपने घर के सभी कार्यों को कुशलता और होशियारी से करती है।

'ज़िन्दा मुहावरे' के प्रमुख पात्र हैं, निज़ाम, रहीमुद्दीन, फ़ातमाँ, सबीहा, गोलू, मुमीहा, रज्जो, इमाम, शमीमा, नादिरा,

नाहिदा, अखतर आदि । निज़ाम एक ऎसा पत्र है जिसमें मोहब्बत का भाव अधिक दिखाई देता है। विभाजन के बाद पाकिस्तान चला गया निज़ाम का शरीर मात्र पाकिस्तान में है प्राण तो उसके गाँव में है। वह एक दूरदर्शी युवक है। उसका बाप है रहीमुद्दीन, उसकी माँ है फ़ातमाँ। दोनों को अपने पुत्र के प्रति अधिक लगाव है, उसकी चिन्ता से दोनों मर जाते है। निज़ाम की पत्नी एक ऎसी स्त्री है जो एक आदर्श पत्नी है, आदर्श माँ भी है।

'विश्रामपुर का सन्त' उपन्यास के मुख्य पात्र हैं, कुँवर जयन्ती प्रसाद सिंह, विवेक, राजा, निर्मल, जयन्ती , सुन्दरी, सुशीला आदि। कुँवर जयन्ती प्रसाद सिंह उपन्यास का केन्द्र पात्र है। वह एक संवेदनशील, न्यायशील व्यक्ति है। वह अतृप्त इच्छा पूर्ति के लिए बराबर प्रयासरत दिखाई पडता है। उनके वृद्ध मानस में सचमुच प्रेमिका का सपना दिखाई पडता है। उसने बैरिस्टरी पढकर वकालत भले ही न की हो पर अंग्रेज़ों की जीवन शैली उनका आदर्श है। पर मन से वह सच्ची गाँधीवादी है। उसका पुत्र है विवेक । वह एक होशियार, महत्वाकांक्षी युवक है। वह वामपंथ विचारधारा पर विश्वास रखने वाला युवक है। अपने पिता के वाक्यों पर वह पूर्ण रूप से विश्वास रखता है।

'निन्यानवे में पात्रों की संख्या कम नहीं है। लेकिन मुख्य पात्रों की श्रेणी में, राम दयाल, बलराम दयाल, कृष्ण दयाल, हरि दयाल किशोरी मिन्नू, बिन्नू, उल्फ़त, राजा, सुनीता, मनमोहन,नीतू, प्रिया, कबीर आदि। रामदयाल एक ऎसा पात्र है जो आदर्श राष्ट्रप्रेमी है। वह अपने बच्चों पर अडिग आस्था रखने वाला आदमी है। वह एक स्नेहमयी पति है, और पिता है। उसका बडा पुत्र है बलराम दयाल। वह एक अध्यापक है। उसको समाज में व्याप्त कुरीतियों का ज्ञान है। दूसरा पुत्र कृष्ण दयाल नीतियों की परवाह न करने वाला व्यक्ति है, उसने चार शादियाँ करके अपनी

जीवन दृष्टि का परिचय देता है। तीसरा पुत्र हरि दयाल एक क्रान्तिकारी युवक है। उसके लिए सब कुछ पैसा ही । पैसा मिलने के लिए वह अपना रिशतेदारों को भूल चुका है। रामदयाल की पत्नी एक आदर्श स्त्री के रूप में सामने आती है, उसी प्रकार की एक नारी है बलराम दयाल की पत्नी उल्फ़त, वह एक शिक्षित युवती है। दोनों अच्छी माँ भी हैं।

'आखिरी कलाम' के मुख्य पात्र जो हैं वे सांप्रदायिक सद्भावना के प्रतीक हैं, आचार्य तत्सत पाडे, माध्वानन्द, रविकान्त, तत्सत पाण्डे की पत्नी, गायत्री, सुहासिनी, सर्वात्मन, बिल्लेश्वर, सविनय आदि इनमें प्रमुख है। तत्सत पाण्डे एक प्रतिभाशाली अध्यवसायी अध्यापक है। वह नास्तिक है और माक्सवादी भी है। वह एक दरिद्र ब्राह्मण का तेजस्वी पुत्र है। माधवानन्द तत्सत पाण्डे का पुत्र है, वह भी पिता की तरह प्रतिभाशाली है। होशियार व्यक्ति है। सत्य पर भरोसा रखने वाला व्यक्ति है। घर के माहौल से प्रभावित होने के कारण वह भी नास्तिक है। परिस्थियों से तंग होकर वह अपना रास्ता चुन लेता है, अर्थात उसकी पत्नी से तंग होकर वह गब्रियेला उसकी सहायिका के साथ जीवन बिताने के लिए निश्चय कर लेता है।

गायत्री एक ऎसी स्त्री है वह पुरुषों पर ईर्ष्या का भाव रखता है, यह इसलिए है कि बचपन में उसने अपने पिता को किसी परस्त्री के साथ ऎसी वैसी हालत में देख लिया। गायत्री ने अपने पिता का जो रूप देखा, उसके बारे में उसने किसी से बताया नहीं, लेकिन यह बात उसके शिशु मानस में एक बार बैठ गयी तो अन्त तक बैठ रही। गायत्री का ऎसा लगता है कि दुनिया के सारे पुरुष उसके पिता जैसे है। सभी दुराचारी, धोखेबाज, चरित्रहीन हैं। किसी में भरोसा नहीं। सुहसिनि को अपने पति से कष्ट का अनुभव हुआ। गायत्री और सुहासिनी दोनों जीवित वैधव्य

का अहसास करने वाली हैं। आचार्य की पत्नी एक पतिव्रता पत्नी के रूप में आती है। पति के इष्टानिष्टों का पालन करती दिखाई देती है।

'शेषकादंबरी' के पात्र हैं, रूबी गुप्ता, कादंबरी, देवीदत्त मामा, सविता, माया बोस, आभाजैन, सायरा, प्रीति, गौरी आदि। इस उपन्यास में स्त्री पात्रों की अधिकता है। रूबी गुप्ता में एक प्रकार की तनावपूर्ण स्थिति विद्यमान है। बचपन से लेकर अकेलापन महसूस करके वह जीवित रहती है। वह एक धर्मपरायण स्त्री है। उपन्यास के आरंभ से लेकर अन्त तक वह अस्मिता की तलाश के लिए निकलती है। वह परामर्श नामक संस्था चलाकर स्त्रियों की अभिवृद्धि चाहने वाली औरत है। इसमें चित्रित स्त्रियाँ सब कई प्रकार के शोषणों के शिकार बनकर है। देवीदत्त मामा एक राष्ट्र प्रेमी के महान ऐतिहासिक पुरुष के दर्जे का है।

'कलिकथा वाया बाइपास' के पात्र हैं, किशोर बाबू, उसकी पत्नी सरोजा, उसका बेटा, बेटियाँ, शान्ता भाभी, ललित भैया, मामा, शन्तनु, अमोलक आदि। किशोर बाबू एक मर्मस्पर्शी स्वभाव वाला आदमी का प्रतिनिधित्व करता है। वह देश के स्वाधिनता आन्दोलन और स्वाधीनता का पच्चास वर्षीय समारोह आदि का गवाह है। देश की दयनीय स्थिति देखक्रर वह अत्यधिक दुख का अनुभव करता है। उसकी पत्नी सरोजा एक ऐसा पात्र है, जो उसके दुख के समय उसके साथ है, और उसकी स्थिति को देखकर दुख का अनुभव करने वाली है। बेटा, और बेटियाँ बिलकुल स्वतंत्र ज़िन्दगी जीनेवाले दिखाई पडता है।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में पात्रों की संख्या अधिक है। इसमें स्त्री पात्र की सख्या पुरुष पात्र की अपेक्षा कम है। ज़्यादात्तर पुरुष पात्र हैं। इसमें अनेक ऐतिहासिक पात्र भी मौजूद

हैं। इसका प्रमुख पात्र अदीब है। अदीब के अलावा अर्दली महमूद अश्रुवैद, बूटासिंह, जेनिव, विद्या, सलमा आदि कल्पित पात्र है। श्रीराम, शबुक, इन्द्र अहल्या, गौतन ऋषि, बाबर, अक्बर, शाहजहाँ, औरंगज़ेब, दाराशिकोह,माउटबाटन, जिन्ना कबीर आदि पात्र ऎतिहासिक है। इस उपन्यास में काल भी पात्र बनकर आता है।,

अदीब इस उपन्यास का महत्वपूर्ण व मुख्य पात्र है। वह खुद उपन्यासकार है। वह उपन्यास में न्यायाधीश की भूमिका निभाता है। उपन्यास में अदीब एक साधारण व्यक्ति के रूप में कही कही नज़र आता है। वह एक कुशल पत्नी का पति, एक सुन्दर लडकी का पिता और आदर्श प्रेमी है। वह इस उपन्यास का सूत्राधार है। वह एक ईमानदारी इनसान है। वह अपने अदालत में अनेक ऎतिहासिक पात्रों को हाज़िर कराकर अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता के नाम उनसे बहसें करता है। अनेक सामाजिक समस्याओं का कारण हमारे सामने रखने में वह काबिल हो जाता है। यह भी है कि वह अनेक सत्यों को तलाशने की पूरी कोशिश करता है।

इस उपन्यास का अगला प्रमुख पात्र अर्दली महमूद है। वह अदीब का अर्दली, सहायक व स्टेनो भी है। वह अदीब की अदालत में जिस पात्र को बुलाना चाहता है, तुरन्त उपस्थित करता है, जब भी अदीब अपने कर्तव्य के मार्ग से भटकता है, तब वह उसे सचेत करता है, वह तुरन्त ही संसार के किसी भी काल में पहूँच जाता है। वह कही - कहीं पर रिपोर्टर का कार्य भी करता है। वह अदालत की सहायता करने के साथ साथ कभी टीका टिप्पणी भी करता है। उसकी आलोचना भी करता है और अदीब को भाषण करने से भी रोकता है, जब बिना बताए अदीब इधर - उधर चला जाता है, तब वह उसे पुनः पकड कर उसके

कर्तव्यों की याद दिलाता है, उसके अधिकार अत्यधिक विस्तृत है, कभी - कभी वह विद्वानों की तरह भाषण भी देने लगता है और व्याख्या भी करने लगता है। इस प्रकार वह सेवक ही नहीं, एक मित्र के समान है। वह एक मित्र के समान अपनी राय अपने स्वामी को दे सकता है, लेकिन वह कभी अपने इन अधिकारों का गलत प्रयोग नहीं करता है और अपने कर्तव्यों को पूरी निष्ठा के साथ निभाता है।

इस उपन्यास का एक और पात्र है विद्या, वह एक साधारण लडकी थी। वह रामनगर में रहनेवाली हिन्दु लडकी थी। वह अदीब की दोस्त है, दोनों की मुलाकात एक रेल यात्रा के दौरान हुई। उन दोनों के बीच प्रेम अंकुरित हुआ। लेकिन वह नष्ट हो गया था। वह देश विभाजन का शिकार बन जाता था। इस उपन्यास का पात्र शंबूक दलितों के उद्धार चाहने वाली मानसिकता का परिचायक है।

इस उपन्यास का एक और प्रमुख पात्र सलमा है। जो पटन की रहने वाली है। अदीब और सलमा की मुलाकात एयर्पोर्ट में होती है। वह एक विधवा स्त्री है। उसके ससुराल वालों ने उस पर चरित्रहीनता का झूठा आरोप लगाकर उसे जायदाद से बेदखल कर दिया है। उसका एक बेटा भी है।

काशी का अस्सी के पात्र हैं, डा. गया सिंह, तुलसी दास, तन्नी गुरू रामवचन आदि। दूकान में आने वाले कई पात्र भी है। रामवचन इसमे एक राजनीतिज्ञ बनकर आता है। पहला गिरमिटिया के पात्र है, मोहनदास करम चन्द गाँधी, कस्तूरबा, मणिलाल,, मेटिल्डा, कोट्स, मागी,देवाराम,करन पिलै, दादा अब्दुल्ला आदि। मोहनदास करम चन्द गाँधी गिरमिटिया है। समाज सेवा में लगे रहने वाला, होशियार, चिन्तनशील,

महत्वाकांक्षी हैं। गाँधी का चरित्र अपने आप में महनीय है। समाज की सेवा वे पूरी ईमानदारी से करते है। उसकी पत्नी एक ऐसा पात्र है, जो आदर्श महिला है। पहले समाज सेवा के लिए निकले पति से झगडा करती थी, बाद में वह उसकी गरिमा को अपने चिन्तन से हाज़िल करती थी। बीमार होकर भी वह स्त्याग्रह के लिए निकल पडती है। वह एक आदर्श पत्नी है, और आदर्श माँ भी है।

कुलमिलाकर देखने से इन उपन्यासों के अनेक पात्र हमारे इतिहास के हैं। ऐतिहासिक पात्रों ने हमारे राष्ट्र के निर्माण में सहयोग दिया है। उनके माध्यम से अनेक महत्वपूर्ण कार्य संभव हुआ। ऐतिहासिक पात्रों से अलग होकर ऐसे अनेक पात्रों को दिखाई देता है वे कई प्रकार की सद्भावनाओं को जगाने एवं जनकल्याण के लिए उद्यत पात्र है। कल्पित पात्र है तो भी ऐसे कई पात्र हैं वे सारी ऐतिहासिक घटनाओं के चरित्र बनकर आए है। ये सभी पात्र ऐतिहासिक नैरन्तर्य को प्रतिबिंबित करने वाले है।

संवाद योजना

उपन्यास के शिल्प में संवाद का महत्व्पूर्ण स्थान है। इसके ज़रिए चरित्रों के पारस्परिक विचारों का आदान प्रदान होता है। जब दो पात्रों की आपसी बातचीत के ज़रिए उनके मनोगत भावों को प्रामाणिक रूप से अभिव्यक्ति मिलती है तथा पात्रों के सामाजिक वर्गीय विवेचन होता है। कथोपकथन के संबन्ध में प्रेमचन्द ने लिखा है''उपन्यास में वार्तालाप जितना अधिक हो और लेखक की कलम से जितना ही कम लिखा जाय उतना ही

उपन्यास सुन्दर होगा। वार्तालाप केवल रस्मी नहीं होना चाहिए। सामान्यतः कथोपकथन के कुछ उद्देश्य होते है, जैसे, कथानक को गति प्रदान करना, पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करना, उपन्यासकार के उद्देश्य को स्पष्ट करना , कथोपकथन के द्वारा वातावरण की सृष्टि करना आदि। कथोपकथन के दारा कथानक को व्यापकता मिलती है। कथोपकथन एवं सवाद जितने अधिक पात्रानुकूल , स्वाभाविक, संक्षिप्त, सरल एवं प्रभावशाली होंगे, घटना और चरित्रों में भी उतनी ही अधिक सजीवता आयेगी।

'अनामदास का पोथा' के संवाद ज्यादात्तर दार्शनिक संवाद हैं। उदाहरण देखिए 'पाप और पुण्य कैसे समझ में आएँगे माँ - हाँ बेटा तूने ठीक प्रश्न किया है। बादरायण व्यास ने कहा है कि जिस कार्य से किसी को शारीरिक और मानसिक कष्ट होता है, वह पाप कार्य है।'[2] इसी प्रकार की सवादों का मूल भाव में'प्रेम भावना विद्यमान है। बीच बीच में लंबे संवादों के उदाहरण ज़्यादात्तर मिलते हैं। मित्रता पूर्ण संवादों का उदाहरण है। इस उपन्यास का समस्त घटना वृत्तान्त संवाद के सहारे ही आगे बढता है।

'काले कोस' उपन्यास का संवाद मे संक्षिप्तता है, लंबे संवादों का उदाहरण उपन्यास के द्वारा मिलता है। साप्रदायिक स्थिति का पता संवादों के द्वारा पता चलता है। स्वाभाविक संवादों का उदाहरण उपन्यास में है। इसमें उपन्यासकार ने सार्थक संवादों को सही ढंग से प्रस्तुत किया है।

'करवट' उपन्यास के संवाद से चरित्रों की स्थिति का पता चलता है। सामाजिक यथार्थवादी परिवेश से संपृक्त संवाद का उदाहरण भी मिलता है। उपन्यास के पात्रों की संवाद योजना द्वारा

---

[2] अनामदास का पोथा, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, पृ. सं. 65

विषय की व्यापकता तथा सोद्देश्यता स्पष्ट हो जाती है। उदाहरण देखिए, त्रिलोकी बाबू से बंसीधर का कहना है कि 'त्रिलोकी बाबू, अपनी बिरादरी में भी कुछ जवान अब नई रोशनी में अपनी पुरानी दुनिया को देखने लगे हैं। उन्हें अपनी तरफ़ मिलाइए, बिरादरी के किस्से कहिए तो अभी और बढेंगे। अगर उन्हें दबाना है तो आप को भी नये चालों से ही उनका सामना करना होगा। जैसे अंग्रेज़ फ़ूट डालकर राज करते हैं वैसे ही आप भी बिरादरी और अपनी सास पर राज कीजिए। बहरहाल मन्नो बीबी के नवासों को ईसाई बनाने की आपकी धमकी मैं उन तक ज़रूर पहूँचा दूगा।'[3] अंग्रेज लोगों के निर्मम राज को सहन करके मौजूदे वातावरण में परिवर्तन लाने के भारतीयों की कोशिश यहाँ प्रकट है।

'पीढियाँ' उपन्यास में संवाद का विकास बडा ही सहज एवं अर्थयुक्त है। अंग्रेज़ी वाक्यों के प्रयोग से कथानक को अत्यधिक गति मिली है। संवाद के द्वारा दोनों व्यक्तियों की क्रिया प्रतिक्रिया व्यक्त होती है। जावेद से युधिष्ठिर का संवाद तो देखिए 'जावेद, इनसे कह दो कि मुझे ऍसे लोगों से बात करना सख्त नापसन्द है जो अपनी खुदगर्जी के लिए कम्यूनल दंगे कराने में भी गुरेज न रखते हो'।[4] यहाँ युधिष्ठिर राजनीति की ओर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। संवादों में संक्षिप्तता भी है,और लंबे सवादों की भरमार है। बीच बीच में संवादों की संक्षिप्तता के कारण उपन्यास रोचक बन जाता है। संवादों के माध्यम से परिवार के आचार विचार तथा प्रेम की झलक मिलती है। संवाद के माध्यम से सामाजिक सम्बन्धों का रूप प्रकट होता है। सवाद के द्वारा उपन्यास में स्वाभाविकता भी आ जाती है। पात्र अपना सहज चरित्र संवादों के द्वारा प्रकट करते हैं।

---

[3] करवट, अमृतलाल नागर, पृ. सं. 112

[4] पीढियाँ, अमृतलाल नागर, पृ. सं. 23

'जिन्दामुहावरे' के संवादों के द्वारा विभाजन के नाम पर विभाजित मानव का दुख प्रकट होता है। उदाहरण देखिए 'बताओ चाचा कहाँ जात हो अकेले?'

हम जात है गोलू

अच्छा साथ ले ते जाओ'।[5]

यहाँ पाकिस्तान की ओर जानेवाला निज़ाम से उसके गोलू ने आँसू भरी आँखों से बताये गये वाक्य से दुख का अहसास मालूम हो जाता है। सवादों के द्वारा घर का अच्छा माहौल भी सामने आता है।

'काशी का अस्सी' उपन्यास में व्यंग्य परक संवाद आधिक है। अयोध्या बाबरी मस्जिद समस्या से आज भी लोग झगडते रहे हैं। इस अवसर को प्रकट करने वाला संवाद देखिए' 'राय साहब को देखते ही सारे रामभक्त हाथ जोड लेते थे उस शाम कारसेवकों के जत्थे का नेता नारे का पहला बन्द बोलता-

रामलल्ला हम आएँगें

'जुलूस के बोलने से पहले ही इधर से राय साहब का लाउडस्पीकर बोलता-

मस्जिद वही बनाएँगे''!

उधर से बच्चा बच्चा राम का'!

इधर से, 'भाजपा के काम का'!'[6] राम भगवान के नाम आज भी नेताओं और लोगों को झगडते रहने के लिए तैयार है।

'आखिरी कलाम' उपन्यास की शुरुआती संवादों के द्वारा मित्रता पूर्ण स्थिति का पता चलता है। बीच के आचार्य और पत्नी के संवादों के द्वारा रोचकता आती है। इसमें संक्षिप्त और लंबा

---

[5] ज़िन्दा मुहावरे, नासिरा शर्मा, पृ. सं. 11

[6] काशी का अस्सी, काशीनाथ सिंह, पृ. सं.29

संवाद है। इसमें कुछ पात्र के संवादों के द्वारा परिवार की विघटित स्थिति का प्रकट होती है। यह भी नहीं समाज में होती रही सांप्रदायिक विसंगति का पता भी मिल जाता है। आचार्य के साक्षात्कार के समय के संवाद में एक प्रकार की नाटकीयता की स्थिति महसूस होता है। संक्षिप्त संवाद का उदाहरण देखिए, 'तुम पूजा कब करती हो? गैब्रियाला ने गायत्री से फ़ुसफ़ुसाकर पूछा।

प्रातःकाल' गायत्री ने बोली

माध्वानन्द रहता है?

चले जाने के बाद। गायत्री ने उतना हि संक्षिप्त उत्तर दिया'।[7]

'निन्यानवे' में संक्षिप्त और लंबे संवाद मिलते हैं। इस उपन्यास के अन्त में संवाद योजना प्रश्नोत्तर शैली में है। विश्रामपुर का सन्त, पहला गिरमिटिया, कलिकथा वाया बाइपास, शेष कादंबरी आदि उपन्यासों में भी संक्षिप्त और लंबे संवादों के उदाहरण मिलते हैं। संवाद में स्वाभाविकता तथा सार्थकता भी है।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में संवादों की अधिकता है। संवाद तो विस्तृत फ़लक पर है, और छोटे छोटे संवाद भी हैं। अदीब और अर्दली महमूद के सवादों के द्वारा प्रत्येक काल की स्थिति उभरकर सामने आती है। काल की स्थिति की तीक्ष्णता को बेजोड बनाने वाले संवादों की अधिकता उपन्यास में है। अदीब और अर्दली महमूद के बीच का संवाद कहीं कहीं लंबे हैं। छोटे संवाद का एक उदाहरण देखिए। यह बूटा सिंह और जेनिव के बीच का संवाद है।'नाम क्या है तुम्हारा?बूटासिंह ने जानना चाहा।'

- जेनिव'

- गाँव?

---

[7] आखिरी कलाम, दूधनाथ सिंह, पृ. सं.76

- मणिपार ठाणी!
- जात?
- हिन्दू राजपूत।'
- धरम?
- मुसलमानी!
- तुम उसके हाथ कैसे पकड गई?
- हम घर छोड पाकिस्तान जा रहे थे...... वैसे तो हमारे घर में सब कुछ था। हमारे अब्बा बटाई पर खेती करके आराम से रहते थे। घर में गाय भैंस, बैल थे। हम गाय क गोश्त नहीं खाते...... भैंस या बैल क भी नहीं..... सब आराम से चल रहा था। फ़िर पकिस्तान की लकीर खिंची तो ढाणी में रहना मुश्किल हो गया। गाँव ढाणी के सब मुसलमानी मुस्लिम कारवाँ बनाकर उस लकीर के पार पहूँचने के लिए चल पडे। फ़िर भी समझ में नहीं आ रहा था कि हम अपनी ढाणी क्यों छोड रहे थे..... ऎसे झगडे, कहा - सुनी और मूँहचावर तो पहले भी होते रहते थे..... मै कारवाँ से छूट गई। तब उसने पकड लिया। अधनंगा - तिनंगा कर दिया। जैसे - तैसे मै उससे बचकर दौडी, तभी तुम मुझे दिखाई दिए.....'।[8]

थल - काल

किसी भी उपन्यास की स्वाभाविकता तथा सजीवता उसके घटना विवरण को सार्थक पार्शवभूमि में प्रस्तुत करना है। किसी भी कथा की सृजन प्रक्रिया विशिष्ट स्थान पर संपादित होती है। कोई

---

[8] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 40

भी रचना पूर्णतः समय निरपेक्ष नहीं हो सकती। समय सापेक्षता ही रचना को मूल्यवान बनाती है।

'अनामदास का पोथा' की कथावस्तु उपनिषद काल की है। आचार्य ने तर्क सम्मता के आधार पर इसमें कल्पनाशील घटना क्रम,को जोड दिया। उस समय ऋषि परंपरा थी, देश का अधिकांश भाग जंगलों से घिरा था। ऋषियों के आश्रम में अध्ययन, अध्यापन होते थे, ऋषियों के यहाँ यज्ञ आदि हमेशा हुआ करता था। यज्ञ याग के साथ अनुष्ठान भी होते थे एवं दार्शनिक अध्यात्मिक चिंतन भी हुआ करता था। इन्हीं के तहत घटित वातावरण की सृष्टि करने में लेखक सफ़ल हुए हैं। इसमें राजमहल के वातावण की सृष्टि सूक्ष्म ढंग से उन्होंने प्रस्तुत किया। इसके लिए कथानक के मूल को भी उन्होने देखा। केवल अरुन्धति और औदुंबरायण व वृद्धा संकुला के माध्यम से राजमहल का वातावरण व्यक्त हुआ है।

'करवट' उपन्यास लखनउ और कलकटा की कथा कहने वाला उपन्यास है। खत्री परिवार के जीवन का आँखों देखा वर्णन इस उपन्यास में उपन्यासकार ने किया है। बिलकुल आधुनिक चिन्तन व वातावरण की सृष्टि करने में लेखक सफ़ल हुए हैं। सांप्रदात्यिकता, बिरादरीवाद, समाज सुधारकों के नये कार्य बोध आदि परिस्थितियों के बीच गुज़रने वाला टंडन परिवार की कथा अपने आप में बेजोड है। उपन्यास में समाज की व्यवस्था को देखकर बंसीधर मन में सोचता है 'कैसे बुरे समय में जनम पाया उसने। घर बाहर कहीं शांति नहीं। चारों ओर लूटपाट, मारकाट, निर्बल पर सबल का विषम अंकुश, आदमी आदमी को खा रहा

है'।[9] समाज में व्याप्त दुख स्थिति का पता इन पक्तियों के द्वारा मिल जाता है।

'पीढियाँ' उपन्यास की कथा का स्थान लखनऊ है। बीच में अयोध्या और दिल्ली भी स्थान बनकर आते हैं। पारिवारिक वतावरण की सृष्टि के द्वारा अच्छी पारिवारिक स्थिति सामने आ जाती है। इसके अलावा सामजिक, सास्कृतिक और राजनीतिक वातावरण के द्वारा समाज की भ्रान्तियों की स्थिति सामने आ जाती है। उपन्यासकार ने सटीक ढंग से वातावरण की सृष्टि की है। वातावरण के द्वारा आधुनिक जीवन का वास्तविक चित्र उभारने के लिए लेखक सफ़ल हुए हैं।

'काले कोस' उपन्यास की कथा पंजाब के चारगाँव और अमृतसर में घटित होने वाली कथा है। इसमें गाँव और नगर के वातावरण की सृष्टि करने में लेखक सफ़ल हुए है। 'जिन्दा मुहावरे' का स्थान भारत और पाकिस्तान का कराची है। 'आखिरी कलाम' उपन्यास की कथा फ़ैज़ाबाद में घटित होती कथा है। समाज और परिवार की विघटित स्थिति का वातावरण की सृष्टि करने में लेखक सफ़ल हुए हैं। शेषकादंबरी का स्थान कोलकत्ता है। 'पहला गिरमिटिया' की कथा दक्षिण आफ़्रिका और भारत में घटित है। 'कलिकथा वाया बाइपास' कोलकत्ता केन्द्रित है। 'काशी का अस्सी' का स्थान बनारस है।

'कितने पाकिस्तन' उपन्यास की विषयवस्तु अत्यधिक व्यापक फ़लक की है, जिसमें प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान काल तक के समय को कमलेश्वर ने अपने उपन्यास में समाहित करने का प्रयास किया है। प्रत्येक काल की सामाजिक, आर्थिक,

---

[9] करवट, अमृतलाल नागर, पृ. सं. 18

धार्मिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थिति का चित्रण करके उपन्यास को जीवन्तता प्रदान की गई है। सामजिक परिस्थिति के अन्तर्गत उन्होंने वर्ण व्यवस्था, विवाह संबन्ध, धार्मिक कट्टरता, नारी की शोचनीय दशा, हिंसा, मानवीय मूल्यों का ह्रास आदि मुद्दों को उठाया गया है। ये सब प्रत्येक काल में अपनी खामी के साथ अर्थात विकरालता के साथ मौजूद है। मानव की मुक्ति के लिए सम्राट गिलगमेश मृत्यु को जीतने की औषधि की तलाश के लिए निकल पडा तब अन्य सभ्यताओं के देवता और देवियाँ सम्राट गिलगमेश की आवाज़ को तलाशने लगे। वे निराश और नाकाम लौट आए, तब ज़ीयस ने कहा ' फ़िर तलाशो..... जहाँ भी है गिलगमेश की आवाज़ उस आवाज़ को समाप्त करन बेहद ज़रूरी है। अगर इस विद्रोही आवाज़ को पकडा न गया तो हमारी सृष्टि नष्ट हो जायेगी...... इस आवाज़ को बन्दी बनाना ज़रूरी है'।[10] एक और प्रसग देखिए 'अर्दली ने टीप लगाई - देखा अपने मुगलिया दौर में शादियाँ भी शतरंज की चालों की तरह चली जाती है। यही दारा और मिर्जा राजा जयसिंह के बीच हुआ है और यही औरंगज़ेब के लडके और शुजा की लडकी के बीच हुआ है ..... इतनी बडी सल्तनत को कायम रखना कोई मामूली बात नहीं है। प्रत्येक काल में राजनीति भी मानवता के पक्षधर नहीं है वहाँ भी षडयन्त्रकारी तत्वों की जीत हो रही है'।[11] उपन्यास में लार्ड माउटबाटन का कथन देखिए 'जो उन्होने जिन्ना से कहा - ' आप पाकिस्तान माँग रहे थे। हम आपको पाकिस्तान दे रहे हैं। दुनिया जानती है और मानती है कि पाकिस्तान कभी नहीं बन सकता..... लेकिन ब्रिटिश क्राउन तश्तरी में पाकिस्तान रखकर आपको पेश कर रहा है.....अब आप क्यों हिचक रहे है'।[12]

---

[10] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 42

[11] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 234

[12] कितने पकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 55

किसी भी देश की धार्मिक परिस्थिति उसकी ताकत और कमज़ोरी दोनों हो सकती हैं। यह देश को सुदृढ और विभाजित कर सकती है। ज्यादात्तर कट्टरपन्थी लोग धर्म का संकीर्णता से प्रयोग करते हैं। हर काल में इस तरह की स्थिति देखने को मिलती है। उदाहरण देखिए, 'धर्म और इतिहास शोषकों के हाथों का खिलौना बनकर , नाचते - गाते, जश्न मनाते अपने ही विभाजित अंग के शत्रु और विनाश के कारण बन जाते है। बडी सभ्यताओं को तोडकर उन्हें बन्दी बनाने का यही रास्ता उन असभ्य संस्कृतियों ने चुना, जिनके खेतों में सिर्फ़ गोला बारूद की फ़सले उगती है'।[13] कमलेश्वर ने थलकाल वातावरण का चित्रण अधिक सूक्ष्म और गहनता के साथ प्रस्तुत किया है। उन्होने वातावरण की सृष्टि सफ़लता पूर्वक भी प्रस्तुत किया। परंपरागत रूप में इसकी विवेचना करना नामुमकिन है, एक नये सिरे से इसका विश्लेषण करना उचित होगा। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि कमलेश्वर को आलोच्य उपन्यास के देश काल एवं वातावरण की अभिव्यक्ति में पूर्ण सफ़लता मिली है।

उपर्युक्त विवेचन में कई स्थानों पर घटित घटनाओं की चर्चा हुई हैं। यहाँ 'कितने पाकिस्तान' में कई कालों की घटनाओं के आधार पर काल भेद को तोडकर घटित होने वाली घटनाएँ है तो 'पीढियाँ' में कई पीढियों को जोडने की प्रक्रिया हुई। इसमें इतिहास की घटनाओं को पेश करते हुए परंपरा को सिलसिलेदार एवं मभी न स्माप्त होने वली सिद्ध करने की कोशिश हुई है। 'काशी का अस्सी' में काशी की पुरानी पीढी एवं नई पीढी दोनों एक साथ क्रियाशील है। वैसे ही 'ज़िन्दा मुहावरे' में विभाजन कालीन पाकिस्तान और भारत को प्रस्तुत करते हुए समकलीन इन पडोसी देशों की झलक प्राप्त है। अध्ययनार्थ चुने गये सारे

---

[13] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं.45

उपन्यासों में थलकाल की सृष्टि के माध्यम से पीढी तर पीढी की ज़िन्दगी क्रमबद्ध रूप में हमारे सामने सिलसिलेदार कडी के रूप में अभिव्यक्त होती है। असल में उपन्यास में इतिहासबोध की जांच करते समय यह निरन्तरता उपन्यास की सफ़लता को सिद्ध करती है।

भाषा एवं शैली

शिल्प पक्ष में भाषा एवं शैली का अहं स्थान है। भाषा भावाभिव्यक्ति का माध्यम होती है। भाषा किसी भी साहित्य को जीवन प्रदान करती है। कथानक यदि शरीर है तो भाषा उसका प्राण है। भाषा के माध्यम से ही विषय को एक निश्चित शिल्प के द्वारा उपन्यास में प्रस्तुत किया जाता है। डा. त्रिभुवन सिंह के शब्दों में , उपन्यास को अर्थवत्ता प्रदान करने का कार्य भाषा का ही है। उपन्यास की रचना शब्द और अर्थ के संयोजन से होती है। लेखक की अनुभूति स्वयं भाषा को पकडती है। अनुभूति जितनी तीव्र होगी, भाषा उतनी ही स्वाभाविक होगी। उपन्यास के कथा में प्रवाह , रोचकता, क्रमबद्धता के लिए अच्छी भाषा तथा उत्तम शैली का होना आवश्यक है। सामान्यतः देखा जाता है कि एक भाषा भाषी क्षेत्र में अनेक जातियाँ, धर्म, संप्रदाय के लोग रहते हैं जो परस्पर भाइचार विनिमय के स्तर पर प्रभावित होते रहते हैं। उपन्यास के अन्तरगत पात्रोचित भाषा का होना मुहावरे, लोकोक्तियों का सटीक प्रयोग होना, तत्सम, तत्भव, देशज, विदेशी शब्दों का यथास्थान प्रयोग होना आवश्यक माना जाता है।

'उपन्यास की रचना प्रक्रिया में शैली का विशेष महत्व होता है। शैली के माध्यम से भावों व विचारों को कलात्मक ढंग से बोधगम्य बनाना नितान्त सहज होता है। यदि उपन्यास की कथा शैली उत्कृष्ट होगी तो भावानुभूति की गहनता और सघनता चिरस्थायी होगी। जो शैली जितनी ही वैविध्यपूर्ण होगी, उसका प्रभाव अनुभूतियों, विचारों तथा मान्यताओं पर उतना ही गहरा होगा। शैली लेखक की अपनी निजता से संपन्न होती है, शैली ही लेखक के व्यक्तित्व का दर्पण होता है। अन्य शब्दों में इसे अभिव्यंजना चातुरी कहना अधिक संगत होगा''।[14]

"अनामदास का पोथा' उपन्यास की भाषा काव्य भाषा से अधिक निकट है। एक उमडती हुई संगीतमयी धारा का अजस्त्र प्रवाह एक नये अनुभव की सृष्टि करता है। इसमें भाषा के दो रूप मिलते हैं। एक वैदिक वेदान्ती शब्दों की अप्रचलित श्रृखला, दो - शुद्ध आँचलिक प्रयोग। चुस्त मुहावरेदार फ़डकती हुई भाषा कथ्य के निर्वाह में पूरी तरह सहायक हुई है। क्रियात्मक सरचनाएँ इसमें अधिक है इसलिए भाषा एक विशेष भंगिमा धारण कर लेती है'।[15] इसकी भाषा पात्रानुकूल है, तथा भावप्रधान है। इसमें अनेक विशेषणों का प्रयोग हैं। इसमें सस्कृत भाषा का प्रयोग है। बीच में मुहावरों का प्रयोग कथा को अधिक अर्थवान और प्रभावकारी बनाता है। विभिन्न पात्रों के बीच वार्तालाप की भाषा में कथ्य के अन्य रूप संस्कृतनिष्ठ है पर मामा जैसे पात्र की भाषा जनभाषा है। भाषा की तत्समता के उपरान्त भी पूरे उपन्यास के प्रवाह में भाषा बाधा न बनकर साधन बनी है। इसकी शैली क्रिया विश्लेषणात्मक है।

---

[14] उपन्यासकार जगदीश चन्द्र सवेदना और शिल्प, कैलाश्नाथ पाण्डे, पृ. सं. 16

[15] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, पृ. सं. 223

'काले कोस' उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल भाषा है। इसमें पंजाबी शब्दों का प्रयोग पात्रों के चरित्र तथा परिवेश के अनुकूल किया गया है। इसमें अंग्रेज़ी और उर्दू भाषा का प्रयोग भी है। बीच बीच में मुहावरे और लोकोक्तियों का प्रयोग है।

'करवट' उपन्यास की भाषा भावप्रधान है तथा पात्र एवं स्थितियों को स्पष्ट करने में सक्षम है। इसकी भाषा में उर्दू, अंग्रेज़ी भाषाओं के शब्द हैं जो कि चरित्रों के स्तर तथा विषय के सम्यक प्रतिपादन करने में सहायक सिद्ध हुए हैं। बीच में जो गीतों का प्रयोग हैं उससे उपन्यास रोचक बन जाता है। और बीच में कविता की पक्तियाँ भी हैं उसका जवाब कविता के द्वारा दिया गया है।

'पीढियाँ' उपन्यास की भाषा पात्रानुकूल भाषा है। उर्दू, अग्रेज़ी,शब्दों का प्रयोग है। बीच बीच मे गीतों का प्रयोग है। शिक्षित पात्रों की भाषा में अंग्रेज़ी शब्दों का पुट मिला हुआ है। नागरजी के पात्र एक ही सपाट और रंगहीन भाषा नहीं बोलते। नागर जी शुरू से ही अलग - अलग पात्रों के संवादों में भाषा के भिन्न - भिन्न प्रयोग और भंगिमा द्वारा उन पत्रों के चरित्र को एक निजता और वैशिट्य देने की प्रविधि का प्रयोग करते रहे है। इसमें अधिकतः अवधी का प्रयोग है। अवधी शब्दों को तत्भव रूपों में प्रयुक्त करके उन्हें आम आदमी की बोलचाल के स्तर पर उतार लाने का प्रयास उपन्यासकार के द्वारा संपन्न हुआ है। परसोत्तम, मैफ़िल, चरन्न, तोफ़े, संकल्य, सौहर, दुई आदि इस प्रकार के शब्द प्रयोग है। शैली के बारे में कहे तो इस उपन्यास में नया टकनीक अपनाया है। इस उपन्यास का एक पात्र है युधिष्ठिर टंडन। वह अपने दादा जयन्त टंडन को नायक बनाकर उपन्यास लिख रहा है। जयन्त टंडन का सारा किस्सा युधिष्ठिर के अवलोकन बिन्दु से ही प्रस्तुत किया गया है। युधिष्ठिर उपन्यास लिखने के लिए अनेक जानकारियाँ इधर उधर से समेट लेता है।

इसका विस्तार से वर्णन उपन्यास में मिलता है। इस प्रकार अतीत और वर्त्तमान को एक साथ मिलाने का प्रयास अमृतलाल नागर की एक नयी शैली का परिचायक है।

'जिन्दामुहावरे' की भाषा में उर्दू शब्दों की भरमार है। तत्भव और बोलचाल के विदेशी शब्दों के मेल से बनी इसकी भाषा हिन्दी का स्वाभाविक रूप सामने रखती है। परिनिष्ठित हिन्दी के बीच - बीच में अवधी मिश्रित खडी बोली के संवाद प्रस्तुत प्रसंगों को बहुत ही प्रभावकारी बना देते है। उदाहरण के रूप में , 'ए, रज्जो! चतनी अब पीसे बैठी हो का?' अम्मा सबको बावर्चीखाने में फ़ैली धूप में पटरे पर बैठा देख दालान से हांक लगाती। अभै तो कुटकर आई है सिल, अम्मा। ' रजिया सिल पर तेजी से बटटा रगडते हुए जवाब देती। 'हमार घी गुड कहाँ है?' गोलू कटोरी न देखकर ठुनकता'।[16] उपन्यास की भाषा की सर्जनात्मक बनाने में अनछुई उपमाओं और बिबों का भी महत्वपूर्ण योगदान है। 'दोपहर की धूप घनघनाकर्जमीन पर पालथी मार कर बैठ गयी थी'।[17] 'वैन की आवाज से निज़ाम का दिल केले के पत्ते की तरह चिर गया'।[18] उपन्यास की भाषा को सबसे अधिक जानदार बनाने का श्रेय अवधी के मुहावरे और लोकोक्तियाँ हैं। 'एक दिन बिलाइ भी सूघत - सूंघत अपने पुराने ठिकाने को लौटत है'। 'बखत से पहले ससुरे को गधा - पच्चीसी सवार होय गई है'।'आखिर भोर का भूला सांझ गए तो घर लौटत है'।'कमरबन्द बांधे की तमीज नाहीं बच्चू, बिता भर के जव्क़न दिखाए रहे है।'[19] नासिरा शर्मा की भाषा को एक दम देसी चरित्र प्रदान किया गया है।

---

[16] ज़िन्दा मुहावरे, नासिरा शर्मा, पृ. सं. 56
[17] ज़िन्दा मुहावरे, नासिरा शर्मा, पृ. सं. 9
[18] ज़िन्दा मुहावरे, नासिरा शर्मा, पृ. सं. 10
[19] ज़िन्दा मुहावरे, नासिरा शर्मा, पृ. सं. 10

'विश्रामपुर का सन्त' उपन्यास की भाषा सरल भाषा है। उसी प्रकार 'पहला गिरमिटिया' की भाषा भी सरल तथा सपाट भाषा है। इसकी शैली जीवनीपरक शैली है। 'निन्यानवे' की भाषा में उर्दू शब्दों की भरमार है। तीनों की शैली वर्णनात्मक शैली है। 'काशी का अस्सी' की भाषा कुछ कठिनाई उपस्थित करती है। इसकी शैली में परंपरागत शैली का मेल मिलाप नहीं है। 'कितने पाकिस्तान' में एक नई शैली का उद्‌घाटन है उसी प्रकार इसकी शैली में विभिन्नता महसूस करता है। यह भी है कि इसमें 'मैं' शैली का प्रयोग भी है, अर्थात आत्मकथात्मक शैली। शेषकादंबरी की भाषा पात्रानुकूल भाषा है। इसकी भाषा भावप्रधान भी है।

'आखिरी कलाम' की भाषा सपाट बयानी है। गृह जंजाल नामक प्रथम अध्याय में भाषा की सरलता के कारंण बहुत रोचकता आती है। बाद के अध्यायों की भाषा में कठिनाई महसूस करता है। उसकी भाषा शैली की यह विशेषता है कि वह समकालीन गद्य की पहचान देती है। भाषा शैली की यह विषेषता भी है कि इसमें तीन प्रमुख अध्याय है और उसके भीतर छोटे छोटे अध्याय और भी है। 'कलिकथा वाया बाइपास' की कथा जादुई यथार्थवाद पर आधारित भाषा है।

भाषा की दृष्टि से 'कितने पाकिस्तान' एक सफ़ल उपन्यास है। कमलेश्वर ने हर एक काल की स्थिति को प्रखर भाषा के अनुसार प्रस्तुत किया है। प्रसंगों, घटनाओं व पात्रों के अनुकूल भाषा में बदलाव देखने को मिलता है। यह कृति को सफ़लता प्रदान करती है। अदीब और सलमा के प्रेम प्रसंग के साथ उन्होंने जिस भाषा का प्रयोग किया वह तो गंभीर भशा के रूप में सामने आता है। उदाहरण देखिए, 'सलमा के वे शब्द यही सच है। मारीशस के उस काटेज से निकलकर ब्रह्माण्ड में गूजते चले गये...... यही सच है, यही सच है । तब दोनों खुद को रोक नहीं

पाये और साँसों के एक घर समा गये थे। पत्थर ईंटों और शरीर के घर तो इस दुनिया में बहुत बने थे। सभी ने बनाये थे, पर यह घर साँसों का था...... साँसे ..... जो दूर कोरल रीफ़ से टकराती हिन्द महासागर की लहरों की तरह फ़ेनिल हो आई थी और दोनों कि कसती बाँहों और उलझते अंगों से चिंगारियों के फ़ूल झरने लगे थे'।[20] यहाँ कमलेश्वर जो शब्दों का चयन किया है वे अनुपम है। उसमें उन्मुक्तता तो है लेकिन अश्लीलता नहीं है। उपन्यास में जहाँ गंभीर प्रसंग है, वहाँ प्रसंग की माँग के अनुरूप भाषा गंभीर हो गयी है। उदाहरण देखिए ' अदीब ने आसमान की तरफ़ देखा - ऊपर सुर्ख लाल- लाल बादल चारों तरफ़ घुमड रहे थे। वह चौंका उसने अर्दली से कहा- 'काले , भूरे, सलेटी और सफ़ेद बादल तो देखे थे।।। उगते या डूबते सूरज के साथ बादलों की किनरी में रुपहला और सुनहला गोटा लगा देखा है, लेकिन खून की तरह लाल, ऎसे बादल तो कभी देखे नहीं.....'।[21] इस उपन्यास में पात्रों की अधिकता है।यह पात्र विभिन्न कालों, संस्कृतियों व धर्मों से संबन्ध रहते हैं। इसलिए भाषा में पात्रानुकूल परिवर्तन देखने को मिलता है। जहाँ वैदिक संस्कृतियों के प्रसंग है, जहाँ भाषा तत्सम भाषा प्रधान है, जहाँ मुस्लिम सभ्यता की बात है, वहाँ अरबी फ़ारसी, उर्दू के शब्दों का खुलकर प्रयोग हुआ है, आधुनिक संदर्भों की बात कहने पर अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग, जहाँ पात्र ग्रामीण परिवेश से संबन्ध रखता है वहाँ भोजपुरी भाषा का भी प्रयोग हुआ है। इस प्रकार उपन्यास की भाषा मिश्रित भाषा है।

> उपन्यास में उर्दू शायरी का प्रयोग देखिए ' किसी को देके दिल, कोई नवासँजे फ़ुगाँ क्यों हो,
> न हो जब दिल ही सीने में, तो फ़िर मुँह में जुवाँक्यों हो!
> किया गमख्वार ने रुसवा, लगे आग इस मुहब्बत को

---

[20] कितने पकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 113

[21] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 202

न लाए ताब जो गम की, वो मेरा राज़दां क्यों हो! '
वफ़ा कैसी , कहाँ का इश्क, जब सर फ़ोडना ठहरा
तो फ़िर ऐ संगेदिल! तिरा ही संगे आस्तां क्यों हो!'[22]

गुरु नानक की वाणी को देखिए ऐसे जन विरले जग अन्दर परख खजाने पाइया
जाति वरन ते मये अतीता ममता लोभ चुकाइयाँ
कवि दुष्यन्त की कविताओं की पक्तियाँ देखिए
जिएँ तो अपने बगीचे में गुलमोहर के तले
मरे तो गैर की गलियों में गुलमोहर के लिए।
यहाँ कविता कि पक्तियों के साथ कवि की महनीयता को अपने उपन्यास के द्वारा चित्रित किया है।

भोजपुरी भाषा का प्रयोग को देखिए 'हाँ अब दोखो न, बफ़ाती बोला - ज़िन्दगी त हिआँ गुजारल, अब मरे किनारे अइलीत पाकिस्तान जाई? अब चाहे कुरआन शरीफ़ का आयत बोले या तुम्हरे गीता के किसन भगवान.....हम त ना जाइब पाकिस्तान''।[23]

इसमें अनेक बिंबों प्रतीकों का प्रयोग भी है। इसकी शैली बिलकुल अलग अस्थित्व रखने वाली शैली है, बिलकुल नयी शैली। एक प्रकार कहा जाय तो अदालती शैली का प्रयोग उन्होंने किया है।

मध्यकालीन भारत का प्रमुख कवि कबीरदास 'कितने पाकिस्तान' उपन्यास का केन्द्र पात्र है। जिसकी आवाज़ में मानवता की मुक्तिकामी संघर्ष की आकांक्षा गूँज उठती है। कबीर की खासियत यह है कि वे दिक्काल की सीमाओं को लाँघकर

---

[22] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 10
[23] कितने पाकिस्तान, कमलेश्वर, पृ. सं. 57

वर्तमान में उतर आते है। समकालीन संघर्षों में शरीक होकर अपने दायित्व को भरपूर निभाते है। कबीर को अन्धे और भीखमंगे का जामा पहनाने के ज़रिए उपन्यासकार हम पर व्यंग्य ही करते है। क्यों कि हमें आँख है, लेकिन हम कुछ देखते नहीं। कबीरदास मानवीयता और सांप्रदायिक सद्‌भाव का प्रतीक है। चगाई और पोखरान में बोधिवृक्ष के पौधे रोपने के लिए कुछ करने के चित्र के साथ उपन्यास की समाप्ति प्रतीकात्मक और अर्थवान है। कहने की ज़रूरत नहीं कि कबीर स्वयं एक संश्लिष्ट प्रतीक है, नरसी मेहत्ता के भजन से, सीमा के आर पार यात्रा करने के इरादे से गाँधी की और अपने अन्धेपन से सूरदास की याद दिलाता प्रतीक। एक तरह से तो वैष्णव जन तो, गाते कबीर की उपस्थिति गाँधी की अदृश्य उपस्थिति को और अधिक मार्मिक बना देती है।

इस उपन्यास का एक और पात्र है औरंगज़ेब वह अधिकार्मोह, सांप्रदायिकता एवं धार्मिक कट्‌टरता का प्रतीक है। 'आखिरी कलाम' उपन्यास के आचार्य तत्सत पाण्डे, उसकी पत्नी और उसका पुत्र माधवानन्द आदि पात्र साप्रदायिक सद्‌भाव का प्रतीक हैं। आज ब्राहमण्वाद की स्थापना की कोशिश हर तरह से हो रही है, लेकिन इस उपन्यास में तीनों पात्र सत्य पर विश्वास रखने वाले पात्र हैं। 'पहला गिरमिटिया' का गाँधी अपने आप में एक बिंब है। करुणा भाव को प्रकट करने वाला पात्र है मोहनदास करम चन्द गाँधी। उसी प्रकार का एक पात्र है 'शेष कादंबरी' का रूबी गुप्ता उसमें भी करुणा भाव द्रष्टव्य है। दोनों समाज सेवा के लिए निरत हैं।

उद्देश्य

प्रत्येक श्रेष्ठ उपन्यास अपनी सोद्देश्यता के कारण ही कालजयी सिद्ध हो जाते हैं। यदि उपन्यास का लक्ष्य महान है तो निश्चित ही उसकी परिणति भी आकर्षक होगी। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'उपन्यास के भिन्न भिन्न तत्वों का अलग- अलग और मिलाकर भी किया हुआ सूक्ष्म चित्रण और सफ़लता पूर्वक निर्वाह ही उपन्यास को बडा नहीं बना देता, बडा बनाती है उद्देश्य की महत्ता और उसकी सफ़ल सिद्धि'।[24]

उपन्यास अनामदास का पोथा का उद्देश्य मात्र उपनिषद कालीन समाज का विवरण देना नहीं है, बल्कि उस समाज के द्वारा वर्तमान की दार्शनिक और अध्यात्मिक स्थिति का विवरण देना है। उपनिषदकालीन सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक स्तरों के द्वारा लेखक अनेक तत्वों को हमारे सम्मुख रखते हैं। ये सब आज भी हमारे बौद्धिक तल को प्रभावित करने के लिए योग्य है। उपनिषदकालीन विज्ञान को कुछ स्थान पर नेगेटिव रूप में उन्होंने प्रस्तुत किया है। प्रमुख रूप से पोसिटिव स्थिति गति का विवरण देना उनका उद्देश्य होना चाहिए।

'करवट' उपन्यास में 1852 से लेकर 1905 का ऎतिहसिक धरातल प्रस्तुत करना उनका उद्देश्य है, उसी प्रकार 'पीढियाँ' उपन्यास में 1905 से लेकर 1986 का ऐतिहासिक धरातल है। दोनों उपन्यास राष्ट्रीय आन्दोलन के समानान्तर टण्डन परिवार के संघर्ष में फ़ँसकर रह जाते हैं। 'करवट' एक नये भारत निर्माण का है , जिसमें कई पीढियाँ एक साथ संघर्षरत हैं। यह भी है कि 'करवट' उपन्यास में उन्नीसवीं शताब्दी में भारत का संपर्क यूरोपीय

---

[24] साहित्य सहचर, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. सं 76

जातियों विशेषकर अंग्रेज़ों के आगमन के बाद तथा उनके माध्यम से राजनीति, धर्म, समाज, शिक्षा, विचार आदि के क्षेत्रो में वैज्ञानिक दृष्टिकोण जनित परिवर्तनों से परिचित होने के पश्चात भारत के अन्दर एक और भारत सुग्बुगाने लग गया था, उस सुगबुगाने नए भारत को नागरजी ने पहचाना है, उसके तत्वों, सूत्रों, बिन्दुओं को निर्धरित किया है एवं उन सबका चित्रण उनका उद्देश्य रह गया।

'पीढियाँ' उपन्यास में 1905 से लेकर 1986 तक का इतिहास प्रस्तुत करना उपन्यासकार का लक्ष्य है। इसमें खत्री परिवार की कथा के ज़रिए स्वाधीनता आन्दोलन सामने आता है। राष्ट्रीय भावना को समझने की नई तलाश हमारे सामने रखने में लेखक सफ़ल हुए है,यह भी उनका मक्सद होना चाहिए। जयन्त टंडन की कथा बदलते मानसिकता का है। उनके माध्यम से स्वर्थता का पक्ष हमारे सामने आ जाता है। मानव में इस तरह के स्वार्थ पक्ष का अन्त नहीं हुआ है यह बताना लेखक का लक्ष्य होना चाहिए।

'ज़िन्दा मुहावरे' का उद्देश्य विभाजन से उत्पन्न दो देशों के लोगों की वेदना को दर्शाना है। यहाँ दो देश भारत और पाकिस्तान हैं। विभाजन के बाद दोनों देश के लोगों ने कई प्रकार की वेदनाजनक स्थितियों का सामना किया। एकजुट रहते भारतीय विभाजित होकर दो दो संस्कृति वाले बन गये। नासिरा शर्म ने विभाजन के बाद भारत और पाकिस्तान में रहने वालों की मानसिकताओं का जीता जागता चित्रण तो प्रस्तुत करके सांप्रदायिकता का बीज को तलाशने का कार्य हमारे सम्मुख रख दिया। सांप्रदायिकता के नाम पर देश में कई प्रकार की भ्रान्तियाँ चल रही हैं। उनका उद्देश्य साप्रदायिकता के बहाने हुए विभाजन की त्रासद स्थिति का वर्णन करना है। मोहब्बत के सहारे एक

इन्सान दूसरे इन्सान तक जाता है। इस उपन्यास भारतीय मुस्लिम समाज की ज़िन्दगी का एक प्रामाणिक दस्तावेज तो है ही, इसके साथ ही यह मानवीय संबन्धो को धर्म से ऊपर रखने का साहित्यक प्रयास भी है।

'विश्रामपुर का सन्त' उपन्यास का उद्देश्य प्रमुख रूप से विनोबा भावे का ग्रामदान आन्दोलन नामक ऐतिहासिक घटना का संकेत देना है। ग्रामदान आन्दोलन के साथ उस समय की सामाजिक और राजनीतिक घटनाओं के पर्दाफ़ाश करना भी है। समाज में लोग उच्च स्थान प्राप्त करने के बाद किस तरह बदलते हैं उससे किन किन आदमियों के दिल दुखते हैं इनका विवरण देना उनका मक्सद होना चाहिए। इसके साथ समाज सेवा की श्रेष्ठता को दिखाना भी है। साथ ही साथ नैतिक मूल्यों का ह्रास किस प्रकार समाज में होता आ रहा है इसका विवरण देना उनका मक्सद होना चाहिए।

'काले कोस' उपन्यास का उद्देश्य नगर और ग्राम के लोगों की मानसिकता में आ रहे भेदभाव का चित्रण करना है। बलवन्त सिंह के इस उपन्यास में सांप्रदायिकता के नाम पकिस्तान की माँग और उसके बहाने देश में हुए सांप्रदायिक दंगे का विवरण प्रस्तुत है। इसमें भी समाज सेवा की महत्ता का उद्‌घाटन उनका मक्सद है। अनेक प्रकार की अनैतिक बातों को लेकर जीवन बिताने के बाद आद्‌मी में होने वाले परिवर्तन का जीता जागता चित्रण उन्होंने प्रस्तुत करके आदमी के चरित्र में आनेवाले विविध परिवर्तन का चित्र हमारे सम्मुख उन्होंने रख दिया। अनेक धार्मिक खोखलापन का उद्‌घाटन भी अपने उपन्यास के द्वारा उन्होने किया है।

'फहला गिरमिटिया' का उद्देश्य दक्षिण आफ़्रिका के लोगों की दयनीय स्थिति को पाठकों के सम्मुख रखना है। मात्र गाँधी का जीवन उभारना उनका लक्ष्य नहीं बल्की मोहनदास करमचन्द की कथा के द्वारा सत्याग्रह की महत्ता, समाज सेवा की गरिमा, सहयोग भावना आदि पाठकों के सामने रखना है। दक्षिण आफ़्रिका में रहते हुए मोहनदास अपने देश भारत के संबन्ध में सोचकर अस्वस्थ थे। मनुष्य को अपने अधिकारों के लिए लडने का आह्वान देने के लिए उपन्यास सक्षम है। एक साधारण मनुष्य की जाग्रत स्थिति ,दक्षिण आफ़्रिका के लोगों के मन में अपने हकों के बारे में अवबोध देने में सहायक हुई। संघर्ष की निरन्तरता बताना लेखक का लक्ष्य है। महात्मा गाँधी की महात्मा बनने की प्रक्रिया की कथा है। यह एक ऎतिहासिक प्रक्रिया मानना समीचीन होगा।

'आखिरी कलाम' उपन्यास का उद्देश्य साप्रदायिकता का बाकि पत्र पाठकों के सम्मुख रखना है। ऊपर से बाबरी मस्जिद ध्वंस के उत्तेजक परिदृष्य में मनुष्यता के लहूलुहान होने की त्रासदी बताना उपन्यासकर का मूल उद्देश्य है। परिवार के लोगों का आध्यात्मिक भेदभाव से उत्पन्न विघटनकारी स्थिति का उदघाटन भी पाठकों के सामने उन्होने रख दिया है। अयोध्या बाबरी मस्जिद समस्या के बाद लोग अनेक प्रकार के यंत्रणाओं का सहन करते रहते है, इस उपन्यास के द्वारा इस समस्या का अन्त नही हुआ है ऎसी समस्याओं की एक कडी के रूप में इसकी सूचना देना लेखक का उद्देश्य है।

'काशी का अस्सी' उपन्यास का उद्देश्य सास्कृतिक मूल्यों की च्युति का पर्दाफ़ाश करना है। 'निनन्यानवे' उपन्यास का उद्देश्य सामाजिक, राजनीतिक सास्कृतिक भ्रान्तियों का चित्रण करके उपन्यासकार यह बताना चाहते हैं कि देश में इस प्रकार की भान्तियों का अन्त नहीं हुआ है, इसलिए हम देश की स्थिति को

देखक्रर सतर्क रहना चाहिए। 'कलिकथा वाया बाइपस' का मूल उद्देश्य बाज़ार तंत्रों के शिकार होते आ रहे मानव का चित्रण करना है। स्वाधीनता के पच्चास वर्ष का समारोह हमने धूम्धाम से मनाया था, इसके पीछे बज़ारवाद का हाथ ज़रूर है,। इसलिए हम इस प्रकार के शोषणों के शिकार मत बनने का आह्वान देना लेखक का मक्सद है।

'कितने पाकिस्तान' उपन्यास में प्रत्येक काल के नग्न यथार्थ को हमारे सामने रखने का प्रयास कमलेश्वर ने किया है। उनका उद्देश्य समाज में व्याप्त समस्याओं , भ्रान्तियों, धर्मान्धता का परिचय देना है। आज के ज़माने में सास्कृतिक मूल्य सब नष्ट होते जा रहे हैं। मानवीय मूल्यों पर आज प्रहार बढते जा रहे हैं, मानवीय मूल्य प्राप्त करने के लिए समाज की सोच को विकसित करने का भरसक प्रयास करने का संकेत भी उपन्यासकार के द्वारा हुआ है। उपन्यासकार ने समाज के प्रति मानव के कर्तव्य को जताने की कोशिश भी की है। उनका उद्देश्य केवल पाकिस्तान बनाने वाली विध्वंसकारी प्रवृत्तियों की पहचान कराना नहीं, बल्कि कबीर के रूप में समाज को आशावादी दृष्टिकोण देने का प्रयास भी है। उपन्यास पढते समय उपन्यास में चित्रित विकराल समस्याओं से पाठक भी दुखने लगते हैं, उस बेचैनी और दुखद अहसास का बोध कराना ही कमलेश्वर का उद्देश्य है। आज धर्म के नाम पर विभिन्न पाकिस्तानों का निर्माण होता रहा है, यह बताते समय उन्होंने किसी भी प्रवृत्तियों और व्यक्तियों को नहीं देखा है। इस अनुभव की एक प्रचण्ड व प्रखर व्यथा निरन्तर उनके अन्तर्मन को कुदेरती रहती है। उसी व्यथा से पाठकों को परिचित कराना ही उपन्यास का उद्देश्य है। कमलेश्वर के शब्दों में उनके लेखन का उद्देश्य स्पष्ट है 'मेरे लिए लेखन एक माध्यम है, मेरी

मंजिल नहीं। मेरी मंजिल अपने समय की अभावग्रस्त, शापग्रस्त दुनिया को शापों से मुक्त देखने की है'।[25]

समकालीन उपन्यासकार अपने मन की भावनाओं, विचारों तथा अनुभवों के सामंजस्य से अपनी कृति की सृष्टि करते हैं। इनमें से कुछ भाव प्रधान, कुछ चरित्र प्रधान, कुछ समस्या प्रधान कथानक को लेकर निर्मित हुए हैं। उपन्यासों के चरित्रों का चुनाव बहुक्षेत्रीय है, शिक्षित, अशिक्षित, जमीनदार ऐतिहासिक पात्र, शहरी पात्र, ग्रामीण पात्र इत्यादि स्रोतों से चरित्र लिए गये है। चरित्रों के संवाद देश काल तथा परिवेश के अनुकूल है। कुछ उपन्यासकारों ने परंपरागत शैली को अपनाया कुछ नूतन शैली का निर्माण किया। उद्देश तथा पात्रों की महत्ता को हमारे सामने रखने में उपन्यासकार सब सफ़ल हुए है। इतिहास ज़िन्दगी ही होता है। साहित्यकार इतिहास नहीं लिखता, इतिहास में निहित ज़िन्दगी लिखता है। इतिहासबोध इतिहास को बदलने की दृष्टि भी है, यह हम जानते हैं इसलिए परंपरागत शैली को बदलने का कार्य कुछ उपन्यासकार द्वारा संभव हुआ है।

---

[25] ज्ञानोदय, फ़रवरी 2004, पृ. सं. 18

उपसंहार

साहित्य जीवन की आलोचना है। साहित्य मनुष्य की सृष्टि है, इसलिए सुबोध है, सुगम है और मर्यादाओं से परिमित है। जीवन को आधार बनाकर साहित्य ने सालों पहले अपना सफ़र शुरू किया। समाज के परिवर्तन के साथ साहित्य परिवर्तित होता रहा। साहित्त्य के विषय का कोई सरहद नहीं है। उसका विषय कभी कभार ऐतिहासिक हो सकता है, सामाजिक हो सकता है, राजनीतिक भी हो सकता है। इन विषयों में अतीत वर्तमान और भविष्य चित्रित होता है। जिस रचना में तीनों का संकेत है वह सफ़ल रचना या कालजयी रचना कही जा सकती है। साहित्य की एक श्रेष्ठ विधा है उपन्यास। यह मात्र मनोरंजन और बौद्धिक विकास का साधन नहीं है। वह सत्य के अन्वेषण का एक माध्यम है। सत्य का यह अन्वेषण मानव सृष्टि के साथ चलता रहेगा। युग जीवन की परिस्थितियों के परिवर्तन ने उपन्यासकारों के इस अन्वेषण को जीवन के नए सत्य उद्‌घाटित करने को सदैव प्रोत्साहित किया है। उपन्यास की सर्वप्रथम विशेषता यही है कि मानव और नियति के विभिन्न सत्यों का जितना सजीव चित्रण उपस्थित करता है, उतना सहित्य की कोई भी अन्य विधा नहीं। 1970के बाद के उपन्यासों को समकालीन उपन्यास कहा जा सकता है। समकालीन हिन्दी उपन्यास आज की ज़िन्दगी को संपूर्ण रूप में उसके समस्त फ़ैलाव और वैविध्य में प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा है। साहित्य और इतिहास की संबंद्धता द्वन्द्वात्मक होती है, परन्तु ज्यों ही इसमें अन्तराल एवं अन्तर्विरोध आते हैं साहित्य अपनी अर्थवत्ता एवं मूल्यवत्ता खोने लगता है। जब साहित्य अपनी इतिहास प्रक्रिया से विच्छिन्न होता है तो वह अपनी सार्वकालिक चेतना खो देता है और न ही उसमें व्यापक मानवीय स्तर पर मूल्य पक्षधरता, सामाजिक चेतना व इतिहासबोध रहते है। इतिहास प्रक्रिया की द्वन्द्वात्मकता और प्रतिबद्धता से पृथक

साहित्येतिहास की कोई अर्थवत्ता और प्रासंगिकता नहीं, न ही किसी स्तर पर संभव है, क्यों कि प्रत्येक युग का प्रौढ लेखन अपने युग के ऐतिहासिक संदर्भों की टकराहट से निर्मित होता है। वह साहित्येतिहासिक बोध की नवीन संभावनाओं के मार्ग भी प्रशस्त करता है। इतिहास चेतना से कटकर लिखा जाने वाला साहित्य कल्पना प्रसूत दृष्टिकोण का ही परिचायक सिद्ध होता है। जिस रचनाकार की इतिहास दृष्टि जितनी समृद्ध होगी उसकी चेतना भी उतनी ही धारधार व्यापक होगी। साहित्य और इतिहास चेतना का अन्तर्बाह्य संबन्ध समाज, संस्कृति और राजनीति की द्वन्द्वात्मकता एवं मध्यस्थता द्वारा संपन्न होता है। इतिहास प्रक्रिया रचनाकार की इतिहास चेतना को ही प्रखर नहीं बनाती वरन उसकी कलात्मकता को भी तलाशती है जिससे उसका इतिहासबोध नए आयामों से संलग्न होता है।

आज सहित्य का अपना तेवर बदल चुका है। मानव संबन्धों, दृष्टिकोणों, संस्कारों और चेतना में गहरे स्तर पर परिवर्तन आया है। समाज, संस्कृति एवं राजनीति की प्रकृति परिवर्तित हुई है। इतिहासबोध शब्द इतिहास का बोध जगाता है। इतिहास के साथ हम 'बोध' शब्द को जोडते हैं तो उसकी अर्थ व्यंजना इतिहास के ही नहीं बल्कि वर्तमान के भी सरहदों को पार कर भविष्य तक पहूँचता है। इस अनेक रूपात्मक जगत में जो कुछ घटित होता है वे सब इतिहास हैं। इतिहास का कोरा ज्ञान इतिहासबोध नहीं है लेकिन इतिहास के साथ इसका संबन्ध ज़रूर है। क्यों कि एक एक घटना भविष्य में इतिहास ही है। इसका बोध जगाने से वह इतिहासबोध बनता है। इतिहास को रूपायित करने वाला कच्चामाल इतिहास ही प्रदान करता है। इतिहास को उसकी संश्लिष्टता से समझने की ज़रूरत है। लिखित इतिहास के रिक्त स्थानों की पूर्ति इतिहासबोध द्वारा संभव है। यह भी नहीं वर्तमान घटना से भी इतिहासबोध हममें होना ज़रूर है। राजा महाराजाओं

द्वारा लडी गयी अनगिनत लडाइयों की तिथिवार जानकारी और उसमें मारे गये सैकडों हज़ारों लोगों के आँकडे जानने से एक मानवीय मूल्य उभर कर सामने आता है वह इतिहासबोध भी है। इतिहासबोध इतिहास की गति को व्यक्त करता है। इससे अतीत वर्तमान और भविष्य का मानचित्र व्यक्त होता है। इतिहास का निर्माता मनुष्य है और मनुष्य अपने संघर्षों के ज़रिए वर्तमान और भविष्य को बदलने का काबिल है। अतीत वर्तमान और भविष्य एक दूसरे से जुडे हुए हैं। इन तीनों के बीच अन्तर्संबन्ध को आनावृत करने में इतिहासबोध ही रचनाकार की मदद कर सकता है। काल के अनन्त प्रवाह में ये तीनों अलग अलग नहीं हैं। ये सब कडियाँ मात्र है। वर्तमान संघर्ष ही इतिहास की गति का निर्धारण करता है। प्रगतिशील और प्रगतिगामी शक्तियों के बीच का यह संघर्ष भविष्य को रूपायित करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इन्हीं शक्तियों और उनके बीच के संघर्षों का सही आकलन, अध्ययन और मनन ही सही इतिहासबोध है। दूसरे शब्दों में कहे तो इतिहासबोध मनुष्य की इस संघर्ष यात्रा की परंपरा का बोध भी है। इतिहास साक्षी है कि संघर्ष की एक लंबी परंपरा हमारे समाज में मौजूद है। यही संघर्ष ही वर्तमान इतिहास और भविष्य को बदलता है। मनुष्य का इतिहास इस संघर्ष की गाथा है। वर्तमान की जडे अतीत में है। आजकल से विच्छिन्न होने के बावजूद उसी ही की एक कडी है। वर्तमान वास्तविकताओं और समस्याओं का विश्लेषण केलिए उसकी जडों की तलाश करते वक्त इतिहासबोध की ज़रूरत होती है। वर्तमान के अन्तर्विरोधों को समझने में भी इतिहासबोध हमारी मदद करता है। वर्तमान समस्याओं के सही विश्लेषण करने के लिए उन्हें एक ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखना आवश्यक है। समाज में व्याप्त विसंगतियों के विरुद्ध जब साहित्यकार अपनी लेखनी उठाता है तब इतिहासबोध अनिवार्य हो जाता है। वर्तमान विभीषिकाएँ चाहे जो भी हो, जैसे गरीबी, भुखमरी, बेरोज़गारी, विधवा समस्या, बंधुवा मज़दूरी, मूल्य शोषण,

भ्रष्टाचार साप्रदायिकता, आतंकवाद इनके उद्भव और विकास की प्रक्रिया की प्रक्रियाओं को जानने के लिए इतिहास में गोता लगाना पडता है। रचना में निहित इतिहासबोध भी उसे कालजयी बनाता है। वह रचना को गहराई और व्यापकता प्रदान करता है। इतिहास बोध के अलावा मात्र घटनाओं के प्रस्तुति करने से वह सतही ही रह जाता है। ऐसी रचनाओं में वास्तविकताओं के वर्णन होने के बावजूद तत्कालीनता की सीमा रेखा को लाँघ कर कालजयी बन जाने की क्षमता नहीं होती। बहिरंग यथार्थ की वास्तविकता को समझने की अन्तर्दृष्टि लेखक के लिए अनिवार्य है। इतिहासबोध ही रचनाकार को सामाजिक अन्तर्धाराओं को विश्लेषित करने की अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। यही अन्तर्दृष्टि पाठकों को प्रदान करने के ज़रिए रचनाकार अपना सामाजिक दायित्व निभाता है। तभी रचनाकार पाठकीय संवेदना का सुधार संवार कर उसमें मुक्तिकामी चेतना भर सकता है। समाज के अन्तर्विरोधों को सूक्ष्म एवं स्थूल रूप से पर्दाफ़ाश, महान रचनाओं में होती है। इतिहासबोध से युक्त रचनाएँ हमेशा वक्त की धडकनों से युक्त है। इतिहासबोध से युक्त रचनाकार अपनी रचना के ज़रिए पाठक को अपने समकालीन सत्य, अतीतकालीन संस्कार और संभावनीय भविष्य से परिचित कराता है। इतिहासबोध हमेशा रचनाकार की मदद करता है।

समकालीन हिन्दी उपन्यास के कृतिकार अपने इतिहासबोध के द्वारा समाज की सच्चाइयों और संघर्षों को पाठक के सम्मुख रखने में सफ़ल हुए हैं। समकालीन हिन्दी उपन्यास कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। अपने समाज के साथ विलयन होने के साथ लेखक की अपनी संस्कृतियों से युक्त रचनाएँ सब इतिहासबोध की गरिमा को ऊँचे रखने की कोशिश करती हैं। आज का ज़माना संघर्षों का ज़माना है, इसलिए समकालीन उपन्यासकार सब इसकी जडों की खोज के लिए इतिहास यानी अतीत की ओर देखने लगता है। अतीत की ओर देखकर उससे मिलते सत्यों को

प्रामाणिक दृष्टि से पाठक के सम्मुख रखने के लिए लेखक सब सफ़ल हुए हैं। इसप्रकार करने से अतीत हमेशा हमारे साथ जीवित रह जाता है। समय का परिवर्तन हमेशा होता रहा है। यह सर्वविदित है। अतीत वर्तमान और भविष्य की कडियाँ परम्परा के रूप में हमारे नज़दीक हैं। कुछ समकालीन उपन्यास में जीवित परंपरा को तोडने का प्रयास है। आज की हमारी सस्कृति नवउपनिवेशी संस्कृति में लय होकर एक मिश्रित संस्कृति का अहसास दिलाता है। वक्त की धडकन इस प्रकार समकालीन उपन्यस के द्वारा चित्रित होता है। राजनीतिक क्षेत्र में भी संघर्ष की स्थिति विद्यमान है। समकालीन उपन्यासकार अपने इतिहास की सही दृष्टि से आवश्यक को चुनकर और अनावश्यक को छोडकर अच्छी कृति हमारे सम्मुख रखता है। उनका सही इतिहासबोध वक्त की धडकनों को समझाकर अब भी नये नये श्रेष्ठ उपन्यास हमारे सम्मुख रख देता है। उनकी कालजयी रचनाएँ अपने व्यापक अर्थ में अपने समाज का सही इतिहास बन जाता है।

इतिहासबोध में कालप्रवाह के साथ काल को खंड खंड करके देखने की प्रवृत्ति का निषेध होता है। खंड खंड करने की हमारी मानसिकता संकुचित दृष्टि का परिचायक है। इतिहासबोध के परिप्रेक्ष्य में समकालीन उपन्यासों का विश्लेषण किया गया तब जीवन की संपूर्णता का कालातीत प्रवाह पर प्रकाश डाला गया। अनमदास का पोथा, कितने पाकिस्तान, आखिरी कलाम, कलिकथा वाया बाइपास जैसी कालातीत रचना पर केन्द्रित यह अध्ययन अवश्य युगों से हमारे जीवन को परिष्कृत एवं अपरिष्कृत करनेवाले कई ज्वलंत विषयों पर प्रकाश डाला गया है। अखंड मनोवृत्ति को जगानेवाला यह इतिहासबोध समकालीन उपन्यास की मूल चेतना बन गया है। यह समकालीन उपन्यास को कालातीत बना देता है।

संदर्भ ग्रंन्थ सूची

आधार ग्रन्थ

1. अनामदास का पोथा — हज़ारीप्रसाद द्विवेदी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्कण 1976

2. आखिरी कलाम — दूधनाथ सिंह
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 2003

3. करवट — अमृतलाल नागर
राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1985

4. कलिकथा वाया बाइपास — अलका सरावगी
आधार प्रकाशन नई दिल्ली
तीसरा संस्करण 2000

5. काले कोस — बलवन्त सिंह
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1982

6. काशी का अस्सी — काशीनाथ सिंह
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 2001

7. कितने पाकिस्तान — कमलेश्वर
राजपाल एण्ड सन्ज़, नई दिल्ली
दसवाँ संस्करण 2007

8. ज़िन्दा मुहावरे — नासिरा शर्मा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1994

9. निन्यानबे — रवीन्द्र वर्मा
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 2000

10. पहला गिरमिटिया — गिरिरा किशोर
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
दूसरा संस्करण 2000

11. पीढियाँ — अमृतलाल नागर
राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1990

12. विश्रामपुर का सन्त — श्रीलाल शुक्ल
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1996

13. शेष कादंबरी — अलका सरावगी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 2004

आलोचनात्मक ग्रन्थ

14. अमृतलाल नागर के उपन्यास	डा. हेमराज कौशिक प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1985
15. अमृतलाल नागर के उपन्यासों में सामाजिक चेतना	डा. अजय तिवारी साहित्यागार, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1995
16. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के उपन्यासों में संस्कृति और इतिहास	डा.अरुण कुलकर्णी चिन्तन प्रकाशन, कानपुर प्रथम संस्करण 2007
17. आधुनिक भारत में विचारधारा और राजनीति	बिपन चन्द्र अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2000
18. आधुनिक साहित्य और इतिहासबोध	नित्यानन्द तिवारी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1994
19. आलोचना और आलोचना	देवीशंकर अवस्थी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1995

20. इतिहास और आलोचना — नामवर सिंह
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1978

21. इतिहास और आलोचना के वस्तुवादी सरोकार — निर्मला जैन
राधारमण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1996

22. इतिहास और संस्कृति — वीरेन्द्र मोहन
शिल्पायन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2004

23. इतिहास और वर्ग चेतना — नरेश नदीम
प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली
प्रथ्म संस्करण 2003

24. इतिहास विचारधारा और साहित्य — राजेश्वर सक्सेना
कोणार्क प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1983

25. उदारीकरण का सच — अमित भादुडी
राजमकल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1996

26. उपन्यास का पुनर्जन्म — परमानन्द श्रीवास्तव
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1995

27. उपन्यासकार जगदीशचन्द्र संवेदना और शिल्प — डा. कैलाश्नाथ पाण्डे, जयभारती प्रकाशन, इलहाबाद, प्रथम संस्करण 1992

28. उपन्यास स्थिति और गति — डा. चन्द्रकान्त बादिवडेकर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1993

29. उपन्यास स्वरूप और संवेदना — राजेन्द्र यादव, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1997

30. कालजयी सत्य — भोलानाथ तिवारी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1983

31. कुछ विचार — प्रेमचन्द, लोकभारती प्रकाशन, इलहाबाद, तीसरा संस्करण 2004

32. गाँधी और अंबेडकर — गणेश मत्री, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम प्रकाशन 1999

33. जाति, धर्म और सांप्रदायिकता — शैलेन्द्र शैली, लोक जतन प्रकाशन, भोपाल, प्रथम संस्करण 2003

34. दलित चेतना साहित्य — रमणिका गुप्ता
नवलेखन प्रकाशन, हज़ारीबाग
प्रथम संस्करण 1996

35. दलित चेतना साहित्यक एवं सामाजिक सरोकार — रमणिका गुप्ता
शिल्पायन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 2004

36. दलित मुक्ति का प्रश्न और दलित साहित्य — दिनेश राम
साहित्यिक संस्थान, उत्तर प्रदेश
प्रथम संस्करण 2002

37.दलित विमर्श — डा. नरसिंहदास
चिन्तन प्रकाशन, कानपुर
प्रथम संस्करण 2007

38. दर्शन साहित्य और समाज — शिवकुमार मिश्र
वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 2000

39. द्विवेदी जी की भाषा — विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1980

40. नवजागरण और इतिहासचेतना — प्रदीप सक्सेना
पहल द्वारा प्रकाशित, जबलपुर
प्रथम संस्करण 1988

41. परंपरा की आधुनिकता	हज़ारी प्रसाद द्विवेदी पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1997
42. परसाई का इतिहासबोध	डा. स्न्ध्या जैन 'श्रृति' विकास प्रकाशन, कानपुर प्रथ्म संस्करण 2006
43. बदलते परिप्रेक्ष्य और हिन्दी	डा. बीना जैन उपन्यास संजय प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2006
44. बीसवीं शताब्दी का हिन्दी उपन्यास	विजयमोहन सिंह राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2005
45. भगवती चरण वर्मा के उपन्यासों का सास्कृतिक मूल्यांकन	डा. अंजू दुबे राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1986
46. भारत दर्शन	त्रिलोकचन्द शाण्डिल्य सस्ता साहित्य भण्डार नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1988

47. भारत का इतिहास	रोमिला थापर राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1987
48. भारत का सास्कृतिक इतिहास	हेमन्त कुलकर्णी दी स्टुडेण्ट्स बुक कंपनी, जयपुर प्रथम संस्करण 1986
49. भारत के व्यक्तित्व के पहचान	सूर्यकान्त बाली ज्ञान गंगा, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1995
50. भारत विभाजन और हिन्दी कथा साहित्य	प्रमिला अग्रवाल जयभारती प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1992
51. भारती समाज	श्यामचरण दुबे नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, प्रथम संस्करण 2005
52. भारतीय राजनीति कल और आज	रजनी कोठारी वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1998
53. भारतीय राजनीति के अन्तर्विरोश	मधु लिमये सारांश प्रकाशन, दिल्ली दूसरा संस्करण 1997

54. भूमण्डलीकरण और ग्लोबल मीडिया	जगदीश्वर चतुर्वेदी अनामिका पब्लिकेशन्स नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2008
55. मध्यकालीन भारत	सूर्यकुमार जोशी एस चन्द एण्ड कंपनी नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1903
56. मार्क्स और पिछडे हुए समाज	रामविलास शर्मा राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1986
57. मुस्लिम मानस और हिन्दी उपन्यास	डा. मुहम्मद फ़िरोज़ खाँ अनंग प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2003
58. युग सन्धियों पर	सच्चिदानन्द वात्स्यायन सरस्वती विहार, नई दिल्ली द्वितीय संस्करण 1978
59. शोध और बोध	सुन्दर रेड्डी हिन्दी प्रचारक प्रकाशन वाराणासी पहला संस्करण 1974

60. समकालीन कविता इतिहासबोध	डा. राकेश कुमार प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1989
61. समकालीन साहित्य चिन्तन	रामदरश मिश्र ज्ञान गंगा प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1995
62. समय, समाज और संस्कृति	प्रभाकर क्षोत्रिय किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2002
63. समय से संवाद	कृष्णदत्त पालीवाल वाणी प्रकाशन नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1993
64. साहित्य और इतिहास दृष्टि	मैनेजर पाण्डे अरुणोदय प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1992
65. साहित्य और संस्कृति	अमृतलाल नागर राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 1994
66. साहित्य और संस्कृति	जैनेन्द्र कुमार पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1979

67. साहित्य की सामाजिकता	मिथिलेश्वर शिल्पायन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2005
68. साहित्य सामाजिक संदर्भ	शिवकुमार मिश्र कला प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1977
69. साहित्य विमर्श	पुरुषोत्तम लाल भार्गव अजन्ता पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1995
70. साहित्येतिहासिक - दर्शन और हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक प्रक्रिया	डा. हरिश्चन्द्र मिश्र श्यामा प्रकाशन, इलहाबाद प्रथम संस्करण 1998
71. स्त्री के लिए जगह	राजकिशोर वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण, 1994
72. स्त्री संघर्ष का इतिहास	राधाकुमार वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2002
73. स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने	रमणिका गुप्ता शिल्पायन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2004

74.	संस्कृति और साहित्य	डा. हेतु भरद्वाज मंथन पब्लिकेशन्स, जयपुर प्रथम संस्करण 2004
75.	संस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिंह दिनकर लोकभारती प्रकाशन, नई दिल्ली त्रितीय संस्करण 2006
76.	हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के साहित्य कीन सास्कृतिक चेतना	रविकुमार 'अनु' पंचशील प्रकाशन, जयपुर प्रथम संस्करण 1990
77.	हिन्दी उपन्यास का इतिहास	गोपालराय राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली त्रितीय संस्करण 2002
78.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डा. नगेन्द्र मयूर पेपर बैक्स, नोएडा संस्करण 1993
79.	हिन्दी उपन्यास का विकास	मधुरेश सुमित प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1998
80.	हिन्दी उपन्यास जनवादी परंपरा	कुंवर पाल सिंह, अजय बिसारिया नवचेतन प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम संस्करण 2004

81. हिन्दी उपन्यास प्रेमचन्दोत्तर काल — डा राम शोभित प्रसाद सिंह, ऋषभचरण जैन एवस सन्तति प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1981

82. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना — डा. अमरसिंह जगराम लोधा, अमर प्रकाशन, अहमदाबाद, द्वितीय संस्करण 1985

83. हिन्दी उपन्यासों में सामाजिक चेतना — डा. लालसाहब सिंह, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1998

84. हिन्दी उपन्यास सामाजिक चेतना — कुँवरपाल सिंह, हरिराम द्विवेदी पाण्डुलिपी प्रकाशन, कृष्ण नगर, प्रथम संस्करण 1989

85. हिन्दी उपन्यास समकालीन विमर्श — सत्यदेव त्रिपाठी, अमन प्रकाशन, कानपुर, प्रथम सस्करण 2006

86. हिन्दी उपन्यास सृजन और सिद्धान्त — नरेन्द्र कोहली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1989

87. हिन्दी कथा साहित्य में इतिहास
डा. लक्ष्मीनारायण गर्ग
अभिनव भारती प्रकाशन
इलहाबाद
प्रथम संस्करण 1974

88. हिन्दी के बहुचर्चित उपन्यास और उपन्यासकार
डा. अमर जासवाल
विद्या विहार, कानपुर
प्रथम संस्करण 1984

कोश ग्रन्थ

89. अभिनव हिन्दी- अंग्रेज़ी- हिन्दी शब्दकोश
छैलबिहारी मिश्र
आलोक भारती बंगलूर
प्रथम संस्करण 1991

90. आधुनिक भारत में विचारधारा और राजनीति
बिपन चन्द्र
अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 2000

91. आधुनिक हिन्दी शब्दकोश
गोविन्द चातक
तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1986

92. संस्कृत हिन्दी शब्दकोश — वामनशिवराम आमटे
मोतीलाल बनारसी दास, पटना
प्रथम संस्करण 1969

94. हिन्दी पर्यायवाची कोश — भोलानाथ तिवारी
तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
प्रथम संस्करण 1985

पत्र पत्रिकाएँ

1. अकार - मार्च - 2005
2. अकार - जुलाई - 2005
3. अकार - दिसंबर - 2005
4. अक्षरा - अक्तूबर - दिसंबर - 2000
5. आजकल - दिसंबर - 1979
6. आजकल - नवंबर - 1982
7. आजकल - सितंबर - 1982
8. आजकल - मई - 1991
9. आलोचना - जनवरी - मार्च – 2001
10. आलोचना - जुलाई - सितंबर - 2001
11. आलोचना - अक्तूबर - दिसंबर - 2003
12. इस्पात भाषा भारती - अक्तूबर - दिसंबर - 2004
13. उत्तरा - जुलाई - सितंबर - 2005
14. कथन - अप्रैल - जून - 2005
15. कथन - जुलाई - सितंबर - 2005
16. कथादेश - मार्च - 2001
17. कथादेश - जून - 2003

18. कथादेश - फ़रवरी - 2004
19. कथादेश - मार्च - 2005
20. कथादेश - सितंबर - 2006
21. कथादेश - मार्च - 2007
22. गगनांचल - अप्रैल - जून - 1996
23. गगनांचल - अक्टूबर - दिसंबर - 1996
24. ज्योत्सना - मई - 1981
25. ज्योत्सना - मई - 1982
26. ज्योत्सना - सितंबर - 1986
27. ज्योत्सना - सितंबर - 1993
28. ज्योत्सना - जून - 1984
29. ज्योत्सना - जून - 1994
30. ज्योत्सना - सितंबर - 1996
31. प्रकर - मई - 1994
32. प्रकर - मार्च - 1985
33. प्रकर - मार्च - 1986
34. प्रकर - अप्रैल - 1990
35. प्रकर - फ़रवरी - 1991
36. प्रकर - दिसंबर - 1986
37. प्रकर - सितंबर - 1986
38. प्रकर - जुलाई - 1977
39. प्रकर - जनवरी - 1990
40. भाषा - मई - जून - 1996
41. माध्यम - अप्रैल - जून - 2001
42. माध्यम - जुलाई - सितंबर - 2006
43. मधुमति - जून - 1995
44. मधुमती - मई - 2000
45. मधुमती - मई - जून - 2001
46. मधुमती - मार्च - 1992

47. मधुमती - अगस्त - 2006
48. मधुमती - फ़रवरी - 2004
49. मधुमती - दिसंबर - 2001
50. मधुमती - सितंबर - 1995
51. मधुमती - जनवरी - 1999
52. मधुमती - जनवरी - 2005
53. दक्षिण भारत - जुलाई - सितंबर - 1999
54. दस्तावेज - अक्तूबर - दिसंबर - 2000
55. दस्तावेज - जुलाई - सितंबर - 2000
56. दस्तावेज - जुलाई - सितंबर - 2001
57. दस्तावेज़ - अप्रैल - जून - 2004
58. दस्तावेज़ - अक्तूबर - दिसंबर - 2004
59. नई धारा - अक्तूबर - नवंबर - 2006
60. वागर्थ - नवंबर - 1998
61. वागर्थ - जनवरी - 1999
62. वागर्थ - अप्रैल - 1999
63. वागर्थ - जुलाई - 2002
64. वागर्थ - जून - 2002
65. वर्तमान साहित्य - सितंबर - 1999
66. समकालीम्न भारतीय साहित्य - जुलाई - अगस्त - 1998
67. समीक्षा - जुलाई - सितंबर - 1987
68. समीक्षा - जनवरी - मार्च - 1991
69. समीक्षा - जनवरी- मार्च - 1991
70. समीक्षा - अप्रैल - जून - 1995
71. समीक्षा - जनवरी - मार्च - 2001
72. संचेतना - मार्च - 1984
73. संग्रथन - मार्च - 1990
74. संग्रथन - नवंबर - 1993
75. संचेतना - मार्च - 1997

76. साहित्य अमृत - दिसंबर - 2000
77. साक्षात्कार - मई - 2002
78. साक्षात्कार - मई - 2003
79. साक्षात्कार - जून - 1999
80. साक्षात्कार - अगस्त - 1999
81. साक्षात्कार - नवंबर - 2000
82. साक्षात्कार - सितंबर - 2000
83. साक्षात्कार - जनवरी - 2002
84. साक्षात्कार - सितंबर - 2003
85. साक्षात्कार - जुलाई - सितंबर- 1988
86. साक्षात्कार - अक्तूबर - नवंबर - 2005
87. हंस - जनवरी - 1999
88. हंस - फ़रवरी - 1999
89. हंस - फ़रवरी - 2000
90. हंस - सितंबर - 2000
91. हंस - फ़रवरी - 2001
92. हंस - जून - 2002
93. हंस - जनवरी - 2003
94. हंस - अक्तूबर - 2003
95. हंस - जुलाई - 2006
96. हंस - अप्रैल - 2006
97. हंस - जनवरी - 2007
98. हंस - मार्च - 2007